# जैन वाङ्मय में ब्रह्मचर्य

– डॉ. मूनि श्री विनौदकुमारजी

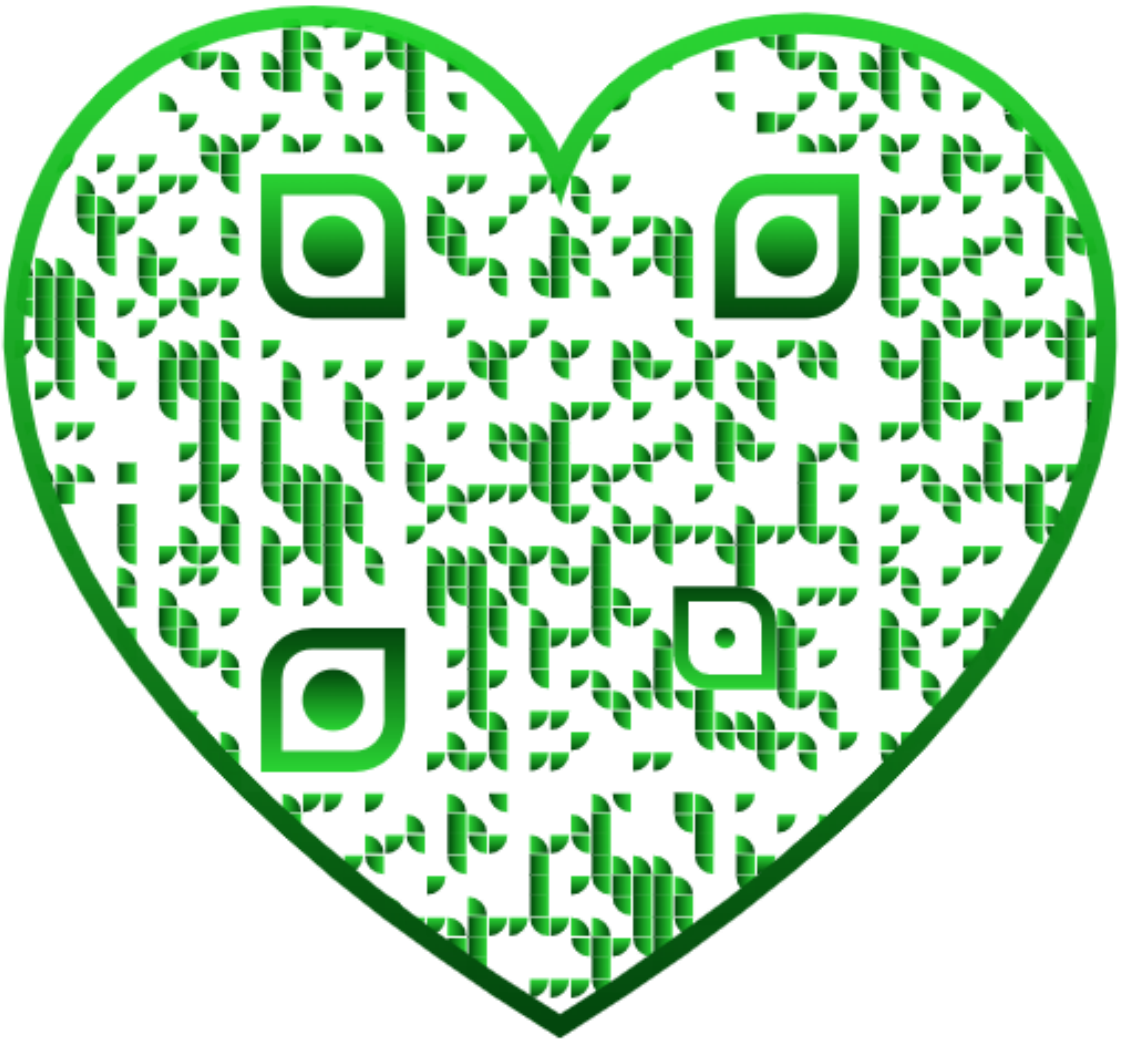

## स्वकथ्य

यदि मुझसे पूछा जाए श्रुतसागर के अनन्तानन्त साम्राज्य में पवित्रम शब्द कौन सा है ? तो बिना शोध के ही मेरे मुँह से अविलम्ब निकलेगा – **ब्रह्मचर्य।**

विश्व के सभी धर्म सम्प्रदाय ही नहीं, स्वास्थ्य शास्त्र और आधुनिक विज्ञान भी ब्रह्मचर्य के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। आज तो एकान्त भोगवादी भी ब्रह्मचर्य की सत्ता को स्वीकार करने लग गए हैं।

मेरा ब्रह्मचर्य के प्रति आकर्षण सम्भवतः पूर्व जन्म के किसी संस्कार के कारण ही रहा है। जब छोटा था, स्कूल की पुस्तकों के अतिरिक्त कोई अध्ययन नहीं था और न ही कोई योग साधना का प्रशिक्षण। तब भी न जाने किस प्रेरणा से दीर्घ श्वास, कुम्भक, नासाग्रदृष्टि, खेचरी मुद्रा आदि प्रयोगों को खेल–खेल में किया करता था। ब्रह्मचर्य साधना सहज रूप से चलती रही। किन्तु इसके विस्तृत अध्ययन का अभाव ही था।

मुनिश्री धर्मेशकुमारजी की प्रेरणा से **'भारतीय वाङ्मय में ब्रह्मचर्य'** पर शोध कार्य करने से ब्रह्मचर्य को विस्तृत रूप से समझने का अवसर मिला। जैन वाङ्मय में भी ब्रह्मचर्य पर विस्तृत विवेचना मिलती है। विस्तार–भय की दृष्टि से **'भारतीय वाङ्मय में ब्रह्मचर्य'** में पूरी सामग्री समग्रता से प्रस्तुत नहीं की जा सकी। इस कमी को पूर्ण करने की दृष्टि से यह चिन्तन आया कि **'जैन वाङ्मय में ब्रह्मचर्य'** को पृथक् रूप से प्रस्तुत किया जाए। इसी शुभ चिन्तन से जैन वाङ्मय में ब्रह्मचर्य का और अधिक विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन समग्रता के साथ करने की प्रेरणा मिली। जैन परम्परा में ब्रह्मचर्य के विकीर्ण सूत्रों को प्रस्तुत ग्रन्थ में छः अध्यायों में गुम्फित किया गया है।

प्रथम अध्याय में ब्रह्मचर्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए इसके स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। विभिन्न दृष्टिकोणों से ब्रह्मचर्य के अर्थ एवं परिभाषाएं देकर ब्रह्मचर्य के संदर्भ को स्पष्ट किया गया है। ब्रह्मचर्य के विभिन्न भेदों के साथ विभिन्न स्थलों पर दी गई इसकी उपमाओं का रोचक प्रस्तुतिकरण किया गया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य की दुष्करता को स्पष्ट करते हुए इसके प्रयोजन एवं साधक की अर्हताओं का निरूपण किया गया है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य के प्रतिपक्षी अब्रह्मचर्य का प्रतिपादन है। प्रथमतः अब्रह्मचर्य का अध्ययन क्यों ? इस जिज्ञासा को समाहित करते हुए, इसके स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया गया है। आगमिक दृष्टि से अब्रह्मचर्य के कारक तत्त्वों का विवेचन करते हुए अब्रह्मचर्य के लिए प्रयुक्त विभिन्न मर्मभेदी उपमाओं को प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में ब्रह्मचर्य साधना से होने वाले लाभ को चार विभागों में बांट कर प्रस्तुत किया गया है। वे विभाग हैं – 1. व्यवहारिक लाभ, 2. मानसिक लाभ, 3. भावात्मक लाभ, 4. आध्यात्मिक लाभ। इसके दूसरे चरण में अब्रह्मचर्य से होने वाली हानियों का वर्णन है। इसे निम्न छः विभागों में बांटा गया है – 1. शारीरिक हानि, 2.मानसिक हानि, 3. नैतिक एवं चारित्रिक हानि, 4. व्यवहारिक हानि, 5. भावात्मक हानि और 6. आध्यात्मिक हानि।

किसी भी शुभ कार्य में प्रवृत्ति और अशुभ कार्य से निवृत्ति के लिए उससे होने वाली लाभ–हानियों का ज्ञान साधक के उत्साह को बनाए रखता है। इस दृष्टि से यह अध्याय बहुत महत्त्वपूर्ण है।

चतुर्थ अध्याय में ब्रह्मचर्य के सुरक्षा–उपायों का वर्णन है। चूंकि ब्रह्मचर्य साधना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और संवेदनशील आयाम है, इसलिए इसकी सुरक्षा की व्यवस्था भी व्यापक है। अन्त में सुरक्षा

उपायों की उपेक्षा करने के घातक परिणामों का भी जिक्र किया गया है।

सुरक्षा के साथ विकास भी आवश्यक है। पंचम अध्याय में ब्रह्मचर्य के विकास के सूत्रों को बारह प्रकार के तप के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय में 'उपसंहार' में सभी अध्यायों के सार को नवनीत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

**– मुनि डॉ. विनोद कुमार 'विवेक'**

## कृतज्ञोऽस्मि

नकार को सकार और निराशा को आशा में बदल देने वाली वैश्विक शक्ति का नाम है – गणाधिपति तुलसी। जिनके आभास मात्र से शिथिल होती आध्यात्मिक धारा प्रबलता से प्रवाहित होने लगती है। समस्याएं जिनके नाम मात्र से वैसे ही विलीन हो जाती है जैसे जाज्ज्वल्यमान सूर्य के उदय होने पर अंधकार। चन्द्रमा को निर्मलता एवं शीतलता का, सूर्य को स्व–पर प्रकाशता का, सागर को विराटता और गहराई का तथा स्वर्ण को कोमलता का पाठ पढ़ाने वाले पूज्य गुरुदेव की स्मृति भी निरन्तर प्रगति के लिए प्रेरित करती रही है। जिन्होंने चक्षु दिया, मार्ग दिया, जीवन दिया, सब कुछ दिया उन्हीं परम पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी के श्रीचरणों में श्रद्धासिक्त कृतज्ञता।

करुणा के महासागर, समर्पण की जीवन्त मूर्ति, सरस्वती पुत्र, विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक जागृत प्रज्ञा के धनी, आचार्य महाप्रज्ञ के प्रति विनम्र कृतज्ञता। जिनका हर श्वास एक नया निष्कर्ष होता था, जिनकी लेखनी ने मेरी लेखनी में ही नहीं सम्पूर्ण जीवन में प्राणों का संचार किया। प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रत्येक अक्षर उस सम्यक् पुरुष की कृपा का ही प्रसाद है। पुनः पुनः नमन।

चित्ताकर्षक सौम्य मूर्ति, युवा चेतना के समुद्वाहक, देवत्व के धारक, तरुण तपस्वी आचार्य श्री महाश्रमणजी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता। जिनके मंगल आशीर्वाद के साथ उत्कृष्ट मार्गदर्शन से ही यह कार्य सम्पन्न हुआ। आपके चरणों में मेरी सर्वात्मना समर्पण की भावना उत्तरोत्तर वृद्धिंगत् होती रहे।

मातृहृदया परम श्रद्धेया संघ महानिर्देशिका साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभाजी का आशीर्वाद और उनकी सहज संलब्ध ऊर्जा इस कार्य में सहायक बनी है, उन्हें बार–बार अभिवन्दना।

पावन स्मृति करता हूँ, दिवंगत मुनि श्री गुलाबचन्द्रजी 'निर्मोही' की, जिनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से श्रुत साधना की ओर मेरे चरण बढ़े, मेरे जीवन का निर्माण हुआ।

मुनिश्री धर्मेशकुमारजी, सघन साधक, गुरु दृष्टि आराधक, सूक्ष्म मेधा व विराट व्यक्तित्व के धनी युवा संत हैं। उन्हीं के सुसंस्कृत मार्गदर्शन में मेरी जीवन यात्रा सुचारू रूप से चल रही है। यह शोध प्रबंध उन्हीं की कृपा का फल है। बार–बार अभिवन्दना।

कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ मुनिश्री अजयप्रकाशजी के प्रति जिन्होंने मुझे समय–समय पर विविध कार्यों से मुक्त रखकर सहयोग प्रदान किया।

ग्रन्थानुक्रमणिका को व्यवस्थित करने में संसारपक्षीय भाणजी मुमुक्षु मधुश्री (अब साध्वीश्री मौलिकयशाजी) ने मनोयोग से समय और श्रम लगाया। उनके सर्वतोमुखी विकास की मंगलकामना।

तेरापंथ धर्मसंघ का श्रावक समाज बड़ा ही श्रद्धा सम्पन्न एवं समर्पित है। मेरी स्वाध्याय यात्रा को अनवरत तथा निर्विघ्न प्रगति देने में अनेक श्रावकों का आधारभूत सहयोग रहा है। शोध प्रबंध के कम्प्यूटराइजेशन में तेरापंथी सभा चेन्नई का सहयोग मिला एवं श्री रमेशजी खटेड़, चेन्नई का कुशलतापूर्वक श्रम लगा। प्रूफ जांचने में श्री विमलजी सेठिया, चेन्नै ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का मनोयोग से उपयोग किया। सबके हार्दिक सहयोग के प्रति कृतज्ञता, मंगलकामना।

अनेक साधु–साध्वियों, समण–समणियों एवं विद्वानों से भी समय–समय पर मार्गदर्शन एवं सहयोग मिलता रहा है। सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता एवं उनके आध्यात्मिक विकास की मंगलकामना करता हूँ।

**– मुनि डॉ. विनोद कुमार 'विवेक'**

कारनोडै, चेन्नई
दि. 01.01.2011

## जैन वाङ्मय में ब्रह्मचर्य

– डॉ. मुनि विनोद कुमार 'विवेक'

### अनुक्रमणिका


अध्याय प्रथम **ब्रह्मचर्य : स्वरूप संधारण**

**1.0 ब्रह्मचर्य का महत्त्व**

**2.0 ब्रह्मचर्य का स्वरूप**

2.1 ब्रह्मचर्य की अर्थ यात्रा
2.2 व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ
2.3 कोशगत अर्थ
2.4 परिभाषाएं
2.5 ब्रह्मचर्य और अन्य व्रतों का संबंध
2.6 ब्रह्मचर्य का ऐतिहासिक विकास
2.7 ब्रह्मचर्य की तात्त्विक मीमांसा
2.8 गांधीजी की दृष्टि में ब्रह्मचर्य
2.9 आचार्य तुलसी के अनुसार ब्रह्मचर्य
2.10 पर्याय विवेचन
2.11 ब्रह्मचर्य : एक निरपवाद साधना

**3.0 ब्रह्मचर्य : भेद–प्रभेद**

3.1 दो भेद (1) निश्चय (2) व्यवहार
3.2 दो भेद (1) ब्रह्मचर्य महाव्रत (2) ब्रह्मचर्य अणुव्रत
3.2. (1) ब्रह्मचर्य महाव्रत का स्वरूप
ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावनाएं
3.2 (2) ब्रह्मचर्य अणुव्रत का स्वरूप
3.2 (2) (i) ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार
3.2 (2) (ii) उपासक की प्रतिमाएं और ब्रह्मचर्य
3.3 नव प्रकार का ब्रह्मचर्य
3.4 अट्ठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य
3.5 ब्रह्मचर्य के सत्ताइस भेद
3.6 अठारह हजार भेद

**4.0 ब्रह्मचर्य की उपमाएं**

**5.0 ब्रह्मचर्य साधना**

5.1 ब्रह्मचर्य साधना का समय

5.2 ब्रह्मचर्य साधना : प्रयोजन

5.3 ब्रह्मचर्य : एक दुष्कर साधना

5.4 ब्रह्मचर्य : अर्हताएं

**6.0 निष्कर्ष**

**7.0 संदर्भ**

अध्याय द्वितीय **अब्रह्मचर्य : एक विवेचन**

**1.0 अब्रह्मचर्य का अध्ययन क्यों ?**

1.1 प्रतिपक्षी का अध्ययन

1.2 समस्या का अध्ययन

1.3 अब्रह्मचर्य भी ज्ञेय

1.4 सीमा का बोध

**2.0 अब्रह्मचर्य का स्वरूप : पर्याय विवेचन**

2.1 अब्रह्म

2.2 मैथुन

2.3 चरंत

2.4 संसर्गी

2.5 सेवनाधिकार

2.6 संकल्पी

2.7 बाधनापदानाम्

2.8 दर्प

2.9 मोह–मूढ़ता

2.10 मनः संक्षोभ

2.11 अनिग्रह

2.12 विग्रह

2.13 विघात

2.14 विभंग

2.15 विभ्रम
2.16 अधर्म
2.17 अशीलता
2.18 ग्राम धर्म तप्ति
2.19 रति क्रीड़ा
2.20 रागचिंता
2.21 कामभोगमार
2.22 वैर
2.23 रहस्यम
2.24 गुह्य
2.25 बहुमान
2.26 ब्रह्मचर्यविघ्न
2.27 व्यापत्ति
2.28 विराधना
2.29 प्रसंग
2.30 कामगुण
2.31 विषयासक्ति
2.32 बहिद्ध
2.33 पर्यापादन
2.34 संवास
2.35 परिचारणा
2.36 काम भोग
2.37 कुशील
2.38 ग्राम्य क्रीड़ा
2.39 लिंग एवं वेद

**3.0 अब्रह्मचर्य : कारक तत्त्व**

3.1 कुशील की संगत
3.2 शब्द श्रवण
3.3 रूप दर्शन
3.4 आहार
3.5 शरीर

3.6 पूर्व भुक्त भोगों की स्मृति
3.7 काम अध्यवसाय
3.8 मान्यता/धारणा
3.9 कर्मों का उदय

**4.0 उपमाएं**

4.1. सूअर
4.2. संग
4.3. दलदल
4.4. बंधन
4.5. गाड़ी की धुरी
4.6. जुआरी
4.7. शिशुनाग
4.8. मक्खी
4.9. दुस्तर समुद्र
4.10. राक्षसी
4.11. शल्य
4.12. विष
4.13. तालपुट विष
4.14. आशीविष सर्प
4.15. वमन
4.16. गरुड़
4.17. बिजली की चमक
4.18. पानी का बुलबुला
4.19. नंदीफल
4.20. किम्पाक फल
4.21. हट
4.22. गोपाल और भाण्डपाल
4.23. बिल्ली–चूहा
4.24. प्रकाश लोलुप पतंगा
4.25. अग्नि
4.26. मृग

4.27. मत्स्य
4.28. भैंसा
4.29. हाथी
4.30. वैतरणी नदी
4.31. चोर
4.32. पिशाच
4.33. रेशम का कीड़ा
4.34. सछिद्र बर्तन
4.35. मालती लता
4.36. कौआ
4.37. कुत्ता
4.38. कीड़े
4.39. घी
4.40. पागल
4.41. अपथ्य आहार
4.42. कुष्ठ रोग

**5.0 निष्कर्ष**

**6.0 संदर्भ**

अध्याय तृतीय **ब्रह्मचर्य के लाभ और अब्रह्मचर्य की हानियां**

**1.0 ब्रह्मचर्य के लाभ**

**1.1 व्यावहारिक लाभ**

1.1.1. मंगलकारी
1.1.2. विश्वास पात्रता
1.1.3. मैत्री का विकास
1.1.4. सम्मान
1.1.5. शारीरिक स्वास्थ्य

**1.2 मानसिक लाभ**

1.2.1. मानसिक स्थिरता
1.2.2. मानसिक स्वास्थ्य
1.2.3. सद्गुणों का प्रेरक

**1.3 भावात्मक लाभ**

1.3.1. शुभ लेश्याओं की परिणति

1.3.2. आत्मिक सुख (समाधि)

1.3.3. घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि

1.3.4. सुलभ बोधिता

**1.4 आध्यात्मिक लाभ**

1.4.1. दु:ख मुक्ति

1.4.2. संवर

1.4.3. कर्म निर्जरा

1.4.4. सद्गति

1.4.5. मोक्ष

1.4.6. साधना की क्षमता में वृद्धि

**2.0 अब्रह्मचर्य से हानियां**

**2.1 शारीरिक हानियां**

2.1.1.निर्बलता

2.1.2.जरा (बुढ़ापा)

2.1.3.इन्द्रिय मूढ़ता

2.1.4.नि:संतानता

2.1.5.रोग

2.1.6.अकाल मृत्यु

2.1.7.दण्ड

2.1.8.दु:ख

2.1.9.तनाव

**2.2 मानसिक हानियां**

2.2.1.परवशता

2.2.2.अनिश्चितता

2.2.3.चिंता

2.2.4.मानसिक असमाधि(अशांति)

2.2.5.दुर्ध्यान

2.2.6.धृष्टता

2.2.7.पश्चाताप

2.2.8.विषाद ग्रस्तता
2.2.9.स्वाभिमान का नाश
2.2.10. बुद्धि का नाश

**2.3 नैतिक एवं चारित्रिक हानियां**

2.3.1.व्रत भंग
2.3.2.हिंसा
2.3.3.असत्य
2.3.4.विषयासक्ति (चोरी की प्रेरक)
2.3.5.परिग्रह
2.3.6.निर्दयता

**2.4 व्यावहारिक हानियां**

2.4.1.आज्ञा की हानि
2.4.2.निंदा व तिरस्कार की प्राप्ति
2.4.3.कलह
2.4.4.वैर की वृद्धि
2.4.5.अशुभ संस्कारों की प्रगाढ़ता
2.4.6.विघ्न बहुलता
2.4.7.महान अनर्थ
2.4.8.संबंधों की उपेक्षा
2.4.9.सद्गुणों का नाश
2.4.10 जिम्मेदार पद के अयोग्य
2.4.11 अभ्याख्यान

**2.5 भावात्मक हानियां**

2.5.1.क्रोध
2.5.2.अहंकार की वृद्धि
2.5.3.अविनय की वृद्धि
2.5.4.माया
2.5.5.अतृप्ति
2.5.6.भय कारक
2.5.7.अविवेक जनक
2.5.8.अशुभ लेश्याओं का परिणमन

2.5.9.धर्म की हानि

**2.6 आध्यात्मिक हानियां**

2.6.1.ज्ञान का विपर्यास

2.6.2.अत्राणता और अशरणता

2.6.3.प्रमाद का जनक

2.6.4.दुःख

2.6.5.उपसर्ग

2.6.6.दुर्गति

2.6.7.भव वृद्धि

2.6.8.आश्रव/ कर्म बंधन का हेतु

2.6.9.धर्म से पतन

2.6.10. महामोहनीय कर्म का बन्धन

**3.0 निष्कर्ष**

**4.0 संदर्भ**

अध्याय चतुर्थ **ब्रह्मचर्य : सुरक्षा के उपाय**

**1.0 ब्रह्मचर्य सुरक्षा का महत्त्व**

**2.0 ब्रह्मचर्य सुरक्षा के उपाय**

2.1.0 विविक्तशयनासन

2.1.1.विविक्तशयनासन के उद्देश्य

2.2.0.स्त्री संस्तव एवं संवास का वर्जन

2.2.1.स्त्री संस्तव के दोष

2.2.2.स्त्री चरित्र (स्वभाव) का वर्णन

2.3.0 स्त्री कथा का वर्जन

2.3.1. स्त्री कथा का अर्थ

2.3.2.स्त्री कथा के प्रकार

2.3.3. स्त्री कथा के दोष

2.4.0 स्त्रियों के स्थानों का सेवन वर्जन

2.5.0 स्त्रियों के मनोरम इन्द्रियों को न देखना (दृष्टि संयम), न चिन्तन करना (मनःसंयम)

2.6.0 प्रणीत रस वर्जन

2.7.0 अतिमात्रा में आहार निषेध
2.8.0 पूर्व भुक्त भोगों का स्मरण न करना (स्मृति संयम)
2.9.0 शब्दादि इन्द्रिय विषयों एवं श्लाघा का अनुपाती न होना।
2.10.0 सात और सुख में प्रतिबद्ध न होना
2.11.0 श्रोतेन्द्रिय संयम
2.12.0 विभूषा वर्जन
2.13.0 वाणी संयम
2.14.0 ग्रामानुग्राम विहार
2.15.0 प्राण विसर्जन
2.16.0 संघबद्ध साधना
2.17.0 सम्यक् प्रवृत्तियों में व्यस्तता
2.18.0 हास्य वर्जन
2.19.0 निमित्तों से बचाव

**3.0. सुरक्षा उपायों की उपेक्षा का परिणाम**

**4.0. निष्कर्ष**

**5.0. संदर्भ**

अध्याय पंचम **ब्रह्मचर्य : विकास के साधन**

**1.0. साधन – विमर्श**

**2.0. ब्रह्मचर्य : विकास के साधन**

2.1.0 ज्ञान
2.1.1 ज्ञान के आयाम
2.1.2.ज्ञान के साधन
2.2.0 दर्शन
2.3.0 चारित्र

**3.0. तप**

3.1.0 अनशन
3.2.0 ऊनोदरी
3.3.0 रस परित्याग
3.4.0 भिक्षाचरी

3.5.0 कायक्लेश –
3.5.1 आसन
3.5.2 प्राणायाम
3.5.3 मुद्रा
3.5.4 बंध
3.6.0 प्रतिसंलीनता
3.6.1. इन्द्रिय प्रतिसंलीनता
3.6.2.कषाय प्रतिसंलीनता
3.6.3.योग प्रतिसंलीनता
3.6.4.विविक्तशयनासन
3.7.0 प्रायश्चित्त
3.8.0 विनय
3.9.0 वैयावृत्य
3.10.0 स्वाध्याय
3.10.1 अनित्य भावना
3.10.2. अशरण भावना
3.10.3. भव भावना
3.10.4 एकत्व भावना
3.10.5. अन्यत्व भावना
3.10.6. अशौच भावना
3.10.7 माध्यस्थ भावना
3.11.0 ध्यान
3.11.1 शरीर प्रेक्षा
3.11.2. आनन्द केन्द्र प्रेक्षा
3.11.3. विशुद्धि केन्द्र प्रेक्षा
3.11.4. ब्रह्म केन्द्र प्रेक्षा
3.11.5. ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र प्रेक्षा
3.11.6. शक्ति केन्द्र प्रेक्षा
3.11.7. स्रोत दर्शन
3.11.8. संधि दर्शन
3.11.9. लेश्या ध्यान

3.11.10. दीर्घश्वास प्रेक्षा
3.11.11. अन्तर्यात्रा
3.11.12. अनिमेष प्रेक्षा
3.12.0 कायोत्सर्ग
**4.0. निष्कर्ष**
**5.0. संदर्भ**

अध्याय षष्टम् **उपसंहार**

**ग्रन्थानुक्रमणिका**

# अध्याय प्रथम
# ब्रह्मचर्य : स्वरूप संधारण

## ब्रह्मचर्य : स्वरूप संधारण

### रूपरेखा

**1. ब्रह्मचर्य का महत्व**

**2. ब्रह्मचर्य का स्वरूप**

- 2.1 ब्रह्मचर्य की अर्थ यात्रा
- 2.2 व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ
- 2.3 कोशगत अर्थ
- 2.4 परिभाषाएं
- 2.5 ब्रह्मचर्य और अन्य व्रतों का संबंध
- 2.6 ब्रह्मचर्य का ऐतिहासिक विकास
- 2.7 ब्रह्मचर्य की तात्त्विक मीमांसा
- 2.8 गांधीजी की दृष्टि में ब्रह्मचर्य
- 2.9 आचार्य श्री तुलसी के अनुसार ब्रह्मचर्य
- 2.10 पर्याय विवेचन
- 2.11 ब्रह्मचर्य : एक निरपवाद साधना

**3. ब्रह्मचर्य के भेद-प्रभेद**

- 3.1 दो भेद (1) निश्चय (2) व्यवहार
- 3.2 दो भेद (1) ब्रह्मचर्य महाव्रत (2) ब्रह्मचर्य अणुव्रत
- 3.2. (1) महाव्रत का स्वरूप
  - महाव्रत की भावनाएं
- 3.2 (2) अणुव्रत का स्वरूप
- 3.2 (2) (i) ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार
- 3.2 (2) (ii) उपासक की प्रतिमाएं और ब्रह्मचर्य
- 3.3 नव प्रकार का ब्रह्मचर्य
- 3.4 अट्ठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य
- 3.5 ब्रह्मचर्य के सत्ताइस भेद

3.6 अठारह हजार भेद

**4. ब्रह्मचर्य की उपमाएं**

**5. ब्रह्मचर्य साधना**

5.1 ब्रह्मचर्य साधना का समय

5.2 ब्रह्मचर्य साधना : प्रयोजन

5.3 ब्रह्मचर्य : एक दुष्कर साधना

5.4 ब्रह्मचर्य : अर्हताएं

**6. निष्कर्ष**

**7. संदर्भ**

## 1. ब्रह्मचर्य : स्वरूप संधारण

### 1.0 ब्रह्मचर्य का महत्त्व :

अनन्त ज्ञानी अर्हतों के अनुभवों की वाणी का सार आगमों में संगृहीत है। गुरु परम्परा से आगत आगम सार्वभौम और त्रिकाल बाधातीत है। इसके मुख्यत: दो भेद हैं – (i) अंग प्रविष्ट और (ii) अंग बाह्य। इनकी रचना अर्द्ध मागधी प्राकृत में की गई है। जैन साधक (भले ही वह महाव्रतों की साधना करे या अणुव्रतों की) की साधना का आधार आगम ग्रंथ ही होते हैं। इन ग्रंथों में साधना के विविध आयामों में प्रमुख – ब्रह्मचर्य के महत्त्व पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

आचारांग सूत्र में ब्रह्मचर्य को परम तत्त्व के समकक्ष कहा गया है। सूत्रकार की भाषा में ''जिसे तुम परम तत्त्व के प्रति लगा हुआ जानते हो, उसे कामनाओं से दूर हुआ जानो, जिसे तुम कामनाओं से दूर हुआ जानते हो, उसे परम तत्त्व के प्रति लगा हुआ जानो।''[1]

जैन आचार मीमांसा में आचारांग के निर्युक्तिकार भद्रबाहु को संदर्भित करते हुए लिखा गया है कि बारह अंगों में आचारांग प्रथम अंग है। उसमें मोक्ष के उपाय का वर्णन है, वह प्रवचन का सार है। आचारांग के प्रथम श्रुत स्कन्ध का दूसरा नाम ब्रह्मचर्य भी है। आचारांग के नौ अध्ययनों में सारा मोक्ष मार्ग समा जाता है, इससे ब्रह्मचर्य शब्द स्वयमेव महत्ता को प्राप्त हो गया है।[2]

सूत्रकृतांग सूत्र में ब्रह्मचर्य का बहुत ही विशद वर्णन मिलता है। यहां सभी तपस्याओं में ब्रह्मचर्य को प्रधान माना गया है।[3] सूत्रकृतांग के चूर्णिकार ने इसके महत्त्व को प्रतिपादित करने वाला एक सुन्दर श्लोक उद्धृत किया है–

**पुप्फ- फलणं च रसं सुराए मंसस्स महिलियाणं च।**
**जाणंता जे विरता ते दुक्करकारए वंदे।।**

पुष्प, फल, मदिरा, मांस और स्त्री के रस को जानते हुए जो उनसे विरत होते हैं, वे दुष्कर तप करने वाले हैं। उनको मैं वंदना करता हूँ।[4]

ठाणं सूत्र में ब्रह्मचर्य के विविध अंग यथा – शील, व्रत, गुण, मर्यादा, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से युक्त पुरुषों के तीनों भव (1) वर्तमान भव (2) उपपात, इसके बाद का और (3) उसके बाद का आगामी भव– प्रशस्त कहे गए हैं।[5] यहाँ भगवान महावीर ने स्वयं ब्रह्मचर्य की प्रशंसा तो की ही है।[6] उन्होंने यहाँ तक कहा है कि इसका अनुमोदन करने वाला–वर्णवाद करने वाला सुलभ बोधिकत्व कर्म का अर्जन करता है।[7] इसके साथ ही श्रमण धर्म के दस भेदों में ब्रह्मचर्य को स्थान देकर इसके महत्त्व को और भी अधिक बढ़ाया गया है।[8] यहाँ ब्रह्मचर्य पालन में

अशक्य व्यक्ति को प्रव्रज्या के अयोग्य घोषित किया गया है। [9]

उपासकदशांग सूत्र में भगवान महावीर के दस प्रमुख श्रावकों के जीवन का वर्णन किया गया है। आनन्द आदि श्रावकों के त्याग–प्रत्याख्यान, साधना एवं उपसर्ग आदि के वर्णन में ब्रह्मचर्य को विशेष महत्त्व दिया गया है। उदाहरणार्थ पौषधोपवास व्रत के नियमों के अन्तर्गत समस्त सावद्य प्रवृत्तियों के त्याग में ब्रह्मचर्य समाहित है फिर भी ब्रह्मचर्य को महत्त्व देने के लिए पृथक उल्लेख भी किया गया है।[10]

एक श्रमणोपासक को लोकोत्तर साधना के साथ–साथ लौकिक जिम्मेदारियों का निर्वाह भी करना होता है। इस कार्य में बहुधा दिव्य शक्तियों की सहायता भी लेनी होती हैं। उन दिव्य शक्तियों के आह्वान के लिए मानसिक स्थिरता व पवित्रता की अति आवश्यकता होती है। उपासकदशा सूत्र में मेघकुमार के प्रसंग में यह पता चलता है कि मानसिक स्थिरता एवं पवित्रता के लिए ब्रह्मचर्य को एक आवश्यक अर्हता मानी गई है। इससे देव आह्वान के लिए ब्रह्मचर्य का महत्त्व उजागर होता है। [11]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को सभी व्रतों, नियमों, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूलाधार बताया गया है, क्योंकि इसके खण्डित होने पर सभी व्रतों का खण्डन हो जाता है और इसके पूर्णरूपेण पालन से ही अन्य व्रतों का पालन सम्भव है। ब्रह्मचर्य को किसी विशाल वृक्ष के स्कन्ध के समान माना गया है। जिस प्रकार विशाल वृक्ष की शाखाएं, प्रशाखाएं, टहनियां, पत्ते, पुष्प, फल आदि का आधार स्कन्ध होता है उसी प्रकार समस्त धर्मों का आधार ब्रह्मचर्य है। [12]

व्रतों को रत्नों की तरह बहुमूल्य माना जाता है। इसलिए उनकी सुरक्षा की व्यवस्था भी की जाती है। व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत का महत्त्व इससे भी सिद्ध होता है कि सभी व्रतों की अपेक्षा सर्वाधिक सुरक्षा व्यवस्था ब्रह्मचर्य की ही की गई है। [13] इतना ही नहीं, इस ग्रंथ में भगवान महावीर की दृष्टि में ब्रह्मचर्य का महत्त्व इससे भी प्रतीत होता है कि उन्होंने ब्रह्मचर्य को भगवान तक की उपमा दे दी है– **बंभं भगवंतं** [14]**।**

तप, जप आदि साधना के प्रयोगों द्वारा कईं साधक तेजस्विता अर्जित कर लेते हैं। जिसके प्रभाव से देवता भी उनकी पूजा–अर्चना करने लग जाते हैं। ऐसे महापुरु ष के लिए भी ब्रह्मचर्य पूजनीय है अर्थात् इसकी साधना उनके लिए भी आवश्यक है। [15]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को सभी पवित्र अनुष्ठानों को सारयुक्त बनाने वाला कह कर सर्वोच्च स्थान दिया गया है। ब्रह्मचर्य के रहने पर ही दूसरे अनुष्ठान लाभप्रद हैं अन्यथा निस्सार हैं। [16]

वहां यह बताया गया है कि ब्रह्मचर्य महाव्रत का निर्दोष परिपालन करने से मनुष्य उत्तम

ब्राह्मण – यथार्थ नाम वाला, उत्तम श्रमण – सच्चा तपस्वी, उत्तम साधु – वास्तविक निर्वाण साधक, श्रेष्ठ ऋषि अर्थात् यथार्थ तत्त्वदृष्टा, उत्कृष्ट मुनि – तत्त्व का वास्तविक मनन करने वाला, वही संयत – संयमवान और वही सच्चा भिक्षु – निर्दोष भिक्षा जीवी है। [17] साधना की इन पर्यायों का आधार ब्रह्मचर्य को बताते हुए यहां ब्रह्मचर्य को शुद्ध, न्याययुक्त, कुटिलता से रहित, सर्वोत्तम और दु:खों और पापों को उपशान्त करने वाला बताया गया है। [18]

दसवैकालिक सूत्र में श्रामण्य की प्रथम कसौटी ब्रह्मचर्य को माना गया है। सूत्रकार कहते हैं श्रामण्य के समाधिपूर्वक पालन के लिए ब्रह्मचर्य प्रथमावश्यक है–

**कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।**
**पए पए विसीयंतों, संकप्पस्स वसं गओ।।** [19]

इसी सूत्र में ब्रह्मचर्य का महत्त्व इससे भी प्रमाणित होता है कि इसमें सूत्रकार ने राजीमती के मुख से यह कहा है कि ब्रह्मचर्य भंगकर जीने से तो मृत्यु श्रेयस्कर है। [20]

उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचर्य को यज्ञों में महायज्ञ कहा गया है। [21] इसे बहुत ही दुष्कर बताते हुए कहा गया है कि जो स्त्री विषयक आसक्तियों का पार पा जाता है, उसके लिए शेष सारी आसक्तियां वैसे ही सुतर हो जाती है जैसे महासागर को पार करने वाले के लिए गंगा नदी। [22]

यहाँ ब्रह्मचर्य को धर्म, ध्रुव, नित्य, शाश्वत और अर्हत् द्वारा उपदिष्ट[23] बताते हुए यह कहा गया है कि जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसे देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस और किन्नर ये सभी नमस्कार करते हैं। [24]

धर्मामृत अनगार में ब्रह्मचर्य की महिमा बताते हुए कहा गया है कि यह व्रत समस्त व्रतों में सार्वभौम के समान है तथा जो पुरुष इसका पालन करते हैं वे ही सर्वोत्कृष्ट आनन्द – मोक्ष सुख को प्राप्त किया करते हैं। [25]

स्याद्वाद मञ्जरी में ब्रह्मचर्य की महिमा में एक सुन्दर श्लोक उद्धृत किया गया है –

**एकरात्रौषितस्यापि या गतिर्ब्रह्मचारिणः ।**
**न सा ऋतुसहस्रेण प्राप्तुं शक्या युधिष्ठिरः ।।**

हे युधिष्ठिर! एक रात ब्रह्मचर्य से रहने वाले पुरुष को जो उत्तम गति मिलती है, वह गति हजारों यज्ञ करने से भी नहीं होगी। [26]

वैदिक ऋषियों की दृष्टि में भी ब्रह्मचर्य का कितना ऊंचा स्थान है यह उनके इन शब्दों से दर्शित होता है –

**व्रतानां ब्रह्मचर्यं हि, निर्दिष्टं गुरूकं व्रतम् ।**
**तज्जन्यपुण्यसम्भार - संयोगाद् गुरु रुच्यते।।**
**एकतश्चतुरो वेदाः, ब्रह्मचर्य च एकतः।**

**एकत: सर्व पापानि, मद्यं मांसं च एकत:।।**

आचार्य भिक्षु ने शील की नव बाड़ में ब्रह्मचर्य की महत्ता को इस प्रकार उजागर किया है–

**कोड़ केवली गुण करै, रसना संहस वणाय।**
**तो ही ब्रह्मचर्य नां गुणघणा, पूरा कह्या न जाय।।** [27]

## 2.0 ब्रह्मचर्य का स्वरूप

जैन परम्परा में ब्रह्मचर्य के स्वरूप को विभिन्न ग्रन्थों में आई हुई परिभाषाओं, भेद–प्रभेद एवं उपमाओं से जाना जा सकता है।

## 2.1 ब्रह्मचर्य की अर्थ यात्रा

सामान्यत: ब्रह्मचर्य का अर्थ ''मैथुन विरति'' ही अधिक प्रचलित है किन्तु जैन वाङ्मय में विभिन्न स्थलों पर विभिन्न रूपों में इसका प्रयोग मिलता है। आचारांग भाष्य में ब्रह्मचर्य के अर्थ इस प्रकार किए गए हैं – (1) आत्मविद्या या आत्म विद्याश्रित आचरण, विरति। [28] (2) आचार, मैथुन विरति– उपस्थ संयम, गुरुकुलवास [29] (3) आचार, सत्य और तप [30] (4) आत्म रमण, उपस्थ संयम तथा गुरुकुल वास।[31]

सूत्रकृतांग सूत्र में ब्रह्मचर्य का अर्थ आचार्य महाप्रज्ञ ने इस प्रकार किया है– ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ केवल वस्ति – नियमन ही नहीं है, ब्रह्म–आत्मा में रमण करना ही इसका प्रमुख अर्थ है। [32] इसी सूत्र में ब्रह्मचर्य शब्द का प्रयोग ''गुरुकुलवास '' के रूप में भी मिलता है। [33] चूर्णिकार ने ब्रह्मचर्य के तीन अर्थ किए हैं–

(1) सुचारित्र (2) नौ गुप्तियुक्त मैथुन–विरति (2) गुरुकुलवास। [34] इसके अतिरिक्त आचार, आचरण, संवर, संयम और ब्रह्मचर्य को चूर्णिकार ने एकार्थक माना है। [35]

स्थानांग और समवायांग सूत्र में आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के लिए ब्रह्मचर्य नाम प्रयुक्त हुआ है।[36] ठाणं सूत्र की वृत्ति में ब्रह्मचर्य का अर्थ 'कामभोग विरति' किया गया है। [37] समवायांग में साधु के 27 गुणों में चौथा ब्रह्मचर्य के लिए 'मैथुन विरमण' शब्द का प्रयोग किया गया है। [38]

समवायांग सूत्र के वृत्तिकार अभयदेव सूरी ने ब्रह्मचर्य का अर्थ कुशल अनुष्ठान तथा संयम किया है। उन्होंने इन अनुष्ठानों का वर्णन आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ अध्ययनों में प्रतिबद्ध माना है। इस उपलक्षण से आचारांग के नौ अध्ययनों को ''ब्रह्मचर्य'' शब्द से अभिहित किया गया है। [39] इस सूत्र में ''आचारांग सूत्र'' के लिए भी ब्रह्मचर्य शब्द प्रयुक्त हुआ है। [40]

ज्ञातासूत्र के वृत्तिकार ने सब प्रकार के कुशल अनुष्ठान को ब्रह्मचर्य माना है।[41]

दसवैकालिक सूत्र में ब्रह्मचर्य का उल्लेख ''मैथुन विरति'' के अर्थ में ही किया गया है।[42]

उत्तराध्ययन चूर्णि में ब्रह्मचर्य का निरुक्त (निर्वचन, व्यत्पति सहित व्याख्या) करते हुए बताया गया है–

**बृंहति, बृहितों वा अनेनेति ब्रह्म–** जो संयम का बृंहण– पोषण करता है वह ब्रह्मचर्य है।[43]

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा विरचित षट् प्राभृत, द्वादशानुप्रेक्षा के अनुसार स्त्री के अंग–प्रत्यंगों को देखते हुए भी उनमें दुर्भाव न लाना ब्रह्मचर्य है।

**सव्वंगं पेच्छंतो इत्थीणं तासु मुयदि दुव्भावं।**
**सो बम्हचेरभावं सुक्कदि खलु दुद्धरं धरदि।।**[44]

तत्त्वार्थ वार्तिक में ब्रह्मचर्य का अर्थ कामोत्तेजक वस्तुओं तथा दृश्यों का वर्जन किया है।[45] आवश्यक सूत्र की हारिभद्रीया वृत्ति में ब्रह्मचर्य का अर्थ वस्ति संयम और मैथुन विरति किया गया है।[46]

## 2.2 व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ

ब्रह्मचर्य शब्द ब्रह्म+चर्य के योग से बना है। ''ब्रह्म'' शब्द अपने आप में अनेकानेक अर्थों को समेटे हुए है। भारतीय वाङ्मय में ''ब्रह्म'' शब्द का विस्तृत प्रयोग मिलता है।

सूत्रकृतांग सूत्र के टीकाकार ब्रह्मचर्य शब्द की निर्युक्ति इस प्रकार करते हैं–

**(1) ब्रह्मचर्यते – अनुष्ठीयते यस्मिन् तद् ब्रह्मचर्यं।**[47]

अर्थात् – जहाँ ब्रह्म का आचरण किया जाता है, वह ब्रह्मचर्य है।

(2) **ब्रह्म – सत्य तपोभूतदयेन्द्रिय निरोध लक्षणं तच्चर्यते अनुष्ठीयते यस्मिन् तन्मौनीन्द्र प्रवचनं ब्रह्मचर्यमित्युच्यते**[48] ब्रह्म अर्थात् सत्य, तप, जीव दया, इन्द्रिय निरोध लक्षण से युक्त आचरण जिसमें है वह निर्ग्रन्थ प्रवचन ब्रह्मचर्य कहलाता है। उत्तराध्ययन चूर्णि में ब्रह्मचर्य शब्द का निर्युक्त इस प्रकार किया गया है– **बृंहति बृंहितो वा अनेनेति ब्रह्म**[49] अर्थात् जो संयम का बृंहण/पोषण करता है, वह ब्रह्म/ब्रह्मचर्य है।

(3) वैदिक वाङ्मय के अनुसार ब्रह्म में चरण तद्गत आचरण ब्रह्मचर्य है– **ब्रह्मणि चरणं ब्रह्मचर्यमित्युच्यते।**

''ब्रह्म'' शब्द के मुख्य रूप से तीन अर्थ रहे हैं वीर्य, आत्मा, विद्या।

चर्य – शब्द के भी तीन अर्थ हैं ''रक्षण, रमण तथा अध्ययन।'' इस तरह ब्रह्मचर्य के

तीन अर्थ हैं– वीर्य रक्षण, आत्म रमण और विद्याध्ययन।[50]

ब्रह्म के वैदिक और जैन परम्पराओं में दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं – आत्मा और परमात्मा। ब्रह्म का तीसरा अर्थ, जो वैदिक परम्परा में विशेष प्रचलित है। वह है – अध्ययन (विद्याऽध्ययन) या वेद का अध्ययन।[51]

ब्रह्म का चौथा व्युत्पत्यर्थ होता है – बृहद् विराट या महान।[52]

चर्य का अर्थ होता है– विचरण करना, रमण करना, चलना या गति करना, चर्या करना, अध्ययन करना या अनुष्ठान करना।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का पूर्ण अर्थ हुआ– आत्मा में रमण करना अथवा परमात्मा (परमात्मभाव) में विचरण करना अथवा विद्याध्ययन या वेदाध्ययन में विचरण करना अथवा वेदाध्ययन का आचरणीय कर्म ब्रह्मचर्य है। अथवा बृहत् या महान में विचरण करना, विराट में रमण करना भी ब्रह्मचर्य है।

**2.3 कोशगत अर्थ**

ब्रह्मचर्य शब्द का विविध कोशों में भिन्न–भिन्न अर्थ प्रस्तुत किया गया है। आप्टे के अनुसार ब्रह्मचर्य शब्द के अर्थ इस प्रकार हैं–[53]

1. धार्मिक शिष्य वृत्ति, वेदाध्ययन के समय ब्राह्मण बालक का ब्रह्मचर्य जीवन, जीवन का प्रथम आश्रम, 2. धार्मिक अध्ययन, आत्मसंयम 3. कौमार्य, 4. सतीत्व, विरति, इन्द्रिय निग्रह, 5. अध्यात्म विद्या

2. पाइअसद्दमहण्णवो में ब्रह्मचर्य के दो अर्थ किए गए हैं।[54] (1) मैथुन विरति (2) जिनेन्द्र शासन, जिन प्रवचन।

अमर कोश के कोशकार ने ब्रह्मचर्य के दो अर्थ किए हैं। एक तो चार आश्रमों में प्रथम आश्रम ''ब्रह्मचर्याश्रम'' **ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थे भिक्षुश्चतुष्टये आश्रमोऽस्त्री** और दूसरा वेद को ब्रह्म मानते हुए इनके अध्ययन के लिए किए गए संकल्प को ब्रह्मचर्य कहा गया है–

**ब्रह्मवेदः। तदध्ययनार्थ व्रतमप्युपचाराद् ब्रह्म। ब्रह्म चरितु शीलमस्य।**[55]

4. A Sanskrit English Dictionary में ब्रह्मचर्य को इस प्रकार दर्शाया गया है – Study of the Veda, the state of an unmarried religious student, a State of Continuance and Chastity.[56]

5. शब्द कल्पद्रुम में राजाराधाकान्त देव ने ब्रह्मचर्य का एक अर्थ आश्रम विशेष और दूसरा पातञ्जल योग सूत्र के यम का एक भेद बताया है।[57]

6. मानक हिन्दी कोश[58] में श्री रामचन्द्र वर्मा ने ब्रह्मचर्य की व्याख्या इस प्रकार की है –

1. भारतीय आर्यों की वह अवस्था तथा व्रत जिसमें विद्यार्थी विशेषत: ब्राह्मण विद्यार्थी को वेदों का अध्ययन करना पड़ता है, सब प्रकार के सांसारिक बन्धनों से दूर रहकर सात्विक जीवन बिताना पड़ता है और अपने वीर्य को अक्षुण्ण रखना पड़ता है।

2. अष्ट विध मैथुनों से बचने का व्रत।

3. योग में एक प्रकार का यम। वीर्य को रक्षित रखने का प्रतिबंध। मैथुन से बचने की साधना।

6. Dictionary of Buddhism [59] के अनुसार पवित्र जीवन, चरम लक्ष्य से प्रकाशित भिक्षु का जीवन, बुद्ध का अनुगमन, पंचशील के अतिरिक्त वासनात्मक दुराचरण को त्याग कर पूर्ण पवित्रता रखना, ब्रह्मचर्य है।

Brahma Chariya in Budha, Usage this term denotes 'holy living' i.e. life of the monk, With enlightenment as ultimate goal. It can be applied also to be religious, life of the lay Buddha; who undertakes to observe not the 5 moral Precepts (Panchasila) only, but the additional three and Undertakes to refrain from Sexual misconduct inlien of view of Complete Chastity.

**2.4 परिभाषाएं**

ब्रह्मचर्य की अनेक परिभाषाएं आचार्यों ने दी हैं। कुछ का उपस्थापन, विवेचन यहां किया जा रहा है –

1. पद्मनन्दि पंचविशतिका –

**आत्मा ब्रह्म विविक्तबोधनिलया यत्तत्र ब्रह्मचर्यं पर:।**
**स्वांगासंग विवर्जितैक मनसस्तद् ब्रह्मचर्यं मुने : ।।12/2।।**

अर्थात् ब्रह्म शब्द का अर्थ निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्मा है, उसमें लीन (तन्मय) होना ब्रह्मचर्य है। जिस मुनि का मन अपने शरीर के संबंध में निर्ममत्व हो चुका है, उसी के ब्रह्मचर्य होता है। [60]

2. भगवती आराधना –

**जीवो बंभो, जीवम्मि चेव चरिया हविज्ज जा जदिणो।**
**तं जाण बंभचेरं विमुक्कपरदेहतित्तिस्स।। सू. 872।।**

जीव ब्रह्म है, जीव में ही जो पर देह सेवन रहित चर्या होती है उसे ब्रह्मचर्य समझो। [61]

3. भारतीय संस्कृति का विकास (प्र.ख.) पृ. 228 (ले. श्री मंगल देव शास्त्री)

**''सर्वेषामति भूतानां यत्तत्कारणमव्ययम्। कुटस्थं, शाश्वतं दिव्यं, वेदो वा ज्ञानमेव यत्। तदेतदुभयं ब्रह्म ब्रह्मशब्देन कथ्यते। तदुद्दिश्य व्रतं यस्य ब्रह्मचारी स उच्यते।''** [62]

अर्थात् ''समस्त पदार्थों का जो अक्षय, कुटस्थ, शाश्वत एवं दिव्य मूल कारण है, वह ''ब्रह्म'' है

अथवा ज्ञान रूप वेद ''ब्रह्म'' है। ऐसे ''ब्रह्म'' की प्राप्ति के उद्देश्य से व्रत ग्रहण करना ब्रह्मचर्य है।

4. तत्त्वार्थ सूत्र – **'' अहिंसादयोगुणा यस्मिन परिपाल्यमाने बृंहन्ति वृद्धिमुयन्ति तद् ब्रह्म।''** [63]

जिसके पालन करने पर अहिंसादि गुण बढ़ते हैं, वह ''ब्रह्म'' है। ''ब्रह्म'' में विचरण करना ब्रह्मचर्य है।

5. धवला – **''ब्रह्म चारित्रं पंच व्रत समिति गुप्त्यात्मकम् शान्ति पुष्टि हेतुत्वात्।''** [64]

अर्थात्, पांच महाव्रत, पांच समिति एवं तीन गुप्ति रूप चारित्र; क्योंकि वह शान्ति और पुष्टि (आत्म गुणों की) का कारण है। उक्त ब्रह्म में रमण करना ब्रह्मचर्य है।

6. धर्मामृत अणगार –

**या ब्रह्मणी स्वात्मनि शुद्ध बुद्धे चर्या परद्रव्यमुचः प्रवृत्तिः।**
**तद् ब्रह्मचर्यं व्रत सार्वभौमं ये पान्ति ते यान्ति परं प्रमोदम्।।** [65]

पर द्रव्यों से रहित शुद्ध–बुद्ध अपनी आत्मा में जो चर्या अर्थात् लीनता होती है, उसे ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। व्रतों में सर्व श्रेष्ठ इस ब्रह्मचर्य व्रत का जो पालन करते हैं वे अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त करते हैं।

7. जैन सिद्धान्त दीपिका – **सर्वथा हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्महाव्रतम्।।** [66]

हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह इनको सर्वथा त्यागने का नाम महाव्रत है।

सर्वथा त्यागने का अर्थ है कि हिंसा आदि का आचरण तीन करण, तीन योग से स्वयं न करना, दूसरों से न कराना, करते हुए का अनुमोदन न करना, मन से, वाणी से और शरीर से इस प्रकार त्याग करने का नाम महाव्रत है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ ब्रह्म में निष्ठ होना, ब्रह्माचरण करना, मैथुन का सर्वथा परित्याग करना, पूर्ण शील में प्रतिष्ठित होना, मन–वचन–कर्म कहीं से, किसी प्रकार से मैथुन के प्रति सर्वथा स्खलित न होना ब्रह्मचर्य है। वीर्य संरक्षण, आध्यात्मिक उन्नति और आत्मप्रकाश की लब्धि ''ब्रह्मचर्य'' शब्द के वाच्यार्थ हैं।

## 2.5 ब्रह्मचर्य और अन्य व्रतों का संबंध

प्रश्नव्याकरण सूत्र के अनुसार ब्रह्मचर्य और अन्य व्रतों में आधार और आधारी का संबंध है। क्योंकि शेष चार व्रत ब्रह्मचर्य पर ही टिके हुए हैं। इस तथ्य का स्पष्टीकरण सूत्रकार ने अनेक उपमाओं से किया है। सूत्रकार के ही शब्दों में – इसके भग्न होने पर सहसा – विनय,

शील, तप और गुणों का समूह फूटे घड़े की तरह संभग्न हो जाता है, दही की तरह मथित हो जाता है, आटे की भांति चूर्ण–चूरा–चूरा हो जाता है, कांटे लगे शरीर की तरह शल्ययुक्त हो जाता है। पर्वत से लुढ़की शिला के समान लुढ़का–गिरा हुआ, चीरी या तोड़ी हुई लकड़ी की तरह खण्डित हो जाता है तथा दुरावस्था को प्राप्त और अग्नि द्वारा दग्ध होकर बिखरे काष्ठ के समान विनष्ट हो जाता है। [67]

आगे सूत्रकार कहते हैं कि एक ब्रह्मचर्य की आराधना अखण्ड रूप से करने पर शेष सम्पूर्ण व्रत अखण्ड रूप से पालित हो जाते हैं। इसके साथ अनेक गुण जैसे – शील, समाधान, तप, विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति, निर्लोभता, आदि स्वयं आ जाते हैं। [68]

ज्ञानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र कहते हैं कि ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण चारित्र का प्राणभूत तत्त्व है। इसके न होने पर बाकी गुण होने पर भी वे क्लेश के कारण ही बनते हैं। [69]

आचार्य भिक्षु महाव्रतों के अंतरसंबंध के संदर्भ में कहते हैं कि पांचों महाव्रतों को एक साथ ग्रहण करना पड़ता है, वैसे ही उनका पालन भी युगपत् रूप से करना पड़ता है। जो एक महाव्रत को भंग करता है वह सबको भंग करता है। उन्होंने इस तथ्य को निम्नोक्त दृष्टान्त से इस प्रकार समझाया है – ''एक भिखारी को पांच रोटी जितना आटा मिला। वह रोटी बनाने बैठा। उसने एक रोटी पका कर चूल्हे के पीछे रख दी। दूसरी रोटी तवे पर सिक रही थी। तीसरी अंगारों पर थी। चौथी रोटी का आटा उसके हाथ में और पांचवीं रोटी का आटा कठौती में था। एक कुत्ता आया और कठौती से आटे को उठा ले गया। भिखारी उसके पीछे दौड़ा। वह ठोकर खाकर गिर पड़ा। उसके हाथ में जो एक रोटी का आटा था, वह गिरकर धूल–धूसरित हो गया। वापस आया, इतने में चूल्हे के पीछे रखी रोटी बिल्ली ले गई। तवे की रोटी तवे पर ही जल गई। अंगारों पर रखी रोटी जलकर खत्म हो गई। एक रोटी का आटा जाने से बाकी चार रोटियां भी चली गई। कदाचित् एक रोटी के नष्ट होने पर अन्य रोटियां नष्ट न भी हों, पर यह सुनिश्चित है कि एक महाव्रत के भंग होने पर सभी महाव्रत भंग हो जाते हैं।'' [70]

## 2.6 ब्रह्मचर्य का ऐतिहासिक विकास

जैन परम्परा में अस्तित्व की दृष्टि से ब्रह्मचर्य सार्वकालिक रहा है। किन्तु इसके स्वरूप में समय–समय पर परिवर्तन अवश्य देखा गया है। प्रथम व अन्तिम तीर्थंकर के शासनकाल में इसे पृथक् महाव्रत के रूप में रखा गया तथा मध्यवर्ती बाइस तीर्थंकरों के शासन काल में इसे बहिद्धादान याम के अन्तर्गत रखा गया। [71]

प्रथम तीर्थंकर के शासनकाल में मुनि ऋजु जड़ (अत्यन्त सरल व तत्काल समझने में अक्षम) होते हैं। इन्हें समझाने के लिए विस्तार की आवश्यकता होती है। इसलिए भगवान ऋषभ ने ब्रह्मचर्य पालन पर सम्यक् जोर देने के लिए सर्व मैथुन विरमण महाव्रत को पृथक रूप से

निरूपित किया। मध्यवर्ती बाइस तीर्थंकरों के मुनि ऋजुप्राज्ञ (सरल और मेधावी) होते हैं। इनके लिए विस्तार अपेक्षित नहीं होता। इसलिए उन्होंने चार याम का उपदेश दिया। उनमें ब्रह्मचर्य नाम से कोई याम नहीं होता है। उनका चौथा याम बहिद्धादान है। उसमें स्त्री और परिग्रह दोनों का समावेश होता है। इस प्रकार वे चार यामों में पाँचों ही महाव्रतों का पालन करते थे।

अन्तिम तीर्थंकर के मुनि वक्रजड़ (अत्यन्त वक्र व हर बात में गली (अपवाद) निकालने में निपुण) होते हैं। संघ के परिष्कार, परिवर्द्धन और संवर्धन के लिए महावीर ने अनेक नई स्थापनाएं की। उस समय अब्रह्मचर्य की वृत्ति को प्रश्रय देने के लिए जिन कुतर्कों का प्रयोग किया जाता था उनका उन्मूलन करने के लिए भगवान महावीर ने, बहिद्धादान–विरमण महाव्रत का विस्तार कर ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह – इन दो स्वतंत्र महाव्रतों की स्थापना की। [72]

## 2.7 ब्रह्मचर्य की तात्विक मीमांसा

किसी भी विषय की सूक्ष्म गहराई में जाकर इसे समझने में उसकी तात्त्विक मीमांसा बहुत सहायक होती है। आगमेत्तर साहित्य में इस विद्या का प्रचुर प्रयोग किया गया है। मुनिश्री सुमेरमलजी 'लाडनूं' ने 'अवबोध' में ब्रह्मचर्य की संक्षिप्त तात्त्विक मीमांसा इस प्रकार की है। [73]

1. ब्रह्मचर्य अणुव्रत रूप का पालन

भाव कितने ? भाव दो – क्षायोपशमिक, पारिणामिक।

आत्मा कितनी ? आत्मा दो – योग व देशचारित्र।

2. संयम युक्त महाव्रत रूप ब्रह्मचर्य का पालन

भाव कितने ? भाव चार (उदय को छोड़कर)

आत्मा कितनी ? आत्मा एक – चारित्र।

3. ब्रह्मचर्य का पालन सावद्य या निरवद्य ?

निरवद्य, भगवान की आज्ञा में है। भले ही उसका पालन मिथ्यात्वी ही क्यों न करता हो।

## 2.8 गाँधीजी की दृष्टि में ब्रह्मचर्य

महात्मा गाँधी ब्रह्मचर्य के उत्कृष्ट साधक रहे हैं। उनके साहित्य में उनका ब्रह्मचर्य दर्शन अलग ही महत्त्व रखता है। महात्मा गाँधी कहते हैं – ब्रह्मचर्य का अर्थ है समस्त इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण और मन, वचन और कृत्य द्वारा लोलुपता से मुक्ति। [74]

ब्रह्मचर्य के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं – ब्रह्मचर्य यानि ब्रह्म की, सत्य की शोध में चर्या अर्थात् तत्संबंधी आचार। केवल जननेन्द्रिय संबंधी अधूरे अर्थ को तो हमें भूल ही जाना चाहिए। [75]

गाँधीवाद की दृष्टि में स्वपत्नी संतोष भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि विवाह और गृहस्थाश्रम

काम वासना को सीमित करने का प्रयास है, वह संयम के लिए है और इसलिए उन्होंने इसको ब्रह्मचर्य ही माना है। किन्तु जैन परम्परा में एक गृहस्थ जितना वासना से विरत होता है उतना ही ब्रह्मचर्य है। जितना काम सेवन है वह अब्रह्मचर्य ही है। जैन दर्शन के समान ही गांधीजी भी पुरुष के समान स्त्री को भी ब्रह्मचर्य पालन का अधिकारी मानते हैं। [76]

## 2.9 आचार्य तुलसी के अनुसार ब्रह्मचर्य

बीसवीं सदी में जैन परम्परा में एक महान क्रांतिकारी संत का अवतरण हुआ – आचार्य तुलसी।

आपने जैन धर्म को व्यापकता देकर जन धर्म बनाने का प्रयास किया। युगीन समस्याओं के समाधान के लिए भी आपने अपनी मौलिक दृष्टि प्रदान की।

ब्रह्मचर्य के संदर्भ में भी आपका चिन्तन व्यापक और आत्म–स्पर्शी है। इसके अर्थ पर प्रकाश डालते हुए आप कहते हैं – ब्रह्म का अर्थ है आत्मा और चर्य का अर्थ है गति। ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ – आत्मा की ओर गति। [77]

''ब्रह्मचारी वह है जिसकी दृष्टि अन्तर्मुखी है।'' [78]

आपकी दृष्टि में ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट साधना है क्योंकि इसके पालन से सर्व व्रतों की साधना स्वयमेव हो जाती है। ब्रह्मचर्य को असंभव मानने वालों के लिए वे कहते हैं– ''कूप मेंढक कैसे यह विश्वास करे कि समुद्र कुंए से बड़ा होता है? साधारण मनुष्य कैसे समझे कि यौवन की उद्दाम तरंगों में भी एक शय्या पर रहकर विजय और विजया की तरह ब्रह्मचर्य पाला जा सकता है।'' [79]

## 2.10 पर्याय विवेचन

जैन आगमों में अनेक स्थलों पर ब्रह्मचर्य के अर्थ में अन्य शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। जैसे – कामगुण विरति, काम भोग विरमण, मैथुन विरमण, गुरुकुलवास, काम–विजय, उपस्थ संयम, आत्म रमण, शील आदि।

इनमें से कुछ पर्यायों का विवेचन ब्रह्मचर्य के प्रतिपक्षी अब्रह्मचर्य के पर्याय विवेचन के साथ किया गया है। शेष का विवेचन यहां प्रस्तुत है।

शील – शील शब्द बहुत विराटता को लिए हुए है। शील पाहुड़ के अनुसार पंचेन्द्रिय के विषय से विरक्त होना शील कहलाता है। [80] धवला, अनगार धर्मामृत, प्रशमरति प्रकरणम् में व्रतों की रक्षा को शील कहा गया है। [81] दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही जैन परम्पराओं में शील के 18 हजार अंगों की चर्चा विभिन्न अपेक्षाओं से की गई है।

1. स्वद्रव्य परद्रव्य के विभाग की अपेक्षा से –

दसवैकालिक सूत्र की चूर्णि एवं टीका तथा उत्तराध्ययन की वृहद् वृत्ति में इस भेद को समझाने के लिए एक गाथा उपलब्ध होती है। वह इस प्रकार है –

**जे णो करंति मणसा, णिज्जि आहारसन्ना सोइंदिये।**
**पुढविकायारंभ, खंतिजुत्ते ते मुणी वंदे।।** [82]

यह एक गाथा है। दूसरी गाथा में 'खंति' के स्थान पर 'मुत्ति' शब्द आएगा, शेष ज्यों का त्यों रहेगा। तीसरे में 'अज्जव' आएगा। इस प्रकार 10 गाथाओं में दस धर्मों के नाम क्रमश: आएंगे। फिर ग्यारहवीं गाथा में 'पुढवी' के स्थान पर 'आउ' शब्द आएगा। 'पुढवी' के साथ दस धर्मों का परिवर्तन हुआ था उसी प्रकार 'आउ' शब्द के साथ भी होगा। फिर 'आउ' के स्थान पर क्रमशः 'तेउ', 'वाउ', 'वणस्सइ', 'बेइंदिय', 'तेइंदिय', 'चतुरिंदिय',' पंचेन्द्रिय' और 'अजीव' – ये दस शब्द आएंगे। प्रत्येक के साथ दस धर्मों का परिवर्तन होने से एक सौ (10×10) गाथाएं हो जाएगी। 101वीं गाथा में 'सोइंदिय' के स्थान पर 'चक्खुरिंदिय' शब्द आएगा। इस प्रकार पांच इन्द्रियों की पांच सौ (100×5) गाथाएं होगी। फिर 501 में 'आहार सन्ना' के स्थान पर 'भयसन्ना' फिर 'मेहुणसन्ना' और 'परिग्रह सन्ना' शब्द आएंगे। एक संज्ञा के 500 होने से 4 संज्ञा के 500×4 = 2000 होंगे। फिर 'मणसा' शब्द का परिवर्तन होगा। 'मणसा' के स्थान पर 'वयसा', 'कायसा' आएगा। एक–एक का 2000 होने से तीन योगों के 2000×3 = 6000 होंगे। फिर 'करंति' शब्द में परिवर्तन होगा। 'करंति' के स्थान पर 'कारयंति' और 'समणुजाणंति' शब्द आएंगे। एक–एक के 6000 होने से तीनों करण के 18,000 (6000×3) हो जाते हैं। ये अठारह हजार शील के अंग हैं। इन्हें रथ में इस प्रकार उपमित किया जाता है।

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| जे णो करंति 6000 | जे णो कारयंति 6000 | जे णो समणजाणंति 6000 | | | | | | | |
| मणसा 2000 | वयसा 2000 | कायसा 2000 | | | | | | | |
| णिज्जिय आहारसन्ना 500 | णिज्जिय भयसन्ना 500 | णिज्जिय मेहुणसन्ना 500 | णिज्जिय परिग्गहसन्ना 500 | | | | | | |
| श्रोत्रेन्द्रिय 100 | चक्षुरिन्द्रिय 100 | घ्राणेन्द्रिय 100 | रसनेन्द्रिय 100 | स्पर्शनेन्द्रिय 100 | | | | | |
| पृथ्वी 10 | अप् 10 | तेजस् 10 | वायु 10 | वनस्पति 10 | द्वीन्द्रिय 10 | त्रीन्द्रिय 10 | चतुरिन्द्रिय 10 | पंचेन्द्रिय 10 | अजीव 10 |
| क्षान्ति 1 | मुत्ति 2 | आर्जव 3 | मार्दव 4 | लाघव 5 | सत्य 6 | संयम 7 | तप 8 | ब्रह्मचर्य 9 | अकिंचनता 10 |

**(2) स्त्री संसर्ग की अपेक्षा –**

दिगम्बर परम्परा में स्त्री संसर्ग की अपेक्षा से शील के अठारह हजार अंगों का वर्णन इस प्रकार भी मिलता हैं ।[83]

काष्ठ, पाषाण, चित्राम (तीन प्रकार की अचेतन स्त्री) × मन और काया = 3×2=6 (यहां वचन को नहीं लिया गया है।) कृत–कारित–अनुमोदना 6×3=18, पांच इन्द्रियां 18×5=90, द्रव्य और भाव 90×2=180, क्रोध–मान–माया–लोभ 180×4=720, ये तो अचेतन स्त्री के आश्रित हैं।

देवी, मनुष्यणी, तिर्यञ्चनी (3 प्रकार की चेतन स्त्री) × मन–वचन–काया 3×3=9. कृत–कारित–अनुमोदना 9×3=27. पांच इन्द्रियां 27×5=135. द्रव्य भाव 135×2=270. चार संज्ञा 270×4=1080. सोलह कषाय 1080×16=17,280.

अचेतन स्त्री और चेतन स्त्री के कुल योग 720 + 17280= 18,000.

मुनिश्री सुमेरमलजी 'लाडनूं' ने 18,000 शीलों की व्याख्या दिगम्बर ग्रंथों का संदर्भ देते हुए इस प्रकार की है।[84]

स्त्री के चार प्रकार हैं – 1. मनुष्यणी 2. देवांगना 3. पशु स्त्री 4. स्त्री चित्र। इन चारों के साथ तीन करण व तीन योग से अब्रह्म का सेवन नहीं करना । इस प्रकार 4×3×3 = 36 भेद हो गए। इन 36 प्रकारों का पांच इन्द्रियों से सेवन नहीं करना। इस प्रकार 36×5 =180 भेद हो गए।

विषय भोग उत्पन्न होने वाले दस संस्कारों से दूर रहना। इस प्रकार 180×10 =1800 भेद हो गए। दस संस्कार ये हैं –

1. शरीर संस्कार
2. शृंगार संस्कार
3. अनंग क्रीड़ा
4. संसर्ग वांछा
5. विषय संकल्प
6. शरीर निरीक्षण
7. शरीर विभूषा
8. विषय पार्थदान
9. भोग स्मरण
10. मनश्चिंता

दस संभोग प्रक्रिया और परिणाम से बचना। इस प्रकार 1800×10 = 18,000 भेद हो गए। दस संभोग प्रक्रिया और परिणाम ये हैं –

1. काम चिंता
2. अंगावलोकन
3. दीर्घ नि:श्वास
4. शरीरार्ति
5. शरीर दाह
6. मंदाग्नि
7. मूर्च्छा
8. मदोन्मत्तता

9. प्राण संदेह 10. शुक्र विमोचन

## 2.11 ब्रह्मचर्य : एक निरपवाद साधना

जैन परम्परा में अन्य व्रतों में तो अपवाद भी स्वीकार किए गए हैं, किन्तु ब्रह्मचर्य व्रत को निरपवाद माना गया है। इसे स्पष्ट करते हुए व्याख्याकार कहते हैं–

**न वि किंचि अणुण्णायं, पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहि।**
**मोत्तुं मेहुणभावं, न तं विना रागदोसेहिं।।**

अर्थात् जिनवरेन्द्र तीर्थंकरों ने मैथुन के सिवाय न तो किसी बात को एकान्त रूप से अनुमत किया है और न एकान्ततः किसी चीज का निषेध किया है। सभी विधि–निषेधों के साथ आवश्यक अपवाद जुड़े हैं। कारण यह है कि मैथुन तीव्र राग–द्वेष अथवा राग रूप दोष के बिना नहीं होता। [85]

ब्रह्मचर्य महाव्रत के संदर्भ में जिन अपवादों का उल्लेख मूल आगमों में पाया जाता है उनका संबंध मात्र ब्रह्मचर्य की रक्षा के नियमों से हैं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं – सामान्य रूप से श्रमण के लिए स्त्री–स्पर्श वर्जित है, लेकिन अपवाद रूप में वह नदी में डूबती हुई अथवा क्षिप्त चित्त भिक्षुणी को पकड़ सकता है। [86] इसी प्रकार रात्रि में सर्पदंश की स्थिति हो और अन्य कोई उपचार का मार्ग न हो तो श्रमण स्त्री से और साध्वी पुरुष से स्पर्श संबंधी चिकित्सा करा सकते हैं। [87]

साथ ही साधु या साध्वी के पैर में कांटा लग जाए और अन्य किसी भी तरह निकालने की स्थिति न हो, तो वे परस्पर एक दूसरे से निकलवा सकते हैं। [88]

## 3.0 ब्रह्मचर्य : भेद–प्रभेद

## 3.1 दो भेद – (1) निश्चय और (2) व्यवहार।

(1) **निश्चय** – भगवती आराधना एवं अनगार धर्मामृत में ब्रह्म का अर्थ जीव अथवा निर्मल ज्ञान स्वरूप आत्मा है। उस आत्मा में लीन होने का नाम ब्रह्मचर्य है। [89] पद्मनंदी पंच विंशतिका में शरीर से मोह के हटने को वास्तविक ब्रह्मचर्य माना गया है। [90]

(2) **व्यवहार** – सर्वार्थ सिद्धि के अनुसार अनुभूत स्त्री का स्मरण, स्त्री कथा आदि मैथुनांगों का त्याग करने से परिपूर्ण ब्रह्मचर्य होता है। या स्वतंत्र वृत्ति का त्याग करने के लिए गुरुकुल में निवास करना ब्रह्मचर्य है। [91]

भगवती आराधना के अनुसार नव प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन करना व्यवहारिक ब्रह्मचर्य है। [92] पद्मनंदी पंच विंशतिका के अनुसार वृद्धा आदि स्त्रियों को क्रम से माता, बहन और पुत्री के समान समझना ब्रह्मचर्य है। [93]

### 3.2 दो भेद – (1) महाव्रत (2) अणुव्रत

साधना के क्षेत्र में सभी साधकों की शक्ति में तरतमता होती है। इसलिए साधना का क्रम भी उनकी क्षमता के अनुसार निर्धारित किया जाता है । जैन परम्परा में मोटे तौर पर साधकों के लिए दो विभाग किए गए हैं – (1) महाव्रत (2) अणुव्रत

(1) **ब्रह्मचर्य महाव्रत का स्वरूप** – यह मुनियों के लिए विहित है। इसमें जीवन भर के लिए कृत, कारित, अनुमोदित व मन – वचन – काया से मैथुन सेवन का प्रत्याख्यान किया जाता है।

दसवैकालिक सूत्र में इसका स्वरूप इस प्रकार है– '' भंते! इसके पश्चात् चौथे महाव्रत में मैथुन की विरति होती है।

भंते! मैं सब प्रकार के मैथुन का प्रत्याख्यान करता हूँ। देव संबंधी, मनुष्य संबंधी अथवा तिर्यञ्च संबंधी मैथुन का मैं स्वयं सेवन नहीं करूँगा, दूसरों से मैथुन सेवन नहीं कराऊँगा और मैथुन सेवन करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूँगा, जीवनभर के लिए, तीन करण तीन योग से – मन से वचन से काया से – न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

भंते! मैं अतीत के मैथुन सेवन से निवृत्त होता हूँ, उसकी निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

भंते! मैं चौथे महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ। इसमें सर्व मैथुन की विरति होती है।[94]

सर्वार्थसिद्धि में हिंसादि पांचों व्रतों के दो भेद किए गए हैं – **''देशसर्वतोऽणुमहती''** – एक देश निवृत्त होना अणुव्रत है और सर्व प्रकार से निवृत्त होना महाव्रत है।[95]

पातञ्जल योग सूत्र में महाव्रत की परिभाषा इस प्रकार है– **एते जाति देशकालसमयानवच्छिन्ना: सार्व भौमा महाव्रतम्।**[96]

**(2) ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावनाएं –** साधक में महाव्रतों की चेतना जागृत करने के लिए अर्थात महाव्रतों को स्थिर एवं सुरक्षित करने के लिए भावनाओं का प्रयोग किया जाता है। भावना के महत्व को प्रकाशित करते हुए भगवती आराधना में कहा गया है–

**ण करेदि भावणाभाविदो खु पीडं वदाण सव्वेसिं।**
**साधू पासुत्तो समुद्धो व किमिदाणि वेदंतो।। 1206।।**

भावनाओं से भावित साधु गहरी नींद में सोता हुआ भी अथवा मूर्च्छित अवस्था में भी व्रतों में दोष नहीं लगाता। तब जागते हुए की तो बात ही क्या है।

प्रत्येक महाव्रत की पांच–पांच भावनाएं हैं। जैन आगमों में भावनाओं के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य की भावना का विविध स्थलों पर कुछ समानता और कुछ वैविध्य के साथ उल्लेख

मिलता है। उसका तुलनात्मक विवेचन इस प्रकार है –

**(1) समवायांग सूत्र –**

(1) स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शयन और आसन का वर्जन।
(2) स्त्री कथा का वर्जन।
(3) स्त्रियों के इन्द्रियों के अवलोकन का वर्जन।
(4) पूर्व भुक्त तथा पूर्व क्रीड़ित काम भोगों की स्मृति का वर्जन।
(5) प्रणीत आहार का वर्जन। [97]

**(2) प्रश्नव्याकरण सूत्र –**

(1) असंसक्तवास वसति।
(2) स्त्री जन में कथा वर्जन।
(3) स्त्री जन के अंग–प्रत्यंग और चेष्टाओं के अवलोकन का वर्जन।
(4) पूर्व भुक्त भोगों की स्मृति का वर्जन।
(5) प्रणीत रस भोजन का वर्जन। [98]

**(3) आचार चूला –**

(1) स्त्रियों में कथा का वर्जन।
(2) स्त्रियों के अंग–प्रत्यंगों के अवलोकन का वर्जन।
(3) पूर्व भुक्त भोग की स्मृति का वर्जन।
(4) अतिमात्र और प्रणीत पान–भोजन का वर्जन।
(5) स्त्री आदि से संसक्त शय्यासन का वर्जन। [99]

**(4) आवश्यक निर्युक्ति –**

(1) आहार गुप्ति।
(2) अविभूषितात्मा।
(3) स्त्रियों के अवलोकन का वर्जन।
(4) स्त्रियों के संसक्त वसति का वर्जन।
(5) स्त्रियों की कथा का वर्जन। [100]

**(5) भगवती आराधना –**

(1) स्त्रियों के अंग नहीं देखना।
(2) पूर्वानुभूत भोगादिक का स्मरण नहीं करना।
(3) स्त्रियाँ जहाँ रहती है वहाँ नहीं रहना।
(4) शृंगार कथा नहीं करना।

(5) बल व उन्मत्तता उत्पादक पदार्थों का सेवन नहीं करना। [101]

**(6) तत्त्वार्थ सूत्र –**

(1) स्त्रियों में राग पैदा करने वाली कथा सुनने का त्याग।

(2) स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग।

(3) पूर्व भोगों के स्मरण का त्याग।

(4) गरिष्ठ और इष्ट रस का त्याग तथा

(5) अपने शरीर के संस्कार का त्याग। [102]

**(7) योगशास्त्र –**

(1) स्त्री, नपुंसक और पशु वाले स्थान का, वे जिस आसन में बैठे हों उस आसन का और बीच में दीवार के व्यवधान वाले स्थान का त्याग करना।

(2) राग भाव से स्त्री कथा का त्याग करना।

(3) गृहस्थावस्था में भोगे हुए काम भोगों को स्मरण न करना।

(4) स्त्री के रमणीय अंगोपागों का निरीक्षण न करना और शरीर का संस्कार न करना।

(5) कामोत्तेजक एवं परिमाण से अधिक भोजन का त्याग करना। (योग शास्त्र 1/30,31)

### 3 2.2 ब्रह्मचर्य अणुव्रत का स्वरूप

अणुव्रत – जो साधक महाव्रत स्वीकार कर मुनि नहीं बन सकते उनके लिए गृहस्थ जीवन में ही संयम पूर्वक रहने का विधान अणुव्रत के रूप में है। उपासक दशांग सूत्र में ब्रह्मचर्य अणुव्रत के लिए ''स्वदार संतोष व्रत'' शब्द का प्रयोग है। इसके अन्तर्गत स्वयं की विवाहित पत्नी/पति के अतिरिक्त अन्यत्र मैथुन सेवन का प्रत्याख्यान किया जाता है।[103]

आवश्यक सूत्र में इसी को ''स्थूल मैथुन विरमण व्रत'' के नाम से बताया गया है। [104]

ब्रह्मचर्य अणुव्रत अन्य अणुव्रतों की अपेक्षा अनेक प्रकार की विशिष्टता लिए हुए है। अन्य व्रतों की प्रतिज्ञा में करण और योग का उल्लेख किया गया है किन्तु इस व्रत की प्रतिज्ञा में उनका उल्लेख नहीं है। [105] टीकाकार ने इसका कारण यह माना है कि गृहस्थ जीवन में सन्तान आदि का विवाह कराना आवश्यक होता है। अत: इसके दो करण और तीन योग न कह कर श्रावक को अपनी परिस्थिति एवं सामर्थ्य पर छोड़ दिया जाता है। फिर भी इतना तो निश्चित ही है कि गृहस्थ साधक एक करण और एक योग से अर्थात् अपनी काया से स्व पत्नी के अतिरिक्त शेष मैथुन का त्याग करता है।[106]

उपासकदसाओ के बाद अनेक श्रावकाचारों में ब्रह्माणुव्रत पर विस्तार से विचार किया गया है।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में लिखा गया है कि जो **पाप समझकर** न तो पर–स्त्री के पास स्वयं जाता है और न दूसरों को भेजता है उसे परदार निवृत्ति या स्वदारसंतोष व्रत कहते हैं। [107]

सर्वार्थसिद्धि में लिखा है कि गृहीत या अगृहीत पर स्त्री के साथ रति न करना गृहस्थ का चौथा अणुव्रत है। [108]

पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय में लिखा है कि जो मोह वश अपनी स्त्री को छोड़ने में असमर्थ है, उन्हें भी शेष सब स्त्रियों का सेवन नहीं करना चाहिए। [109]

सोमदेव विरचित उपासकाध्ययन में लिखा है, पत्नी और वेश्या को छोड़ कर अन्य सब स्त्रियों को माता, बहन और पुत्री समझना गृहस्थ का ब्रह्मचर्य है। [110] प्रशम रति प्रकरण में भी यही बात कही गई है। [111]

कार्तिकेयानुप्रेक्षा के अनुसार जो मन, वचन और काय से परस्त्री को माता, बहन और पुत्री के समान मानता है वह स्थूल ब्रह्मचर्याणुव्रती है। [112] अमित गति ने भी यही स्वरूप बतलाया है।

वसुनन्दि श्रावकाचार में लिखा है, पर्व के दिन स्त्री भोग और अनंगक्रीड़ा को जो सदा के लिए छोड़ देता है वह स्थूल ब्रह्मचारी है।

सागारधर्मामृत के अनुसार जो पाप के भय से मन, वचन और काय से पर स्त्री और वेश्या के पास न स्वयं जाता है और न दूसरों को भेजता है वह स्वदार संतोषी है। [113]

ब्रह्मचर्य अणुव्रत के लिए 'स्वदार संतोष व्रत' और 'परदारनिवृत्ति' दो नामों का प्रयोग किया गया है। इसकी मीमांसा में विद्वानों का कुछ मतभेद भी रहा है। स्वदार संतोष पर तो सब एक मत हैं किन्तु कुछ विद्वान जैसे सोमदेव और उमास्वाति वेश्या, कुमारिका, विधवा को परदार नहीं मानते। क्योंकि वे दूसरों द्वारा गृहीत नहीं हैं। जबकि शेष विद्वान दोनों ही नामों को समानार्थक ही मानते हैं।

इसके समाधान में लाटी संहिता में स्व–स्त्री और पर–स्त्री के स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया गया है। उसके रचयिता के अनुसार धर्म–पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री का सेवन चतुर्थ अणुव्रत के अन्तर्गत वर्जनीय है। पत्नी की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है –

**पत्नी** – देव, शास्त्र और गुरु को नमस्कार करके कुटुम्बियों की साक्षीपूर्वक जिसका पाणिग्रहण किया जाता है वह पत्नी कहलाती है। पत्नी के दो प्रकार होते हैं–

(1) धर्म पत्नी – स्वजाति की पाणिगृहीता पत्नी धर्म पत्नी कहलाती है।

(2) भोग पत्नी – अन्य जाति की पाणिगृहीता पत्नी भोग पत्नी कहलाती है।

इन दोनों के अतिरिक्त जो सामान्य स्त्रियां होती हैं जिनका पाणिग्रहण नहीं किया जाता उन्हें 'चेटिका' कहा जाता है। चेटिका और भोग पत्नी दोनों केवल भोग के लिए होती हैं अत: इन

दोनों में वास्तव में कोई भेद नहीं है। धर्म के ज्ञाताओं ने भोग पत्नी का भी वर्जन किया है। जब भोग पत्नी ही निषिद्ध है तो परस्त्री तो निश्चित ही निषिद्ध है।

**पर–स्त्री** – पर–स्त्री तीन प्रकार की होती हैं –

**(1) गृहीता** – जिसे किसी ने ग्रहण किया हो वह 'गृहीता' पर–स्त्री है। ये दो तरह की होती हैं – एक वह जिसका पति जीवित है और दूसरी वह जिसका पति तो मर चुका है किन्तु पिता आदि जीवित है। जो चेटिका होती है उसका पति वही है जिसके पास वह रहती है अत: वह भी गृहीता है।

**(2) अगृहीता** – वह विधवा स्त्री जिसके कुटुम्बी भी मर चुके हैं, जो स्वछन्दचारिणी होती है वह अगृहीता कहलाती है।

कुछ मान्यताओं के अनुसार जिसका स्वामी कोई नहीं होता उसका स्वामी राजा होता है। इस प्रकार वह गृहीता ही है। [114]

**(3) वेश्या** – लाटी संहिता में वेश्या को अगृहीता स्त्री के अन्तर्गत माना गया है।[115] पं. आशाधरजी ने सागार धर्मामृत की टीका में खुला व्यभिचार करने वाली स्त्रियों को वेश्या कहा है। [116]

हरिभद्र सूरि ने पर स्त्री के दो भेद निर्दिष्ट किए हैं – औदारिक और वैक्रियिक। औदारिक से उन्होंने मनुष्यनी और तिर्यंचनी तथा वैक्रियिक से विद्याधरी आदि को ग्रहण किया है। [117]

### 3.2 (2)(i) ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार

उपासकदसाओ सूत्र में ब्रह्मचर्य अणुव्रत के पांच अतिचारों का उल्लेख हैं–[118]

1. इत्वरिका परिगृहीतागमन
2. अपरिगृहीतागमन
3. अनंग क्रीड़ा
4. पर – विवाहकरण
5. कामभोग तीव्राभिलाषा

तत्त्वार्थ सूत्र, सर्वार्थसिद्धि, योग शास्त्र, चारित्रसार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अमितगति श्रावकाचार और लाटी संहिता में भी इन्हीं अतिचारों का उल्लेख हैं। कहीं – कहीं पर क्रम आगे–पीछे है।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में 'इत्वरिका गमन' नामक एक अतिचार है, दूसरे की पूर्ति विटत्व नाम के अतिचार से की गई है। शेष तीन अतिचार उपरोक्त अतिचारों के समान हैं। पं. आशाधरजी ने रत्नकरण्ड के अनुसार ही पांच अतिचार गिनाए हैं। पं. सोमदेव ने इत्वरिका गमन

के स्थान पर 'परस्त्री गमन' नामक अतिचार कहा है और विटत्व के स्थान पर 'रतिकैतव्य' का उपयोग किया है। [119]

इन अतिचारों का विस्तृत विवेचन इस प्रकार मिलता हैं –

**(क) इत्वरिक परिगृहीतागमन** – इत्वरिक का अर्थ है अस्थायी या अल्पकालिक। जो स्त्री कुछ समय के लिए किसी पुरुष के साथ पत्नी के रूप में रहती है तथा किसी अन्य पुरुष के साथ उसका यौन संबंध नहीं रहता, वह इत्वरिका कहलाती है। ऐसी स्त्री के साथ सहवास करना 'इत्वरिक परिगृहीतागमन' दोष है। इत्वरिका का एक अर्थ अल्पवयस्का भी किया गया है। इसके अनुसार छोटी आयु की स्व–पत्नी के साथ सहवास करना इत्वरिक परिगृहीतागमन दोष है।

**(ख) अपरिगृहीतागमन –** अपरिगृहीता का अर्थ है वह स्त्री जो किसी के भी द्वारा पत्नी के रूप में परिगृहीत या स्वीकृत नहीं है, अथवा जिस पर किसी का अधिकार नहीं है। कुछ आचार्य अपरिगृहीत का अर्थ करते हैं कि किसी के द्वारा ग्रहण नहीं की गई अर्थात् कुमारी। दूसरे कुछ आचार्य व्यक्ति की अपेक्षा से पर स्त्री को भी उसके द्वारा परिगृहीत नहीं होने के कारण अपरिगृहीत मानकर इससे पर–स्त्रीगमन का अर्थ लेते हैं। अत: वेश्या, कुमारी अथवा पर–स्त्री से काम संबंध रखना ब्रह्मचर्य अणुव्रत का दूसरा अतिचार है।

**(ग) अनंग क्रीड़ा –** इसका अर्थ है कामावेशवश अस्वाभाविक काम–क्रीड़ा करना। इसके अन्तर्गत समलैंगिक सम्भोग, अप्राकृतिक मैथुन अर्थात् हस्त, मुख, गुदादि अंगों से, पशु–पक्षियों से, कृत्रिम कामोपकरणों से, विषय–वासना शान्त करना आदि समाविष्ट हैं। आयुर्वेद के ग्रंथों में स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इन्हें अकर्तव्य माना गया है। यह इस व्रत का तीसरा अतिचार है।

**(घ) पर–विवाहकरण –** जैन परम्परा में उपासक का लक्ष्य ब्रह्मचर्य साधना है। विवाह तत्त्वत: आध्यात्मिक दृष्टि से मानव की दुर्बलता है। क्योंकि हर कोई संपूर्ण रूप से ब्रह्मचारी रह नहीं सकता। एक अणुव्रती का लक्ष्य ब्रह्मचर्य की दिशा में उत्तरोत्तर विकास करना होता है। इस दृष्टि से इस अतिचार की परिकल्पना की गई। इसके अनुसार स्व–संतान एवं परिजनों के अतिरिक्त दूसरों के वैवाहिक संबंध करवाना इस अतिचार में आता है। यह ब्रह्मचर्य अणुव्रत का चौथा अतिचार है। कुछ आचार्यों ने दूसरा विवाह करना भी इस अतिचार में ही माना है।

**(ड़) काम भोग तीव्राभिलाषा** – नियंत्रित और व्यवस्थित काम सेवन मानव की आत्म दुर्बलता के कारण एक आवश्यकता है। उस आवश्यकता की पूर्ति तक व्यक्ति क्षम्य है परन्तु उसे काम की तीव्र अभिलाषा या उद्दाम वासना से ग्रस्त नहीं होना चाहिए। तीव्र वैषयिक

वासनावश कामोद्दीपक, बाजीकरण औषधि, मादक द्रव्य आदि के सेवन द्वारा व्यक्ति वैसा न करे। चारित्रिक दृष्टि से यह बहुत आवश्यक है। वैसा करना इस व्रत का पांचवां अतिचार है, जिससे उपासक को सर्वथा बचते रहना चाहिए।

ब्रह्मचर्य अणुव्रत की अक्षुण्ण अनुपालना के लिए उपरोक्त अतिचारों से बचना आवश्यक है। खान–पान, रहन–सहन का भी ब्रह्मचर्य की साधना में महत्त्व होता है। यशस्तिलक चम्पुगत – उपासकाध्ययन में ब्रह्मचर्य अणुव्रत को सुरक्षित रखने के लिए दस बातों से बचने का सुझाव दिया गया हैं – 1. शराब 2. जुआ 3. मांस 4. मधु 5. नाच, गाना और वादन 6. लिंग पर लेप आदि लगाना 7. शरीर को सजाना 8. मस्ती 9. लुच्चापन 10. व्यर्थ भ्रमण। [120]

### 3.2 (2)(ii) उपासक की प्रतिमाएं और ब्रह्मचर्य

'प्रतिमा' जैन परम्परा का पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है अभिग्रह अर्थात् विशेष प्रकार का संकल्प। महाव्रती भिक्षु एवं अणुव्रती श्रावक दोनों ही साधना पद्धति में 'प्रतिमा' का व्यवस्थित रूप मिलता है। भिक्षु की बारह प्रतिमाओं का उल्लेख मिलता है किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से वर्तमान में यह साधना विच्छिन्न हो चुकी है। श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं हैं जिनकी साधना वर्तमान में भी की जा सकती हैं। समवायांग सूत्र और दशाश्रुतस्कन्ध में इनका विवरण इस प्रकार मिलता है – [121]

**(1) दर्शन श्रावक** – इसका कालमान एक मास का है। इसमें सर्वधर्म विषयक रुचि होती है। सम्यक् दर्शन उपलब्ध होता है। **(2) कृतव्रत कर्म** – काल – 2 मास। पूर्वोक्त उपलब्धि के अतिरिक्त शील व्रत, गुणव्रत, पौषधोपवास व्रत होते हैं, किन्तु सामायिक व देशावकासिक व्रत नहीं होते। **(3) कृत सामायिक** – यह तीसरी प्रतिमा है इसका काल है तीन मास। प्रात: सायं सामायिक और देशावकासिक व्रत इसमें होता है। **(4) पौषधोपवास प्रतिमा** – यह चार मास की होती हैं। इसमें श्रावक चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा आदि पर्व दिनों में प्रतिपूर्ण पौषध करता है। **(5) दिन में ब्रह्मचारी** – यह पांच मास की होती हैं। इसमें साधक 'एक रात्रि की उपासक प्रतिमा' का सम्यक् अनुपालन करता है। स्नान नहीं करता, दिवाभोजी होता है, धोती के दोनों अंचलों को कटिभाग में टांक लेता है– नीचे से नहीं बांधता, दिन में ब्रह्मचारी और रात्रि में अब्रह्मचर्य का परिमाण करता है। **(6) दिन और रात में ब्रह्मचारी** – इसका काल छह महीने का हैं। पूर्वोक्त नियमों के अतिरिक्त इसमें साधक दिन और रात में ब्रह्मचारी रहता है। **(7) सचित्त–परित्यागी** – इस सातवीं प्रतिमा का काल मान सात महीने हैं। इसमें पूर्वोक्त नियमों का पालन करते हुए सम्पूर्ण सचित्त का त्याग किया जाता है। **(8) आरम्भ परित्यागी** – इसका कालमान आठ महीने है। इसमें आरम्भ हिंसा का परित्याग हो जाता है। **(9) प्रेष्यारम्भ परित्यागी** – इसमें नौकर आदि से भी आरम्भ का त्याग किया जाता है। **(10)**

**उद्दिष्ट भक्त परित्यागी –** इसमें उद्दिष्ट भोजन – साधक के निमित्त बना भोजन का त्याग होता है। सिर को क्षुर से मुंडवाया जाता है। यह प्रतिमा दस महीनों की होती हैं। **(11) श्रमण भूत प्रतिमा –** ग्यारह महीनों की इस प्रतिमा में श्रावक श्रमण की तरह रहता है। सिर को क्षुर से मुंडवाता है या लोच करता है। साधु का वेश धारण करता है। साधु के नियमों का पालन करता है। भिक्षावृत्ति अपनाता है।

इन प्रतिमाओं का कालमान उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है तथा पूर्व प्रतिमा के नियम बाद की प्रतिमा में भी यथावत् रहते हैं।

दूसरी प्रतिमा में ब्रह्मचर्य अणुव्रत की स्वीकृति हो जाती है उसके बाद पांचवीं प्रतिमा में ब्रह्मचर्य की विशेष साधना प्रारम्भ हो जाती है। अणुव्रत और प्रतिमा में यह अन्तर है कि अणुव्रत जीवन भर के लिए स्वीकार किए जाते हैं। इसमें करण और योग अपनी क्षमता या सुविधा के अनुरूप किया जाता है। जबकि प्रतिमा कुछ काल विशेष के लिए तीन करण–तीन योग से स्वीकार की जाती है। प्रतिमाएं गृहस्थ जीवन में ब्रह्मचर्य की साधना का अच्छा उपक्रम है।

### 3.3 नव प्रकार का ब्रह्मचर्य

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में स्त्री संग के त्यागी मुनि के मन, वचन और काया के कृत, कारित एवं अनुमोदन के भेद की अपेक्षा से ब्रह्मचर्य के नौ भेद किए गए हैं। [122] इसकी विस्तृत व्याख्या इस प्रकार हैं –

1. करूं नहीं – मन से
2. करूं नहीं – वचन से
3. करूं नहीं – काया से
4. कराऊं नहीं – मन से
5. कराऊं नहीं – वचन से
6. कराऊं नहीं – काया से
7. अनुमोदुं नहीं – मन से
8. अनुमोदुं नहीं – वचन से
9. अनुमोदुं नहीं – काया से

### 3.4 अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य

समवायांग सूत्र के अनुसार उपभोक्ता की दृष्टि से कामभोग (मैथुन सेवन) के दो प्रकार का हैं–

(1) औदारिक – मनुष्य और तिर्यञ्च संबंधी काम–भोग,

(2) दिव्य – देव संबंधी काम–भोग।

इन काम–भोगों का त्याग तीन करण (करना, कराना और अनुमोदन करना) तथा तीन योग (मन, वचन और काया) के भिन्न–भिन्न भंग करने पर यह अठारह प्रकार (3×3×2 = 18) का हो जाता है।

**औदारिक काम भोगों का –** (1) मन से सेवन न करना (2) मन से सेवन न कराना (3) सेवन करने वाले का मन से अनुमोदन भी न करना। (4) वचन से सेवन न करना (5) वचन से सेवन न कराना (6) सेवन करने वाले का वचन से अनुमोदन भी न करना। (7) काया से सेवन न करना (8) काया से सेवन न कराना (9) सेवन करने वाले का काया से अनुमोदन भी न करना।

**दिव्य (देव–संबंधी) काम–भोगों का** (10) मन से सेवन न करना (11) मन से सेवन न कराना (12) सेवन करने वाले का मन से अनुमोदन न करना। (13) वचन से सेवन न करना (14) वचन से सेवन न कराना (15) सेवन करने वाले का वचन से अनुमोदन न करना। (16) काया से सेवन न करना। (17) काया से सेवन न कराना (18) सेवन करने वाले का काया से अनुमोदन भी न करना। [123]

### 3.5 ब्रह्मचर्य के सत्ताइस भेद

ठाणं एवं दसवैकालिक सूत्र में तीन प्रकार के मैथुन बताए गए हैं – (1) दिव्य (2) मानुष्य (3) तैर्यञ्च – इन तीन से विरति को ब्रह्मचर्य कहा है।

यदि प्रत्येक विरति के तीन करण, तीन योग से विकल्प प्रस्तुत किए जाते हैं तो नौ विकल्प होते हैं। इस प्रकार तीन विरति के 27 विकल्प होते हैं। [124]

जयाचार्य ने इसका विस्तार किया है उसका सार इस प्रकार हैं –

देव संबंधी मैथुन सेवन का तीन करण तीन योग से त्याग करने पर 3×3=9 भांगें हुए, इसी प्रकार मनुष्य और तिर्यञ्च संबंधी के नौ–नौ भंग होने से कुल 27 भंग हो जाते हैं। [125]

उपरोक्त अठारह भेद से इसका कोई अर्थभेद नहीं है। वहां तीर्यञ्च एवं मनुष्य संबंधी काम भोग को 'औदारिक' काम भोग के अन्तर्गत लिया है और यहां उन्हें अलग–अलग रखा गया है।

### 3.6 अठारह हजार भेद

ब्रह्मचर्य के उत्कृष्टत: अठारह हजार भेद भी मिलते हैं। उसका विस्तृत वर्णन पर्याय विवेचन के अन्तर्गत शील में किया गया है।

## 4.0 ब्रह्मचर्य की उपमाएं

भारतीय वाङ्मय में जीवन विकास के विविध सूत्रों को अनेक रूपों में निरूपित किया गया है। उन विधाओं में एक विधा है– उपमा। तत्त्व को समझाने का यह एक सरल तरीका है।

इनके माध्यम से गूढ तत्त्वों को सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है। जैन आगमों में ब्रह्मचर्य का महत्त्व समझाने के लिए अनेक प्रकार की उपमाओं का प्रयोग अनेक स्थानों (जैसे दसवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग आदि ग्रथों में) पर हुआ है। उनमें प्रश्नव्याकरण सूत्र में एक ही स्थान पर (2/4/1) सैंतीस उपमाओं के साथ ब्रह्मचर्य की व्याख्या की है। उपमाएं केवल समझने की सरलता के लिए शाब्दिक प्रयोग ही नहीं हैं इनमें गहरा अर्थ भी भरा होता है। वह गहरा अर्थ उपमेय की विराटता के साथ उसकी गुणवत्ता को प्रकाशित करता है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को दिए गए उपमानों से ब्रह्मचर्य की महत्ता इस प्रकार ज्ञात होती है –

**ब्रह्मचर्य की सैंतीस उपमाएं**

1. यह व्रत कमलों से सुशोभित सरोवर और तालाब के पाल के समान है अर्थात् धर्म की रक्षा करने वाला है।

2. किसी महाशकट के पहियों के आरों के लिए नाभि के समान है। यहां पर ब्रह्मचर्य का सर्व व्रतधारण सामर्थ्य अभिव्यंजित है।

3. यह व्रत किसी विशाल वृक्ष के स्कन्ध के समान है। धर्म का आधार ब्रह्मचर्य है। आधाररूपता अभिव्यंजित है।

4. यह व्रत महानगर के प्राकार – परकोटा के कपाट की अर्गला के समान है। सुरक्षा सामर्थ्य अभिव्यक्त है।

5. डोरी से बंधे इन्द्रध्वज के सदृश्य है। उसी प्रकार अनेक गुणों से समृद्ध ब्रह्मचर्य है। यहाँ ब्रह्मचर्य की गुणीय श्रेष्ठता के साथ सर्व पूज्यता अभिलक्षित है।

6. जैसे ग्रह, नक्षत्र और तारामंडल में चन्द्रमा प्रधान होता है उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है। इस उपमान द्वारा ब्रह्मचर्य की सर्व व्रत प्रधानता तथा श्रेष्ठता कथित है।

7. मणि, मुक्ता, शिला, प्रवाल और लाल (रत्न) की उत्पत्ति के स्थानों में समुद्र प्रधान है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य सर्व व्रतों का श्रेष्ठ उद्भव स्थान है। यह सभी गुणीय प्रविधियों की प्रसवभूमि है। इस उपमान से यह अभिव्यंजित होता है।

8. इसी प्रकार ब्रह्मचर्य मणियों में वैडूर्यमणि के समान उत्तम है। यहाँ उत्तमता, कुलीनता प्रतिपादित है।

9. आभूषणों में मुकुट के समान है, श्रेष्ठता एवं सर्व पूज्यता प्रतिबिम्बित है।

10. समस्त प्रकार के वस्त्रों में श्रोमयुगल कपास के वस्त्र–युगल के सदृश हैं। इस उपमान के द्वारा ब्रह्मचर्य की सभी व्रतों में श्रेष्ठता अभिव्यंजित हैं।

11. पुष्पों में श्रेष्ठ अरविन्द–कमल पुष्प के समान है। यहां पर ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठता अनाविलता तथा सौन्दर्यमयता प्रतिपादित है।

12. चन्दनों में गोशीर्ष चंदन के समान है। सांसारिक तापों से ब्रह्मचर्य गोशीर्ष चन्दन के समान शीतलता प्रदान करता है। संदर्भित उपमान से यह तथ्य प्रकाशित हो रहा है।

13. जैसे औषधियों, चमत्कारिक वनस्पतियों का उत्पत्ति स्थान हिमवान पर्वत है, उसी प्रकार आमर्शौषधि आदि (लब्धियों) की उत्पत्ति का स्थान ब्रह्मचर्य है। संसाररोगोपशमनौषधियों की प्रसवभूमि ब्रह्मचर्य है– यह तथ्य अभिव्यक्त है।

14. जैसे नदियों में शीतोदा नदी प्रधान है, वैसे ही सब व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है। यहां ब्रह्मचर्य की पवित्रता अभिव्यक्त होती है।

15. समुद्रों में जैसे स्वयंभूरमण समुद्र महान् है, उसी प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य महत्त्वशाली है। यहाँ पर ब्रह्मचर्य की सर्व श्रेष्ठता, महानता तथा उदात्तता आदि गुणों की अभिव्यंजना हो रही है।

16. जैसे माण्डलिक अर्थात् गोलाकार पर्वतों में रूचकवर पर्वत प्रधान है, उसी प्रकार सब व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है। उन्नतता, स्थिरता आदि तथ्य प्रस्तुत उपमान के द्वारा प्रकट हो रहा है।

17. इन्द्र का ऐरावत नामक गजराज जैसे सर्व गजराजों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब व्रतों में ब्रह्मचर्य मुख्य है। यहाँ पर ब्रह्मचर्य की गुणीय उत्कृष्टता प्रतिपादित है।

18. ब्रह्मचर्य वन्य जन्तुओं में सिंह के समान प्रधान है। इस उपमान से ब्रह्मचर्य की सर्व शक्तिमानता के साथ अप्रमादादि गुण युक्त होने से सर्व श्रेष्ठता अभिव्यंजित है।

19. ब्रह्मचर्य सुपर्णकुमार देवों में वेणुदेव के समान श्रेष्ठ है। यहाँ ब्रह्मचर्य की उदात्तता अभिलक्षित है।

20. जैसे नागकुमार जाति के देवों में धरणेन्द्र प्रधान है, उसी प्रकार सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है। यहाँ पर ब्रह्मचर्य की सर्वश्रेष्ठता, सर्व प्रधानता तथा कुलीनता प्रतिपाादित है।

21. कल्पों में ब्रह्मलोक कल्प के समान ब्रह्मचर्य उत्तम है। यहां उत्तमता अभिलक्षित है।

22. जैसे उत्पाद सभा आदि इन पांचों सभाओं में सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य है, इस उपमान से ब्रह्मचर्य की महिमा अभिव्यंजित है।

23. जैसे स्थितियों में लवसत्तमा अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थिति प्रधान है, उसी प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है। यहाँ सर्वत्र ब्रह्मचर्य की प्रधानता की प्रतिपादना की गई है।

24. सब दानों में अभय दान के समान ब्रह्मचर्य सब व्रतों में श्रेष्ठ है। यहां ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठता तथा निरापदता अभिलक्षित है।

25. ब्रह्मचर्य सब प्रकार के कम्बलों में कृमिरागरक्त कम्बल के समान उत्तम है। इस उपमान से ब्रह्मचर्य की वरीयता अभिव्यंजित है।

26. संहननों में वज्र ऋषभनाराच संहनन के समान ब्रह्मचर्य समस्त व्रतों में उत्तम है। यहां उत्तमता प्रतिपादित है।

27. संस्थानों में समचतुरस्र संस्थान के समान ब्रह्मचर्य समस्त व्रतों में उत्तम है। यहाँ पर सुभगता के साथ श्रेष्ठता का निरूपण इस उपमान में किया गया है।

28. ब्रह्मचर्य ध्यानों में परम शुक्ल ध्यान के समान सर्व प्रधान है। इस उपमान से ब्रह्मचर्य की निर्विकारता अभिव्यंजित है।

29. समस्त ज्ञानों में जैसे केवल ज्ञान प्रधान है, उसी प्रकार सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रधान है। यहाँ निर्विकारता, श्रेष्ठता, निर्मलता आदि ब्रह्मचर्य के दृष्ट गुणों का प्रतिपादन प्रस्तुत उपमान से किया गया हैं।

30. लेश्याओं में परम शुक्ल लेश्या जैसे सर्वोत्तम है वैसे ही सब व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रधान है। यहां सर्वोत्तमता परिलक्षित है।

31. ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों में इसी प्रकार उत्तम है, जैसे मुनियों में तीर्थंकर उत्तम होते हैं। उत्तमता के साथ अनाविलता अभिलक्षित है।

32. ब्रह्मचर्य सभी व्रतों में वैसा ही श्रेष्ठ है जैसे सब क्षेत्रों में महाविदेह क्षेत्र उत्तम है। यहां श्रेष्ठता एवं निरापदता अभिव्यक्त की गई है।

33. पर्वतों में गिरिराज सुमेरु की भांति ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम व्रत है। यहाँ ब्रह्मचर्य की सर्वोत्तमता का प्रतिपादन इस उपमान से किया गया है।

34. जैसे समस्त वनों में नन्दन वन प्रधान है, उसी प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है। यहाँ ब्रह्मचर्य के कामयुग (सर्वकामनाप्रदायक) रूप की प्रतिपादना विवेच्य उपमान से हो रही है।

35. जैसे समस्त वृक्षों में सुदर्शन जम्बू विख्यात है, जिसके नाम से यह द्वीप विख्यात है। उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य विख्यात है। इस उपमान के द्वारा ब्रह्मचर्य की गुणवत्ता के कारण उस की श्रेष्ठता अभिव्यंजित है।

36. जैसे अश्वाधिपति, गजाधिपति और रथाधिपति राजा, विख्यात होता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रताधिपति विख्यात है। यहाँ पर विवेच्य उपमान द्वारा ब्रह्मचर्य की अजेयता प्रतिपादित है।

37. जैसे रथिकों में महारथी राजा श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत सर्वश्रेष्ठ माना है। इस उपमान से ब्रह्मचर्य की उदात्तता, अप्रतिहतता तथा अजेयता के साथ अखण्डता अभिव्यंजित हो रही है।[126]

प्रश्नव्याकरण सूत्र के अतिरिक्त दसवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि सूत्रों में भी ब्रह्मचर्य विषयक अनेक उपमाओं का सुन्दर व सटीक विवरण मिलता है। जैसे–

(1) **रोहित मत्स्य** – उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचारी के लिए रोहित मत्स्य की उपमा का प्रयोग किया गया है। [127] सामान्य मत्स्य जाल में फँस जाते हैं पर रोहित मत्स्य की यह क्षमता होती है कि वह जाल को काट कर बाहर निकल जाता है।

इसी प्रकार सामान्य व्यक्ति काम भोगों के जाल में फँस जाता है पर उठाए हुए भार को वहन करने वाले प्रधान तपस्वी और धीर पुरुष काम–भोगों को छोड़ कर ब्रह्मचर्य को स्वीकार करते हैं। काम भोगों का आकर्षण उन्हें फंसा नहीं सकता।

(2) **मेरु पर्वत** – मेरु पर्वत इतना विशाल और सुदृढ़ होता है कि बड़े से बड़ा तूफान आने पर भी विचलित नहीं होता। इसी प्रकार राग–द्वेष और मोह का त्याग करने वाले जो विचक्षण व्यक्ति होते हैं उनकी आत्म गुप्ति मेरुपर्वत की तरह सुदृढ होती है। [128]

(3) **अगंधन कुल में उत्पन्न सर्प** – सर्प के दो कुल माने जाते हैं – गंधन कुल और अगंधन कुल। अगंधन कुल का सर्प मृत्यु को भले ही अंगीकार कर ले पर वमन किए हुए विष को अपने मुख से फिर नहीं पीता।

इसी प्रकार, जो कुलीन व्यक्ति होते हैं वे त्यागे हुए काम–भोगों को पुन: नहीं चाहते। दसवैकालिक और उत्तराध्ययन दोनों ही सूत्रों में इस उपमा का समान उपयोग है। [129]

(4) **अंकुश से नियंत्रित हाथी** – हाथी विशाल और शक्तिशाली जानवर होता है। मदमस्त होने पर वह अंकुश द्वारा अनुशासित होता है।

उसी प्रकार सम्बुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष प्रेरकों के वचनों से अनुशासित हो जाते हैं। [130]

(5) **अश्व** – साहसिक, भयंकर, दुष्ट अश्व इधर–उधर दौड़ता है। परन्तु लगाम से बांध देने पर वह उन्मार्ग में नहीं जाता। इसी प्रकार मन काम भोगों के लिए इधर–उधर दौड़ता है, परन्तु धर्म शिक्षा के द्वारा वह उन्मार्ग में नहीं जाता है।[131]

(6) **कमल** – कमल जल में उत्पन्न होता है परन्तु जल में लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार पण्डित पुरुष काम के वातावरण में उत्पन्न तो होता है परन्तु उसमें लिप्त नहीं होता है। [132]

(7) **औषध से पराजित रोग** – शरीर में उत्पन्न रोग की चिकित्सा के लिए समुचित औषध लेने पर वह आक्रान्त नहीं कर पाता। इसी प्रकार एकान्त बस्ती, मिताहार, जितेन्द्रियता आदि सुरक्षा उपायों से चित्त को राग–रोग आक्रान्त नहीं कर पाता है। [133]

(8) **महासागर** – जिस प्रकार महासागर को पार कर लेने वाले के लिए गंगा जैसी बड़ी नदी सुतर (सुख से पार करने योग्य) हो जाती है। उसी प्रकार, स्त्री विषयक आसक्तियों का पार पा लेने वाले के लिए अन्य आसक्तियों का पार पाना आसान हो जाता है। [134]

(9) **हाथी** – मकड़ी का जाल मच्छर जैसे तुच्छ प्राणी को ही फंसा सकता है, पर हाथी जैसे विशाल प्राणी को नहीं फंसा सकता। इसी प्रकार, इन्द्रिय विषय दुर्बल व्यक्ति को ही अपने वश में कर सकते हैं। सत्पुरुष – सबल व्यक्तियों पर उनका कोई प्रभाव नहीं होता। उत्तराध्ययन के वृत्तिकार के शब्दों में –

**विषयगण: कापुरूषं करोति वशवर्तिनं न सत्पुरूषम्।**
**बध्नाति मशकं एव हि लूतातन्तुर्नमातंगम्।।** [135]

## 5.0 ब्रह्मचर्य साधना

ब्रह्मचर्य साधना को कब व क्यों करना चाहिए एवं उसकी अर्हताओं पर विचार किया जा रहा है।

## 5.1 ब्रह्मचर्य साधना का समय

ब्रह्मचर्य का पथ कब स्वीकार किया जाए? इस प्रश्न पर विभिन्न मतों में ऐक्य नहीं है। अनेक धर्म दर्शनों में जीवन को विभिन्न भागों में बांट कर उसके कुछ हिस्सों में ही ब्रह्मचर्य का विधान है। इनमें बाल एवं वृद्धावस्था में ब्रह्मचर्य मान्य है एवम् तरुणावस्था को भोग के लिए ही माना गया है। [136]

आचारांग सूत्र के भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ यद्यपि तीनों ही वय – बचपन, युवा और वृद्धावस्था में प्रव्रज्या (ब्रह्मचर्य) के पक्षधर हैं। [137] फिर भी प्रथम व द्वितीय अवस्था को साधना के लिए अधिक सुकर मानते हैं। उनकी मान्यता है कि यौवन[#] ही धर्म की आराधना हो सकती है। बुढ़ापे में जीर्ण–शीर्ण शरीर धर्माराधना करने में समर्थ नहीं होता है। [138]

सूत्रकृतांग में उम्र की सीमा न बांधते हुए कहा गया है कि उचित समय पर ब्रह्मचर्य की साधना स्वीकार्य है। [139]

ठाणं सूत्र में मनुष्य की उम्र को तीन वय में विभक्त किया गया है–

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम वय | – | 8 वर्ष से 30 वर्ष तक |
| मध्यम वय | – | 30 वर्ष से 60 वर्ष तक |
| पश्चिम वय | – | 60 वर्ष से आगे। |

भगवान महावीर ने साधना के साथ वय के योग को मान्यता नहीं दी। उन्होंने तीनों ही वय में सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य वास का पक्ष लिया है। [140]

प्रश्न व्याकरण सूत्र में भी ब्रह्मचर्य को कुमार आदि सभी अवस्थाओं में आचरणीय माना है। [141]

दसवैकालिक सूत्र के अनुसार ब्रह्मचर्य का काल वही उचित है जब तक शारीरिक सामर्थ्य हो। कहा है – जब तक बुढ़ापा पीड़ित न करे, व्याधि न बढ़े और इन्द्रियां क्षीण न हो तब

तक धर्म का आचरण करें। [142]

शारीरिक सामर्थ्य के साथ–साथ ब्रह्मचर्य के प्रति प्रियता – आकषर्ण को भी आवश्यक आवश्यकता माना है। इसी सूत्र में कहा गया है कि वृद्धावस्था में काम सेवन के लिए शरीर तो सक्षम नहीं रहता फिर भी मन बूढ़ा नहीं होता। इसलिए ब्रह्मचर्य प्रिय नहीं होता। आकर्षण अब्रह्मचर्य की ओर ही होता है। ब्रह्मचर्य के प्रति आकर्षण हो तो किसी भी उम्र में इसकी साधना की जा सकती है। [143]

उत्तराध्ययन सूत्र में वर्तमान को ही साधना का सर्वोत्तम काल बताते हुए भविष्य पर साधना को छोड़ने का निषेध इस प्रकार किया है। ''कल की इच्छा वही कर सकता है, जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो, जो मौत के मुंह से बच कर पलायन कर सके और जो जानता हो मैं नहीं मरूंगा।'' [144]

### 5.2 ब्रह्मचर्य साधना : प्रयोजन

साधना सौद्देश्य होती है। इसके उद्देश्य दो प्रकार के हो सकते हैं – (1) लौकिक या भौतिक और (2) लोकोत्तर या आध्यात्मिक। यद्यपि ब्रह्मचर्य साधना से शारीरिक शक्ति, सौंदर्य, सम्मान आदि भौतिक लाभ होते हैं किन्तु मुख्य उद्देश्य आत्म शुद्धि ही है।

दसवैकालिक सूत्र में संपूर्ण आचार के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि न इहलोक के लिए, न परलोक के लिए, न कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक के लिए, मात्र आत्म–हित के लिए आचार का पालन करना चाहिए। [145]

### 5.3 ब्रह्मचर्य : एक दुष्कर साधना

संयम का पथ प्रतिस्रोतगामी होता है। इसमें अनेक प्रकार के परीषह (समस्याएं) आते रहते हैं। प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को दुष्कर साधना कहा है। [146] उत्तराध्ययन सूत्र में इसकी कठिनाईयों का वर्णन अनेक उदाहरणों के साथ किया गया है –

✣ इसमें जीवन पर्यन्त विश्राम नहीं है, यह गुणों का महान भार है। भारी भरकम लौह भार की भांति इसे उठाना बहुत ही कठिन है। [147]

✣ आकाश गंगा के स्रोत के प्रतिस्रोत में चलना और भुजाओं से सागर को तैरना कठिन कार्य है, वैसे ही गुणोदधि संयम को तैरना कठिन कार्य है। [148]

✣ संयम बालू के कोर की तरह स्वाद रहित है, तप का आचरण करना तलवार की धार पर चलने जैसा है। [149]

✣ एकाग्र दृष्टि से चरित्र का पालन करना बहुत ही कठिन कार्य है। जैसे लोहे के यवों को चबाना कठिन है वैसे ही चरित्र का पालन कठिन है। [150]

✣ जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि शिखा को पीना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही यौवन में

श्रमण धर्म का पालन करना कठिन है। [151]

✣ जैसे वस्त्र के थैले को हवा से भरना कठिन कार्य है। वैसे ही सत्वहीन व्यक्ति के लिए धर्म का पालन करना कठिन काम है। [152]

✣ जैसे मेरु पर्वत को तराजू से तौलना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही निश्चल और निर्भय भाव से श्रमण धर्म का पालन करना बहुत ही कठिन काम है। [153]

✣ जैसे समुद्र को भुजाओं से तैरना बहुत ही कठिन कार्य है वैसे ही उपशमहीन व्यक्ति के लिए दम रूपी समुद्र को तैरना बहुत ही कठिन कार्य है। [154]

उपरोक्त उदाहरणों के अनुसार ब्रह्मचर्य अवश्य एक कठिन कार्य है किन्तु उन्हीं व्यक्तियों के लिए जो सत्वहीन, उपशमहीन एवं कमजोर हैं। दसवैकालिक सूत्र की टीका के अनुसार अधृतिवान पुरुष के लिए तप निश्चित ही दुष्कर है।[155]

ज्ञानार्णव में ब्रह्मचर्य की दुष्करता का विस्तृत वर्णन है, वहां इसे वीर धुरंधरों का विषय माना गया है। [156]

दुष्कर होते हुए भी ब्रह्मचर्य को असंभव नहीं कहा गया है। प्रश्नव्याकरण सूत्र के अनुसार भगवान महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने के मार्ग – उपाय गुप्ति आदि भली भांति बतलाए हैं। [157] इतिहास का उदाहरण देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि शुद्ध आचार या स्वभाव वाले मुनि, महापुरुष, धीर शूरवीरे, धार्मिक पुरुष, धैर्यवान आदि व्यक्तियों ने सदा जीवन भर भावपूर्वक सम्यक् प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन किया है। [158]

## 5.4 ब्रह्मचर्य : अर्हताएं

**(1) निर्वेद** – उत्तराध्ययन सूत्र में मृगापुत्र के मुख से सूत्रकार कहते हैं – ''जिस व्यक्ति की ऐहिक सुखों की प्यास बुझ चुकी है, उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है। [159]

**(2) धैर्य** – उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि कामभोग अधीर पुरुषों द्वारा दुस्त्याज्य है। किन्तु जो सुव्रती साधु हैं, वे दुस्तर काम भोगों को उसी प्रकार तर जाते हैं जैसे वणिक् समुद्र को। [160]

**(3) शक्ति** – जिनदासगणि महत्तर ने आचारांग चूर्णि में पराक्रम को ब्रह्मचर्य की अर्हता माना है। [161]

उत्तराध्ययन सूत्र के वृत्तिकार ने इसे सुन्दर श्लोक के माध्यम से और स्पष्ट किया है –

**विषयगण: कापुरूषं करोति, वशवर्तिनं न सत्पुरूषम्।**
**बध्नाति मशकं एव ही लूतातन्तुर्न मातंगम्।।**

इन्द्रियों के विषय दुर्बल व्यक्ति को ही अपने वश में कर सकते हैं। सत्पुरुष सबल

व्यक्तियों पर उनका कोई प्रभाव नहीं होता। मकड़ी के तन्तु मच्छर को बांध सकते हैं, पर हाथी को नहीं। [162]

ज्ञानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र कहते हैं –

**नाल्पसत्त्वैर्न नि: शीलर्नदीनैर्नाक्षनिर्जितै:।**
**स्वप्नेऽपि चरितुं शक्यं ब्रह्मचर्यमिदं नरै:।।**

जो मनुष्य दुर्बल, शील से रहित, दीन और इन्द्रियों के अधीन हैं वे स्वप्न में भी उस ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं कर सकते। [163]

आचार्य तुलसी ने भी ब्रह्मचर्य की मूल अर्हता आत्म बल को ही माना है। [164] वस्तुत: ब्रह्मचर्य जैसी कठोर साधना बिना शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति के नहीं हो सकती। किसी कवि ने कहा है –

**शक्यं ब्रह्मव्रतं घोर, शूरैश्च न तु कातरै:।**
**करिपर्याणमुद्वाह्यं, करिभिर्न तु रासभै:।।**

**(4) नि:शल्यता** – तत्त्वार्थ सूत्र में सभी व्रतों की अर्हता नि:शल्य होना माना है – **नि:शल्यो व्रती।** [165] उसके अनुसार शल्य रहित ही व्रती हो सकता है। मात्र त्याग करने का कोई मोल नहीं है।

सर्वार्थ सिद्धि के अनुसार – **शृणाति हिनस्ति इति शल्यम।** [166] अर्थात् शल्य शब्द का अर्थ है – पीड़ा देने वाली वस्तु। जैसे शरीर के किसी भाग में काँटा या वैसी ही दूसरी कोई तीक्ष्ण वस्तु चुभे तो वह शरीर और मन को अस्वस्थ–बैचेन बना डालती है और आत्मा को किसी भी कार्य में एकाग्र नहीं होने देती वैसे ही कर्मोदय जनित विकार भी शल्य के समान होते हैं। शल्य तीन प्रकार के होते हैं :–

1. मायाशल्य = दम्भ, कपट, ढ़ोंग अथवा ठगने की वृत्ति।
2. निदान शल्य = भोग की लालसा।
3. मिथ्यादर्शन शल्य = सत्य पर श्रद्धा न होना अथवा असत्य का आग्रह।

ये तीनों मानसिक दोष हैं। जब तक ये रहते हैं, चित्त समाधि नहीं रहती। इसलिए शल्य युक्त आत्मा किसी कारण से व्रत ले भी ले तो भी उसका पालन नहीं कर सकती है।

**(5) चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम** – कर्मवाद के सिद्धान्त का प्रत्येक साधना के साथ गहरा संबंध है। कर्मों की औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक एवं पारिणामिक – ये पांच अवस्थाएं होती हैं, इन्हीं के आधार पर व्यक्ति की अवस्थाएं परिवर्तित होती रहती हैं।

ठाणं सूत्र में संपूर्ण ब्रह्मचर्यवास की प्राप्ति के दो स्थान बताए हैं –

1. क्षय और उपशम  2. क्षयोपशम [167]

भगवती सूत्र के अनुसार ब्रह्मचर्य की प्राप्ति का हेतु चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है। जिसके चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है वह किसी उपदेशक का निमित्त मिलने से या न मिलने से भी ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लेता है। जिसके यह क्षयोपशम नहीं होता वह केवली आदि उपदेशक के प्रेरित करने पर भी ब्रह्मचर्य ग्रहण नहीं कर सकता है। [168]

## 6.0 निष्कर्ष

जैन वाङ्मय के अध्ययन से फलित होता है कि ब्रह्मचर्य जैन साधना पद्धति का प्राण तत्त्व है। जैन आगमकार एवं टीकाकारों ने ब्रह्मचर्य की मुक्त कंठ से सराहना करते हुए इसके विवेचन को प्रस्तुत किया है। आचारांग, सूत्रकृतांग, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन आदि ग्रंथों में ब्रह्मचर्य पर स्वतंत्र अध्याय की रचना इसके अतिरिक्त महत्त्व को उजागर करती है।

जैन परम्परा में पांच व्रतों की सुरक्षा के लिए समिति, गुप्ति एवं पच्चीस भावना आदि की व्यवस्था है। ब्रह्मचर्य का महत्त्व इससे भी प्रतिपादित होता है कि ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए उपरोक्त के अतिरिक्त नव बाड़ एवं दसवां कोट की व्यवस्था की गई है। यत्र–तत्र अनेक ऐसे सूत्र भी हैं जो ब्रह्मचर्य की सुरक्षा की दृष्टि से विधि एवं निषेध का मार्गदर्शन देते हैं। यहाँ ब्रह्मचर्य को महादुष्कर साधना माना जाता है।

यहाँ अन्य व्रतों एवं नियमों का सापवाद (अपवाद सहित) एवं सापेक्ष दृष्टि से प्रतिपादन मिलता है। किन्तु ब्रह्मचर्य को निरपवाद साधना माना जाता है। यहाँ तक कहा गया है कि यदि कोई स्त्री का परीषह आ जाए तो अपनी प्रतिज्ञा की सुरक्षा के लिए मर जाना श्रेयस्कर है परन्तु ब्रह्मचर्य भंग करना उचित नहीं।

सामान्यत: ब्रह्मचर्य का अर्थ ''मैथुन विरति'' ही किया जाता है। परन्तु जैन आगमों एवं टीकाकारों ने ब्रह्मचर्य को विराट अर्थों में प्रतिपादित किया है। यहाँ ब्रह्मचर्य के अर्थ में अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है जैसे – आत्मविद्या, आत्म विद्याश्रित आचरण, विरति, आचार, मैथुन विरति– उपस्थ संयम, गुरुकुलवास, सत्य, तप, आत्म रमण, संवर, संयम आदि।

मेरी दृष्टि में ''आत्म रमण'' ही ब्रह्मचर्य का सर्वाधिक उपयुक्त अर्थ है। क्योंकि व्यक्ति के आत्मा में रमण होने पर ही वह बाह्य जगत से मुक्त हो जाता है और तभी अकुशल कार्यों को त्याग कर कुशल कार्यों में आत्मा को नियोजित कर पाता है।

साहित्य के क्षेत्र में किसी विषय का महत्त्व इससे भी परिलक्षित होता है कि उसे किन–किन उपमाओं से उपमित किया गया है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को सैंतीस उपमाओं से उपमित किया गया है। एक–एक उपमान ब्रह्मचर्य के महत्त्व को उजागर तो करते ही हैं, इसमें छिपे सूक्ष्म सत्य का प्रतिनिधित्व भी करते हैं।

जैन आगमों में प्रतिपादित साधना पद्धति व्यवहार का अतिक्रमण नहीं करती। यह सर्व विदित है कि सभी साधकों की क्षमता समान नहीं होती। इसी सत्य को ध्यान में रखते हुए सूत्रकारों ने ब्रह्मचर्य को दो श्रेणियों में विभाजित किया – 1. ब्रह्मचर्य महाव्रत, और 2. ब्रह्मचर्य अणुव्रत।

ब्रह्मचर्य महाव्रत में मैथुन सेवन का आजीवन सर्वत्र प्रत्याख्यान रहता है। यह पांच महाव्रतधारी मुनियों के लिए हैं तथा जो महाव्रत स्वीकार करने में असक्षम हैं उनके लिए अणुव्रत अर्थात् मान्य सामाजिक धार्मिक नियमों के अनुसार स्वयं की विवाहित पत्नी/पति के अतिरिक्त अन्यत्र मैथुन सेवन का प्रत्याख्यान का विधान है। इस प्रकार अणुव्रत के द्वारा व्यक्ति की वासना एक निश्चित स्तर तक सीमित हो जाती है।

ब्रह्मचर्य कब स्वीकारा जाए? इस संदर्भ में जैन सूत्रकारों का मत **जब जागे तभी सवेरा** का अनुकरण करता है। यौवनावस्था में जब शरीर काम–भोग के लिए सक्षम होता है। उस समय भी ब्रह्मचर्य स्वीकार किया जा सकता है और वृद्धावस्था में भी। प्रश्न हो सकता है कि वृद्धावस्था में ब्रह्मचर्य की क्या उपयोगिता है। शारीरिक क्षमता ही न रहे तब त्याग का क्या लाभ? इस संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि व्यक्ति का शरीर बूढ़ा हो जाता है पर मन बूढ़ा नहीं होता। वृद्धावस्था में भी जो ब्रह्मचर्य स्वीकार करते हैं जैन आगमों में उसे भी सद्गति का निमित्त कहा गया है।

इस प्रकार आगम साहित्य में ब्रह्मचर्य का विस्तृत वर्णन किया गया है।

ब्रह्मचर्य का प्रतिपक्षी है– अब्रह्मचर्य। पक्ष के सम्पूर्ण अध्ययन के लिए उसके प्रतिपक्ष का अध्ययन अपेक्षित रहता है। जैन आगमों में अब्रह्मचर्य पर भी व्यापक प्रकाश डाला गया है। आगामी द्वितीय अध्याय में अब्रह्मचर्य पर विवेचनात्मक अध्ययन किया जा रहा है।

## 7.0 संदर्भ


1. आचारांग भाष्यम् 3(3)/63
2. जैन आचार मीमांसा / पृ. 119
3. सूयगडो (1)/6/23
4. वही (1)/2/56 के टिप्पण संख्या 75 में उद्धृत सू. चूर्णि, पृ. 70
5. ठाणं 3/316
6. ठाणं 5/35
7. ठाणं 5/133, 134
8. ठाणं 10/16
9. ठाणं 3/474
10. (अ) उपासकदशांग/ प्रस्तावना/ पृष्ठ 67
    (ब) उपासकदशांग/प्रस्तावना 1/ 51
11. उपासकदसाओ। पृ. 19
12. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/141,143
13. वही 2/4/141
14. वही 2/4/141
15. वही 2/4/145
16. वही 2/144
17. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/5
18. वही 2/4/6
19. दसवेआलियं 2/1
20. वही 2/7
21. उत्तरज्झयणाणि 12/42
22. वही (अ) 19/29 वही (ब) 32/18
23. वही 16/17
24. वही 16/17
25. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में उद्धृत – धर्मामृत अणगार 4/60
26. वही – स्याद्वाद मञ्जरी 23/277/25
27. शील की नव बाड़, ढ़ाल1, दोहा 4
28. आचारांग भाष्यम् 1/आमुख / पृष्ठ 15

29. वही 4 (4)/44 **ब्रह्मचर्यस्य त्रयोऽर्था: भवन्ति– आचारा: मैथुन विरति: गुरुकुलवासश्च।**
30. वही 3(1)/4 **ब्रह्म – आचार: सत्यं तपश्च।**
31. (अ) वही 5(2)/35 **ब्रह्मचर्यम् – आत्मरमणं, उपस्थ संयम:, गुरुकुलवासश्च**
(ब) वही 3(2) 47
32. सूयगडो (1)/6/23, टिप्पण संख्या 83 में उद्धृत
33. वही (1)/1/72, सू(1)/14/1
34. वही (1)/14/1 के टिप्पण में उद्धृत (अ) चूर्णि पृ. 228, (ब) वृत्ति, पत्र 248
35. सूयगडो / (2)/5/1; 1/14/1 के टिप्पण में उद्धृत–चूर्णि पृ. 403
36. (अ) ठाणं 9/2 (ब) समवाओ 9/3
37. ठाणं 10/16 के टिप्पण संख्या 7 में उद्धृत – स्थानांग वृत्ति, पत्र 282,283
38. समवाओ 27/1
39. समवाओ 9/1 के टिप्पण संख्या 3 में उद्धृत – समवायांग वृत्ति पत्र 16
40. समवाओ 51/1 की टिप्पण संख्या 1 में उद्धृत
41. नायाधम्मकहाओ, टिप्पण संख्या 6.17, पृ. 63 में उद्धृत
ज्ञाता वृत्ति, पत्र 8 – **''ब्रह्म–ब्रह्मचर्यं सर्वमेव वा कुशलानुष्ठानम्''**
42. दसवेआलियं 4/14
43. (अ) जैन आचार मीमांसा / पृ. 120 पर उद्धृत (ब) निरुक्त कोश, 1116 में उद्धृत – उत्तराध्ययन चूर्णि, पृ. 207
44. ठाणं 10/16 के टिप्पण संख्या 7 में उद्धृत – षट् प्राभृत द्वादशानुप्रेक्षा, श्लोक 80
45. ठाणं 10/16 के टिप्पण संख्या 7 में उद्धृत – तत्त्वार्थ वार्तिक पृष्ठ 595–600
46. आचारांग और महावीर पृष्ठ 285 में उद्धृत–आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, भाग–2 पृष्ठ 181
47. सू.टी. 2 पृ. 119 (निरुक्त कोश में उद्धृत)
48. सू.टी. 2 पृ. 119 (निरुक्त कोश में उद्धृत)
49. उत्तराध्ययन चूर्णि पृ/207 (निरुक्त कोश में उद्धृत)
50. अणु से पूर्ण की यात्रा, पृष्ठ 323
51. ब्रह्मचर्य विज्ञान पृष्ठ 137
52. ब्रह्मचर्य विज्ञान पृष्ठ 137
53. संस्कृत हिन्दी कोश पृष्ठ 723

54. पाइयसद्दमहण्णवो / पृष्ठ
55. अमरकोश, पृष्ठ 324
56. A Sanskrit English Dictionary / Pg. 738
57. शब्दकल्पद्रुम, पृष्ठ 444 आश्रम विशेष: यथा, गारूडे 94 अध्याये यम भेद:। यथा पातञ्जले
    2/30 ब्रह्मचर्यमुपस्थनियम: वीर्य धारणम् वा इति भाष्यम्।
58. मानक हिन्दी कोश पृ.180
59. Dictionary of Budhism Pg. 35
60. पद्मनन्दि पंचविंशतिका 12/2 (ब्रह्मचर्य विज्ञान पृ. 138 में उद्धृत)
61. भगवती आराधना / 872
62. भारतीय संस्कृति का विकास, प्रथम खण्ड, पृष्ठ 228
63. तत्त्वार्थ सूत्र, सर्वार्थसिद्धि 7/16/35/4
64. धवला /9/4/1/29/94/2
65. अनगार धर्मामृत 8/60
66. जैन सिद्धान्त दीपिका (प्रकाश–7 सूत्र – 3)
67. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/2–3
68. वही 2/4/3–4
69. ज्ञानार्णव 11/4
70. भिक्षु दृष्टान्त 41/पृष्ठ 144
71. (अ) समवाओ 25/1 (ब) अवबोध पृष्ठ 92
72. सूयगडो (1)/6 (आमुख, पृष्ठ 280)
73. अवबोध पृष्ठ 94
74. संबोधि 7/39, पृष्ठ 151 में उद्धृत
75. जैन आचार मीमांसा, पृष्ठ 121
76. जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन में उद्धृत – यंग इण्डिया, खण्ड 2, पृष्ठ 1295
77. पथ और पाथेय पृष्ठ 40
78. वही
79. वही
80. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में उद्धृत – शीलपाहुड़ / मू / 40

81. वही (अ) धवला 8/3,41/82/5 (ब) अनगार धर्मामृत 4/172
(स) प्रशमरति प्रकरणम् कारिका 244,245
82. (अ) दसवेआलियं 8/40 के टिप्पण संख्या 107 में उद्धृत जि.चू.पृ.287 हा.टी.प. 235
(ब) उत्तरज्झयणाणि 19/ टिप्पण संख्या 16 में उद्धृत – उत्तरा, वृहद्वृत्ति, पत्र 456
83. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में उद्धृत–(भा.षा/टी/118/267/14) पा/पं.जयचन्द/120/ 240
84. अवबोध पृष्ठ 91
85. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/145
86. जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन में उद्धृत बृहत्कल्प सूत्र 6/7–12
87. वही – व्यवहार सूत्र 5/21
88. वही – बृहत्कल्प सूत्र 6/3
89. (अ) भगवती आराधना / मू / 878
(ब) अनगार धर्मामृत /4/60
90. पद्मनंदि पंच विंशतिका /12/2
91. सर्वार्थ सिद्धि 9/6/413/3
92. भगवती आराधना/वि/46/154/16
93. पद्मनंदि पंच विंशतिका/12/2
94. (अ) दसवेआलियं 4/14 (ब) आचारचूला 1/15/64
95. सर्वार्थ सिद्धि 7/2
96. पातंजल योग सूत्र 2/31
97. समवाओ 25/1
98. प्रश्नव्याकरण सूत्र 9/6–11
99. (अ) समवाओ में उद्धृत – आचारचूला 15/43–78
(ब) आयार चूला 1/15/64–70
100. समवाओ में उद्धृत – आवश्यक निर्युक्ति अवचूर्णि, भाग–2, पृष्ठ 134, 135
101. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में उद्धृत – भगवती आराधना/मू./121
102. तत्त्वार्थ सूत्र 7/7

103. उपासकदशांग – सूत्रम् / 1/16
104. श्रावक प्रतिक्रमण 4/4 – **''चउत्थं अणुव्वयं थुलाओ मेहुणाओ वेरमणं''**
105. जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन पृष्ठ 281 में उद्धृत – उपासकदशांग 1/44
106. वही
107. उपासकाध्ययन, प्रस्तावना में उद्धृत – श्लोक 59
108. वही – सर्वार्थसिद्धि 7/20
109. वही – पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय / 118
110. सोमदेव विरचित उपासकाध्ययन / 405
111. प्रशमरति प्रकरण 22/302–308 (भावार्थ)
112. उपासकाध्ययन, प्रस्तावना में उद्धृत – गाथा 338
113. सागारधर्मामृत 4/52
114. उपासकाध्ययन, प्रस्तावना पृष्ठ 81 में उद्धृत – लाटी संहिता पृ.105
115. वही
116. उपासकाध्ययन, प्रस्तावना पृष्ठ 82
117. जैन लक्षणावली। पृष्ठ 22
118. उपासकदशांग / पृ. 42
119. उपासकाध्ययन, प्रस्तावना पृष्ठ 82
120. श्रावकाचार संग्रह अनुशीलन, पृष्ठ 324 में उद्धृत–यशस्तिलक चम्पु–श्रावकाचार 393
121. (अ) समवाओ 11/1 (ब) दशाश्रुतस्कन्ध / 6
122. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में उद्धृत–(अ) का.अ/टी/403
(ब) भ.पा./टी/96/245/22
123. समवाओ 18/1
124. (अ) ठाणं 3/10 (ब) दसवेआलियं 4/14 के टिप्पण में उद्धृत
125. झीणी चरचा / 245
126. प्रश्नव्याकरण /2/4/141,142
127. उत्तरज्झयणाणि 14/35
128. वही 21/19
129. दसवेआलियं 2/6(अ) (ब) उत्तरज्झयणाणि 22/41
130. उत्तरज्झयणाणि 22/46

131. वही 23/55-58
132. वही 25/26, 32/34
133. वही 32/12
134. वही 32/18
135. उत्तराध्ययन, वृहद् वृत्ति, पत्र 292
136. उत्तरज्झयणाणि 20/8, 19/43
137. आचारांग 1/8/1/15 (ठाणं 3/45 के टिप्पण से उद्धृत)
138. आचारांग भाष्यम् 2(1) 12, 23
139. सूयगडो (1) /3/75
140. ठाणं 3/163,165,175 (टिप्पण संख्या 45)
141. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/141
142. दसवेआलियं 8/35
143. दसवेआलियं 4/27 (टिप्पण)
144. उत्तरज्झयणाणि 14/27
145. (अ) दसवेआलियं 4/14
(ब) वही 9/4/4
146. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/145
147. उत्तरज्झयणाणि 19/34
148. वही 19/36
149. वही 19/37
150. वही 19/38
151. वही 19/39
152. वही 19/40
153. वही 19/41
154. वही 19/42
155. (अ) दसवै. हरिभद्र सूरि की टीका (दसवेआलियं/2/आमुख / पृ. 96 में उद्धृत)
(ब) उत्तरज्झयणाणि /7/ टिप्पण संख्या 40 में उद्धृत –
**जस्स धिई तस्स तवो, जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलभा।**
**जे अधिइमंत पुरिसा तवोऽपि खलु दुल्लहो तेसिं।।**

156. ज्ञानार्णव 11/1, 11/18–21
157. प्रश्नव्याकरण 2/4/144
158. वही 2/4/143
159. उत्तरज्झयणाणि 19/44
160. वही 8/6
161. आचारांग और महावीर पृष्ठ 8 में उद्धृत–आचारांग चूर्णि, पृष्ठ 21
162. उत्तरज्झयणाणि 8/6 के टिप्पण से उद्धृत – वृहद् वृत्ति पत्र 292
163. ज्ञानार्णव 11/5
164. पथ और पाथेय पृष्ठ 40–41
165. तत्त्वार्थ सूत्र 7/13
166. सर्वार्थ सिद्धि 7/18
167. ठाणं सूत्र 2/404
168. भगवती (व्याख्या प्रज्ञप्ति) श 9./उ.31/सू. 13,32

# अध्याय द्वितीय
# अब्रह्मचर्य : एक विवेचन

## अध्याय द्वितीय

## 2. अब्रह्मचर्य : एक विवेचन

### रूपरेखा


**1.0 अब्रह्मचर्य का अध्ययन क्यों ?**

1.1 प्रतिपक्षी का अध्ययन 1.2 समस्या का अध्ययन
1.3 अब्रह्मचर्य भी ज्ञेय 1.4 सीमा का बोध

**2.0 अब्रह्मचर्य का स्वरूप : पर्याय विवेचन**

2.1 अब्रह्म 2.2 मैथुन
2.3 चरंत 2.4 संसगी
2.5 सेवनाधिकार 2.6 संकल्पी
2.7 बाधनापदानाम् 2.8 दर्प
2.9 मोह (मूढ़ता) 2.10 माणसंखोभो संखेवो
2.11 अनिग्रह 2.12 वुग्गहो
2.13 विघात 2.14 विभंग
2.15 विभ्रम 2.16 अधर्म
2.17 अशीलता 2.18 ग्रामधर्मतप्ति
2.19 रई 2.20 रागचिंता
2.21 कामभोगमार 2.22 वैर
2.23 रहस्यम 2.24 गुह्य
2.25 बहुमान 2.26 ब्रह्मचर्यविघ्न
2.27 व्यापत्ति 2.28 विराहणा
2.29 पसंगो 2.30 कामगुण
2.31 अध्युपपादन 2.32 बहिद्ध
2.33 पर्यापादन 2.34 संवास
2.35 परिचारणा 2.36 काम भोग
2.37 कुशील 2.38 ग्राम्य क्रीड़ा
2.39 लिंग एवं वेद

**3.0 अब्रह्मचर्य : कारक तत्त्व**

3.1 कुशील संगत 3.2 शब्द श्रवण

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | 3.3 | रूप दर्शन | 3.4 | आहार |
| | 3.5 | शरीर | 3.6 | पूर्व भुक्त भोगों की स्मृति |
| | 3.7 | काम अध्यवसाय | 3.8 | मान्यता/धारणा |
| | 3.9 | कर्मों का उदय | | |
| **4.0** | **उपमाएं** | | | |
| | 1. | सूअर | 2. | संग |
| | 3. | दलदल | 4. | बंधन |
| | 5. | गाड़ी की धुरी | 6. | जुआरी |
| | 7. | शिशुनाग | 8. | मक्खी |
| | 9. | दुस्तर समुद्र | 10. | राक्षसी |
| | 11. | शल्य | 12. | विष |
| | 13. | तालपुट विष | 14. | आशीविष सर्प |
| | 15. | वमन | 16. | गरुड़ |
| | 17. | बिजली की चमक | 18. | पानी का बुलबुला |
| | 19. | नंदीफल | 20. | किम्पाक फल |
| | 21. | हट | 22. | गोपाल और भाण्डपाल |
| | 23. | बिल्ली–चूहा | 24. | प्रकाश लोलुप पतंगा |
| | 25. | अग्नि | 26. | मृग |
| | 27. | मत्स्य | 28. | भैंसा |
| | 29. | हाथी | 30. | वैतरणी नदी |
| | 31. | चोर | 32. | पिशाच |
| | 33. | रेशम का कीड़ा | 34. | सछिद्र बर्तन |
| | 35. | मालती लता | 36. | कौआ |
| | 37. | कुत्ता | 38. | कीड़े |
| | 39. | घी | 40. | पागल |
| | 41. | अपथ्य आहार | 42. | कुष्ठ रोग |
| **5.0** | **निष्कर्ष** | | | |
| **6.0** | **संदर्भ** | | | |

## 2. अब्रह्मचर्य : एक विवेचन

### 1.0 अब्रह्मचर्य का अध्ययन क्यों?

ब्रह्मचर्य अनेक दृष्टियों से उपयोगी होता है। उसका अध्ययन तो आवश्यक है, किन्तु इस अध्याय के शीर्षक को पढ़कर ही प्रश्न उत्पन्न होता है कि अब्रह्मचर्य के अध्ययन की क्या अपेक्षा है? इसके उत्तर में यहां तक कहा जा सकता है कि अब्रह्मचर्य के अध्ययन की आवश्यकता ही नहीं, ब्रह्मचर्य को जानने के लिए अब्रह्मचर्य के अध्ययन की प्रथम अपेक्षा है। इसके कारण ये हो सकते हैं –

### 1.1 प्रतिपक्षी का अध्ययन

किसी भी विषय के सर्वांगीण अध्ययन के लिए उसके प्रतिपक्षी तथ्यों का अध्ययन भी आवश्यक होता है। अब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य का प्रतिपक्षी है। प्रतिपक्षी को पहले समझने से पक्ष अच्छी तरह से समझ में आता है। इसलिए ब्रह्मचर्य के अध्ययन के साथ अब्रह्मचर्य को जानना आवश्यक है।

सूत्रकृतांग सूत्र में कहा गया है, **''बुज्झेज्ज तिउटट्टेज्जा बंधणं परिजाणियां''** अर्थात् पहले बंधन को जानो फिर उसे तोड़ो।[1] इस सूत्र के टिप्पण में आचार्य महाप्रज्ञ आचार शास्त्र की पृष्ठ भूमि ज्ञान को मानते हैं – ज्ञानं प्रथमो धर्म:।[2]

### 1.2 समस्या का अध्ययन

भगवती सूत्र के अनुसार ब्रह्मचर्य से पहले अब्रह्मचर्य होता है।[3] प्रश्न व्याकरण सूत्र आदि प्राचीन ग्रंथों में भी ब्रह्मचर्य के प्रतिपादन से पूर्व अब्रह्मचर्य का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रज्ञापना सूत्र में मनुष्यों में पाई जाने वाली संज्ञाओं और उनके अल्प–बहुत्व पर विचार किया गया है। इसके अनुसार चारों संज्ञाओं की अपेक्षा मनुष्य में मैथुन संज्ञा सर्वाधिक होती है, क्योंकि मनुष्यों में प्राय: मैथुन संज्ञा अति प्रभूत काल तक बनी रहती है।[4] वस्तुत: समस्या अब्रह्मचर्य की है, ब्रह्मचर्य की नहीं, इसलिए अब्रह्मचर्य को भी जानना जरूरी है।

### 1.3 अब्रह्मचर्य भी ज्ञेय

जैन परम्परा में समस्त पदार्थों को हेय, ज्ञेय और उपादेय इन तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। ज्ञेय सभी पदार्थ हैं भले ही वे हेय हो या उपादेय। दसवैकालिक सूत्र में कहा गया है –

**सोच्चा जाणई कल्लाणं, सोच्चा जाणई पावगं।**
**उभयं पि जाणई सोच्चा, जं छेयं तं समायरे।।**[5]

### 1.4 सीमा का बोध

भारतीय परम्परा के साहित्य एकांगी नहीं रहे। इनमें जीवन के सभी अंगों का– काम,

अर्थ, धर्म और मोक्ष के अंतर्गत विवेचन किया गया है। काम तत्त्व को यहां उपेक्षित नहीं किया गया है। बल्कि इसके उन्मुक्त भाव को मर्यादित किया गया है। इसकी सीमा रेखा को समझने के लिए भी इसके ज्ञान का होना आवश्यक है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य की साधना में अग्रसर होने के लिए जितना ब्रह्मचर्य को समग्रता से जानना आवश्यक है, उतना ही अब्रह्मचर्य को भी समग्रता से जानना आवश्यक है।

## 2.0 अब्रह्मचर्य का स्वरूप : पर्याय विवेचन

विकसित भाषाओं की यह विशेषता होती है कि वहां एक शब्द के अनेक अर्थ निकलते हैं तथा एक अर्थ के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग भी होता है। शब्दों की यह विविधता हमें अर्थ को समग्रता और गहराई से समझने में बहुत सहयोग करती है। इससे स्वरूप स्पष्ट होता चला जाता है। दसवें अंग पण्हावागरणाइं (प्रश्न व्याकरण सूत्र) में अब्रह्मचर्य के तीस गुण निष्पन्न अर्थात् सार्थक नामों का उल्लेख किया गया हैं। [6]

## 2.1 अब्रह्म (अबंभं)

अब्रह्मचर्य शब्द ब्रह्मचर्य का विलोम शब्द है। इसका स्पष्ट अर्थ होता है– ब्रह्मचर्य का अभाव। प्रश्नव्याकरण सूत्र के व्याख्याकारों ने इसका अर्थ अकुशल अनुष्ठान, अशुभ आचरण[7], अकुशल कार्य तथा दुराचार[8] किया है। तत्त्वार्थ सूत्र[9] एवं जैन सिद्धांत दीपिका[10] में मैथुन को अब्रह्मचर्य कहा है – **मैथुनमब्रह्म।**

A Sanskrit English Dictionary के रचनाकार ने अब्रह्मचर्य के दो अर्थ किए हैं – ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करना और अपवित्रता। [11]

धर्मामृत अनगार में शील की विराधना को अब्रह्मचर्य कहा गया है। इसके दस प्रकार इस प्रकार बताए हैं :–

1. स्त्रियों की संगति करना
2. इंद्रियमद कारक स्वादिष्ट भोजन
3. सुगंधित पदार्थों से शरीर का संस्कार करना
4. कोमल शय्या और आसन आदि पर सोना, बैठना
5. अलंकार आदि से शरीर को सजाना
6. गीत–वाद्ययंत्र आदि सुनना
7. अधिक परिग्रह का संग्रह
8. कुशील व्यक्तियों की संगति
9. राजा की सेवा और
10. रात्रि में इधर–उधर घूमना [12]

मूलाराधना में भी इन्हीं दसों को शील की विराधना का कारण माना गया है। [13]

धर्मामृत अनगार एवं भगवती आराधना में ब्रह्मचर्य के विघातक तत्त्वों को अब्रह्म मानते हुए इसके दस प्रकारों की चर्चा की हैं –

1. इच्छिविसयाभीलासो – स्त्री संबंधी इंद्रिय विषयों की इच्छा करना। आंखों से उसके सौंदर्य का, जिह्वा से उनके अधरों का, नाक से उसकी देह या सांसों आदि की सुगंध का, स्पर्शन् से उनके अंग स्पर्श का तथा कान से उनके गीत आदि शब्दों को सुनने की इच्छा करना।
2. वत्थि मोक्खो – अपने इंद्रिय अर्थात् लिंग में विकार उत्पन्न करना तथा विकार उत्पन्न होने पर उसे दूर न करना।
3. वृष्यरस सेवा – वीर्य वृद्धिकारक दूध, उड़द आदि पौष्टिक आहार आदि का सेवन करना।
4. संसक्त द्रव्य सेवा – स्त्री का स्पर्श अथवा इसी प्रकार स्त्रियों से संबद्ध शय्या आदि का स्पर्श करना अथवा उनका उपयोग करना।
5. तदिंद्रियालोचन – स्त्री के गुप्तांगों को दृष्टि डाल कर देखना।
6. सत्कार – अनुरागवश स्त्री का सत्कार करना।
7. सम्मान – उनके देह पर वस्त्र, माला आदि से सम्मान करना।
8. अतीत स्मरण – भूतकाल में की रति क्रीड़ाओं का स्मरण करना।
9. अनागताभिलाष – 'भविष्यत् काल में उनके साथ ऐसी क्रीड़ा करूँगा', ऐसी अभिलाषा करना।
10. इष्ट विषय सेवा – इष्ट विषयों का सेवन करना। [14]

## 2.2 मैथुन (मेहुणं)

प्रश्नव्याकरण सूत्र में इसका अर्थ मिथुन अर्थात् नर–नारी के संयोग से होने वाला कृत्य[15] तथा नर नारी के युगल की क्रिया[16] माना गया है। जैन सिद्धांत दीपिका में मिथुन (स्त्री और पुरुष के जोड़े) की काम राग जनित चेष्टाओं को मैथुन कहा गया है।[17] पं. सुखलाल संघवी ने तत्त्वार्थ सूत्र के विवेचन में इसकी विस्तृत व्याख्या की है। उनके अनुसार मैथुन का अर्थ मिथुन की प्रवृत्ति है। 'मिथुन' शब्द सामान्य रूप से 'स्त्री और पुरुष का जोड़ा' के अर्थ में प्रसिद्ध है। इसका विस्तृत अर्थ करें तो जोड़ा स्त्री–पुरुष का, पुरुष–पुरुष का, या स्त्री–स्त्री का भी हो सकता है और वह सजातीय–मनुष्य आदि एक जाति का अथवा विजातीय–मनुष्य, पशु आदि भिन्न–भिन्न जाति का भी हो सकता है। एक जोड़े की काम राग के आवेश से उत्पन्न मानसिक, वाचिक अथवा कायिक कोई भी प्रवृत्ति मैथुन अर्थात् अब्रह्मचर्य कहलाती है।

उन्होंने मैथुन का असली भावार्थ **'काम राग जनित कोई भी चेष्टा'** किया है। इस

प्रकार जोड़ा न भी हो और स्त्री या पुरुष में से कोई एक ही व्यक्ति काम राग के आवेश में जड़ वस्तु के आलम्बन से अथवा अपने हस्त आदि अवयवों द्वारा दुराचार का सेवन करता है तो वह मैथुन ही कहलाएगा। [18]

**कोशगत अर्थ – पाइयसद्दमहण्णवो** में मैथुन का अर्थ रति क्रिया और संयोग किया है। [19]

### 2.2.1 मैथुन के भेद–प्रभेद

1. **मैथुन के दो प्रकार** – आचार्य महाप्रज्ञ ने मैथुन के दो प्रकार का उल्लेख किया है :– (1) सूक्ष्म और (2) स्थूल। उनके अनुसार मन, इंद्रिय और वाणी में जो अल्प विकार उत्पन्न होता है, वह सूक्ष्म मैथुन है और शारीरिक काम चेष्टा करना स्थूल मैथुन है। [20]

2. **मैथुन के तीन प्रकार** – ठाणं सूत्र में मैथुन के तीन प्रकार बताए हैं।[21]

i दिव्य – देव संबंधी मैथुन को दिव्य मैथुन कहते हैं।

ii मानुषिक – मनुष्य से संबंधित मैथुन को मानुषिक कहा जाता है।

iii तिर्यञ्च – पशु, पक्षी आदि के साथ मैथुन तिर्यञ्च कहलाता है।

दसवैकालिक सूत्र के व्याख्या ग्रंथों में उपरोक्त मैथुन के प्रकार को 'रूप सहित द्रव्य में मैथुन' के अंतर्गत समाहित किया गया है। इसके अतिरिक्त 'रूप में मैथुन' नया वर्गीकरण दिया है। इसका अर्थ है – निर्जीव वस्तुओं के साथ जैसे प्रतिमा या मृत शरीर के साथ किया जाने वाला मैथुन।[22]

3. **मैथुन सेवन के कर्ता के तीन प्रकार** – ठाणं सूत्र में मनुष्य संबंधी मैथुन के सेवन कर्ता की दृष्टि से तीन प्रकार बताए हैं – (1) स्त्री (2) पुरुष (3) नपुंसक।[23] वृत्तिकार ने स्त्री, पुरुष और नपुंसक के लक्षणों का संकलन इस प्रकार किया है।

(1) स्त्री – योनि, मृदुता, अस्थिरता, मुग्धता, क्लीवता, स्तन और पुरुष के प्रति अभिलाषा। ये स्त्री के सात लक्षण कहे गए हैं।

(2) पुरुष – इनके भी निम्न सात लक्षण होते हैं। लिंग, कठोरता, दृढ़ता, पराक्रम, दाढ़ी–मूंछ, धृष्टता और स्त्री के प्रति अभिलाषा।

(3) नपुंसक – इनके ये लक्षण हैं – स्तन और दाढ़ी–मूंछ, ये कुछ अंशों में होते हैं, परंतु पूर्ण विकसित नहीं होते, इनमें अत्यंत प्रज्ज्वलित कामाग्नि पाई जाती हैं। [24]

**4. मात्रा के अनुसार भेद** – आचारांग भाष्य में मैथुन सेवन कर्ता की कामुकता के परिमाण के आधार पर इन्हें तीन विभागों में विभक्त किया गया हैं –

(1) अल्प इच्छा वाले – इनमें कामुकता की स्थिति काफी मंद होती है।

(2) महान इच्छा वाले – इनमें अति तीव्र कामुकता पाई जाती है।

(3) इच्छा रहित – शुद्ध चेतना, कामुकता का सर्वथा अभाव रहता है।[25]

**5. मैथुन के चार प्रकार –** दसवैकालिक सूत्र के जिनदासगणि महत्तर चूर्णि में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से मैथुन के चार विभाग इस प्रकार किए गए हैं :–

(1) द्रव्य दृष्टि से मैथुन का विषय चेतन और अचेतन पदार्थ हैं।

(2) क्षेत्र दृष्टि से उसका विषय तीनों लोक हैं।

(3) काल दृष्टि से उसका विषय दिन और रात हैं।

(4) भाव दृष्टि से उसका हेतु राग–द्वेष हैं।[26]

**6. मैथुन के चार प्रकार** – मूलाचार के रचनाकार के अनुसार सजीव देव आदि के अतिरिक्त मैथुन की उत्पत्ति अचित पदार्थों के द्वारा भी देखी गई है। यद्यपि इसमें जोड़ा नहीं होता, फिर भी भावों की कलुषता सचित के समान होती है। इसलिए अचित पदार्थों को भी मैथुन का कारण मानते हुए मैथुन के चार प्रकार बताए गए हैं – (1) अचेतन (2) देव (3) मनुष्य (4) तिर्यञ्च।[27]

**7. मैथुन के दस प्रकार** – ज्ञानार्णव में दस प्रकार के मैथुन का उल्लेख हैं।[28]

1. शरीर का श्रृंगार करना
2. गरिष्ठ भोजन
3. गीत सुनना, नृत्य देखना और वाद्य यंत्र सुनना
4. स्त्री से संबंध स्थापित करना
5. स्त्री विषयक विचार
6. स्त्री के अंगों को देखना
7. स्त्री का सत्कार करना
8. पूर्व में अनुभव किए गए सम्भोग का स्मरण करना
9. भविष्य का चिंतन
10. वीर्य का क्षरण

इनमें पहले, चौथे, पांचवें व दसवें को छोड़कर शेष अब्रह्म के प्रकारों के समान हैं।

**2.2.2 मैथुन संज्ञा** – संज्ञा का शाब्दिक अर्थ होता है ''चेतना'' अथवा ''इच्छा''। यह जैन परम्परा का पारिभाषिक शब्द है, यहां उसका अर्थ है – मोहनीय एवं असातावेदनीय कर्म के उदय से चेतना शक्ति का विकार युक्त हो जाना।[29] ठाणं सूत्र में चार प्रकार की संज्ञाएं बताई गई हैं। 1. आहार संज्ञा 2. भय संज्ञा 3. मैथुन संज्ञा और 4. परिग्रह संज्ञा।[30] श्री पन्नवणा सूत्र के आठवें पद में संज्ञा के दस प्रकार बताए हैं। अनेक सूत्रों में सोलह भेद भी प्ररूपित किए गए हैं।[31]

**(अ) मैथुन संज्ञा का अर्थ** – ठाणं एवं जीवाजीवाभिगम के व्याख्याकारों ने वेदोदयजनित मैथुनाभिलाषा को मैथुन संज्ञा कहा है।[32] आवश्यक सूत्र की हारिभद्रिया वृत्ति के अनुसार वेद मोहनीय के उदय से मैथुन की अभिलाषा रूप जो जीव का परिणाम होता है उसका नाम मैथुन संज्ञा है।[33] आधुनिक मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने इसे लिबिडो (Libido-Desire of Sex) नाम दिया है।

**(ब) मैथुन संज्ञा की उत्पत्ति का कारण –** ठाणं सूत्र में मैथुन संज्ञा की उत्पत्ति के चार कारणों का उल्लेख मिलता हैं।[34]

(1) अत्यधिक मांस–शोणित का उपचय हो जाने से,

(2) मोहनीय कर्म के उदय से मोहाणुओं की सक्रियता से,

(3) मैथुन की बात सुनने से उत्पन्न मति से,

(4) मैथुन का सतत् चिंतन करते रहने से।

आवश्यक सूत्र में मैथुन संज्ञा की उत्पत्ति के कारण कुछ भेद के साथ इस प्रकार मिलते हैं[35] –

(1) शरीर पुष्ट बनाने से।

(2) वेद मोहनीय कर्मों के उदय से।

(3) स्त्री आदि को देखने से।

(4) काम भोगों का चिंतन करने से।

### 2.2.3 मैथुन सेवन का साधन

ठाणं सूत्र में मैथुन सेवन के साधन (शरीर) के अंगों को भी विभक्त किया गया है। इसके अनुसार आत्मा शरीर के एक भाग से भी और समूचे शरीर से भी मैथुन सेवन करती है।[36]

**2.3 चरंत (चरंतं)** – इसका अर्थ है विश्वव्यापी, अर्थात् समग्र संसार में व्याप्त। अब्रह्मचर्य का यह नाम इसके व्यापक स्वरूप को प्रदर्शित करता है। इस अब्रह्मचर्य की कामना से देव, मानव, असुर व पशु कोई भी मुक्त नहीं होता।

यहां तक कि जीवों में सबसे हीन संज्ञा वाले एकेन्द्रिय जीव भी इससे मुक्त नहीं हैं। प्रश्नव्याकरण सूत्र के व्याख्याकार ने एक सुंदर श्लोक से इसको स्पष्ट किया है –

**हरि हर हिरण्यगर्भ प्रमुखे भुवने न कोऽप्यसौ।**
**कुसमविशिखस्य विशिखान् अस्खलयद् यो जिनादन्य।।**[37]

**2.4 संसर्गी (संसगी संसग्गि)**– यह नाम इसकी उत्पत्ति के कारणों से संबंधित है। संसर्गी का अर्थ है स्त्री और पुरुष (आदि) के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला।

**2.5 सेवनाधिकार (सेवणाहिगारो)**– इसका अर्थ है यह एक ऐसा पाप है जो हिंसा, चोरी आदि अन्यान्य पापों का प्रेरक है।

**2.6 संकल्पी (संकप्पो)** – यह नाम भी इसकी उत्पत्ति के कारणों से संबंधित है। इसका अर्थ है मानसिक संकल्प विकल्प से उत्पन्न होने वाला।

**2.7 बाधनापदानाम् (बाहणा पयाणं )** – यह नाम अब्रह्मचर्य से होने वाली हानि को दर्शाता है। प्रस्तुत नाम के दो अर्थ हैं –

(1) संयम के स्थानों अर्थात् संयम पद पर स्थित लोगों की बाधा (पीड़ा) का कारण।

(2) बाधना प्रजानाम् – अर्थात् सर्व साधारण को पीड़ित दुखी करने वाला। यह संयम में विघ्न उत्पन्न कर स्व–पर उभय पक्षों के लिए पीड़ा का कारण बनता है।

**2.8 दर्प** – अब्रह्मचर्य की उत्पत्ति के कारणों की समीक्षा करते हुए शास्त्रकार ने स्पष्ट किया है कि इसका जन्म दर्प से होता है। दर्प का अर्थ है शरीर व इंद्रियों का अधिक–अधिक बलवान होना। शरीर व इंद्रियों की अधिक पुष्टि से काम वासना को उत्पन्न होने का अवसर मिलता है।

**2.9 मोह–मूढ़ता (मोहो)** – यह नाम अब्रह्मचर्य के दुष्परिणाम को दर्शाता है। इसका अर्थ है काम के वशीभूत हुआ प्राणी मूढ़ बन जाता है। इसके कारण हित–अहित, कर्तव्य–अकर्तव्य या श्रेयस–अश्रेयस का विवेक नष्ट हो जाता है। इसका दूसरा अर्थ मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाला है।

**2.10 मन: संक्षोभ (माणसंखोभो–संखेवो)** – मानसिक क्षोभ से उत्पन्न होने वाला या मन में क्षोभ–उद्वेग उत्पन्न करने वाला। इससे मानसिक विकृतियां बढ़कर मन की चंचलता बढ़ जाती है।

**2.11 अनिग्रह (अणिग्गहो)** – यह नाम भी इसके कारण एवं परिणाम का द्योतक है। अर्थात् मनोनिग्रह न करने से उत्पन्न होने वाला तथा विषयों में प्रवृत्त होते हुए मन और इंद्रियों का निग्रह न करना।

**2.12 विग्रह (वुग्गहो)** – इसका अर्थ है – लड़ाई, झगड़ा, क्लेश उत्पन्न करने वाला। प्राचीन काल से ही कामवासना के कारण अनेक युद्ध, अपहरण आदि हुए हैं। इसका दूसरा अर्थ विपरीत अभिनिवेश मिथ्या आग्रह से उत्पन्न होने वाला भी है।

**2.13 विघात (विधाओं)** – अर्थात् गुणों का विघातक। नीतिकारों ने भी कहा है कि मनुष्य में ज्ञान, विनय, आचार आदि गुण तभी तक विद्यमान रहते हैं जब तक वह अब्रह्मचर्य में नहीं फंसता।

**2.14 विभंग (विभंगो)** – संयम आदि सद्गुणों को भंग करने वाला।

**2.15 विभ्रम (विब्भमो)** – भ्रांति पैदा करने वाला अथवा विभ्रम–काम–विकारों का आश्रय।

**2.16 अधर्म (अहम्मो)** – पाप का कारण।

**2.17 अशीलता (असीलया)** – शील का घातक, सदाचार का विरोधी।

**2.18 ग्राम धर्म तप्ति (गामधम्मतित्ति)** – इन्द्रिय विषयों, शब्दादि काम भोगों की गवेषणा का कारण।

**2.19 रतिक्रीड़ा (रई)** – सम्भोग करना।

**2.20 रागचिंता** – नर–नारी के शृंगार, हाव–भाव, विलास आदि के चिंतन से उत्पन्न होने वाला।

**2.21 कामभोगमार (कामभोगमारो)**– काम भोगों में होने वाली, अत्यंत आसक्ति से होने वाली मृत्यु का कारण। अथवा कामभोगों का साथी मार अर्थात् कामदेव।

**2.22 वैर (वेरं)**– विरोध का हेतु।

**2.23 रहस्यम (रहस्सं)**– एकांत में किया जाने वाला।

**2.24 गुह्य (गुज्झं)** – छिपाने योग्य कर्म।

**2.25 बहुमान (बहुमाणो)**– बहुत से लोगों द्वारा मान्य या इष्ट अथवा संसारी जीवों द्वारा बहुत अधिक मान्यता प्राप्त।

**2.26 ब्रह्मचर्यविघ्न (बंभचेरविग्घो)** – ब्रह्मचर्य पालन में विघ्नकारी।

**2.27 व्यापत्ति (वाबत्ती)** – आत्मा के स्वाभाविक गुणों का विनाशक।

**2.28 विराधना (विराहणा)** – चारित्र की विराधना, नाश करने वाला। इसके कारण सम्यक् चारित्र उत्पन्न ही नहीं होता है। उत्पन्न चारित्र भी इसके कारण नष्ट हो जाता है।

**2.29 प्रसंग (पसंगो)** – आसक्ति का कारण।

**2.30 कामगुण (कामगुणो)** – इसका सामान्य अर्थ है इंद्रियों के विषय तथा काम को उद्दीप्त करने वाले साधन शब्द आदि। स्थानांग वृत्ति में इसके दो अर्थ हैं –

(1) मैथुन इच्छा उत्पन्न करने वाले पुद्गल

(2) इच्छा उत्पन्न करने वाले पुद्गल।[38]

समवायांग सूत्र के वृत्तिकार ने 'काम' का अर्थ – अभिलाषा और गुण का अर्थ – शब्द आदि पुद्गल किया है। उन्होंने वैकल्पिक रूप में कामवासना को उत्तेजित करने वाले शब्द आदि को 'काम गुण' माना गया है।[39]

**काम गुण के प्रकार** – ठाणं सूत्र में काम गुण पांच प्रकार के बताए हैं – (1) शब्द (2) रूप (3 )गंध (4) रस (5) स्पर्श।[40] प्रश्नव्याकरण सूत्र में वर्णित उपरोक्त तीस नामों के अतिरिक्त अन्यान्य आगम ग्रंथों एवं व्याख्या साहित्य में भी अब्रह्मचर्य का विवेचन भिन्न–भिन्न दृष्टियों से तथा विभिन्न नामों के साथ किया गया है। जैसे–

**2.31 विषयासक्ति (अध्युपपादन)** – ठाणं सूत्र में इसके तीन प्रकारों का वर्णन हैं – (1) ज्ञानपूर्वक (2) अज्ञानपूर्वक (3) चिकित्सापूर्वक [41]

**2.32 बहिद्ध** – अब्रह्मचर्य के लिए बहिद्ध शब्द भी मिलता है। सूत्रकृतांग सूत्र के चूर्णिकार ने इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है – **धर्माद् बहिर्भवतीति बहिद्धं।** अर्थात् जो धर्म से बहिर्भूत है वह बहिद्ध – मैथुन (अब्रह्मचर्य) है।[42] स्थानांग टीका में भी मैथुन (अब्रह्मचर्य) के लिए ''बहिद्धा'' शब्द का प्रयोग हुआ है।[43]

**2.33 पर्यापादन** – ठाणं सूत्र में विषय सेवन रूपी अब्रह्मचर्य के लिए ''पर्यापादन'' शब्द का प्रयोग भी किया है तथा इसके तीन प्रकार बताए गए हैं– (1) ज्ञानपूर्वक (2) अज्ञानपूर्वक (3) चिकित्सापूर्वक [44]

**2.34 संवास** – अर्थात् संभोग– ठाणं सूत्र के अनुसार यह चार प्रकार का होता हैं–

(1) कुछ देव देवी के साथ संभोग करते हैं।
(2) कुछ देव नारी तिर्यञ्च स्त्री के साथ संभोग करते हैं।
(3) कुछ मनुष्य या तिर्यञ्च देवी के साथ संभोग करते हैं।
(4) कुछ मनुष्य या तिर्यञ्च स्त्री के साथ संभोग करते हैं। [45]

**2.35 परिचारणा** – ठाणं सूत्र में मैथुन के आसेवन के लिए ''परिचारणा'' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। इसके पांच प्रकार हैं –

(1) **काय परिचारणा** – स्त्री और पुरुष के काय से होने वाले मैथुन का आसेवन।
(2) **स्पर्श परिचारणा** – स्त्री के स्पर्श से होने वाले मैथुन का आसेवन।
(3) **रूप परिचारणा** – स्त्री के रूप को देखकर होने वाला मैथुन का आसेवन।
(4) **शब्द परिचारणा** – स्त्री के शब्द सुनकर होने वाला मैथुन का आसेवन।
(5) **मन: परिचारणा** – स्त्री के प्रति मानसिक संकल्प से होने वाला मैथुन का आसेवन। [46]

इसका तात्पर्य है कि कायपरिचारणा की भांति स्त्री का स्पर्श करने, रूप देखने, शब्द सुनने और मानसिक संकल्प करने से देवों की मैथुन वृत्ति तृप्त हो जाती है।

वृत्तिकार ने इन सबको देवताओं से संबंधित माना है। तत्त्वार्थ सूत्र में भी यही प्रतिपादित है, बारहवें देवलोक तक के देवों में मैथुनेच्छा होती है। उसके ऊपर के देवों में वह

नहीं होती है। देवियों का अस्तित्व केवल दूसरे देवलोक तक ही है।

सौधर्म और ईशान देवलोक में – कायपरिचारणा, सनत्कुमार और माहेंद्र देवलोक में – स्पर्श परिचारणा, ब्रह्म और लांत्तक देवलोक में – रूप परिचारणा, शुक्र और सहस्रार देवलोक में – शब्द परिचारणा, शेष चार में – मन परिचारणा का अस्तित्व रहता है। इसके ऊपर के देवलोकों में किसी भी प्रकार की परिचारणा नहीं होती। मनुष्य और तिर्यञ्चों में केवल कायपरिचारणा ही होती है।[47]

### 2.36 काम भोग

यह शब्द अब्रह्मचर्य को एक विस्तृत अर्थ देता है। यहां ब्रह्मचर्य मात्र मैथुन क्रिया ही न रहकर सभी इंद्रिय विषयों को अपने में समाहित कर लेता है। जैन आगमों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

(i) **परिभाषा** – काम और भोग ये दो अलग–अलग शब्द हैं। विभिन्न ग्रंथकारों ने इन्हें विभिन्न दृष्टियों से परिभाषित किया हैं। जैसे भगवती सूत्र में शब्द और रूप को काम तथा गन्ध, रस, स्पर्श को भोग कहा हैं।[48] उत्तराध्ययन सूत्र के चूर्णिकार ने इनके दो–दो अर्थ किए हैं –

**काम** – (1) जिसकी कामना की जाती है।

(2) काम वासना।

**भोग** – (1) जिनका उपभोग किया जाता है।

(2) सभी इंद्रियों के विषय।[49]

वृहद् वृत्तिकार ने उपरोक्त के अतिरिक्त काम भोग का अर्थ विस्तार भी किया है।

(1) शब्द और रूप है काम तथा स्पर्श, रस और गंध है भोग।

(2) स्त्रियों का संसर्ग या आसक्ति है काम तथा शरीर के परिकर्म के साधन– धूपन, विलेपन आदि भोग हैं।[50]

दसवैकालिक सूत्र में इंद्रियों के विषय – स्पर्श, गंध, रस और शब्द का आसेवन भोग कहलाता है।[51]

(ii) **काम के प्रकार** – आचारांग भाष्य में काम के दो प्रकार बताए गए हैं –

(1) **इच्छा काम** – स्वर्ण आदि पदार्थों को प्राप्त करने की कामना।

(2) **मदन काम** – शब्द आदि इंद्रिय विषयों की कामना।[52]

उत्तराध्ययन के व्याख्याकार ने भी अर्थ भेद के साथ ये ही दो भेद किए हैं–

(1) **इच्छा काम** – अभिलाषा रूपी काम को 'इच्छा काम' कहा गया

है।

(2) **मदन काम** – वेदोपयोग काम (स्त्री पुरुष की परस्पर विकार भावना) को 'मदन काम' कहते हैं।[53]

**काम भोग के चार प्रकार** – काम भोगों को गुणात्मकता की दृष्टि से ठाणं सूत्र में चार भेद किए गए हैं – (1) श्रृंगार (2) करुण (3) वीभत्स (4) रौद्र।

देवताओं का काम श्रृंगार रस प्रधान होता है। मनुष्यों का काम करुणरस प्रधान होता है।

तिर्यञ्चों का काम वीभत्स रस प्रधान होता है। नैरयिकों का काम रौद्र रस प्रधान होता है।[54]

(iii) **काम भोग का पूर्वापर्व संबंध** – पहले काम होता है, फिर भोग होता है। इंद्रियों के विषय के आसेवन को भोग कहते हैं। यह काम का उत्तरवर्ती है।[55]

(iv) **काम की तरतमता** – काम वासना की मात्रा सभी में समान नहीं होती। इसकी मात्रा में तरतमता पाई जाती है। इसके आधार पर आचारांग भाष्यकार ने व्यक्तियों को तीन श्रेणी में बांटा हैं।

(1) अल्प इच्छा वाले ।

(2) महान इच्छा वाले ।

(3) इच्छा रहित ।[56]

ज्ञानार्णव में काम का कारण प्राणियों के संकल्प को मानते हुए इसकी तरतमता के अनुसार इसके तीन प्रकार बताए हैं – तीव्र, मध्यम और मन्द।[57]

(v) **काम के वेग** – धर्मामृत अणगार[58] तथा भगवती आराधना[59] में इच्छित स्त्री के न मिलने पर मनुष्य की दस अवस्थाओं का चित्रण हैं –

1. कामी पुरुष काम के प्रथम वेग में शोक करता है।
2. दूसरे वेग में उसे देखने की इच्छा करता है।
3. तीसरे वेग में लम्बी–लम्बी सांसें भरता है।
4. चौथे वेग में उसे ज्वर चढ़ जाता है।
5. पांचवें वेग में शरीर में दाह उत्पन्न हो जाती है।
6. छठे वेग में खाना–पीना अच्छा नहीं लगता।
7. सातवें वेग में मूर्च्छित हो जाता है।
8. आठवें वेग में उन्मत्त (पागल) हो जाता है।

9. नौवें वेग में उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता।

10. दसवें वेग में उसकी मृत्यु हो जाती है।

## 2.37 कुशील

अब्रह्मचर्य के लिए कुशील शब्द का प्रयोग भी अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। सूत्रकृतांग सूत्र के चूर्णिकार और वृत्तिकार ने कुशीलों का दो प्रकार से वर्गीकरण किया है –

पांच प्रकार के कुशील – (1) पार्श्वस्थ (2) अवसन्न (3) कुशील (4) संसक्त (5) यथाछंद। अथवा नौ प्रकार के कुशील 5 उपरोक्त (6) कथिक (7) प्राश्निक (8) संप्रसारक (9) मामक।[60]

**2.38 ग्राम्य क्रीड़ा** – अब्रह्मचर्य के लिए ग्राम्य क्रीड़ा अर्थात् काम क्रीड़ा शब्द का भी प्रयोग मिलता है। सूत्रकृतांग सूत्र में इसके अनेक प्रकार हैं– हास्य, कंदर्प, हस्त स्पर्श, आलिंगन आदि।[61]

**2.39 'लिंग' एवं 'वेद'** – 'लिंग' एवं 'वेद' जैनागमों के पारिभाषिक शब्द हैं। लिंग का अर्थ है 'आकार' विशेष या 'चिन्ह'। ये तीन प्रकार के होते हैं – स्त्री लिंग, पुरुष लिंग व नपुंसक लिंग। लिंग का दूसरा नाम वेद (द्रव्य) भी है।[62] वेद का अभिप्राय है वासना।

**वेद के भेद–प्रभेद** – समवायांग सूत्र में वेद के तीन प्रकार हैं – स्त्री वेद, पुरुष वेद व नपुंसक वेद।[63]

ये तीनों वेद द्रव्य और भाव रूप से दो–दो प्रकार के हैं।

1. जिस चिन्ह से पुरुष की पहचान होती है, वह द्रव्य पुरुष वेद है और स्त्री के संसर्ग सुख की अभिलाषा भाव पुरुष वेद है।
2. स्त्री की पहचान का साधन द्रव्य स्त्री वेद है और पुरुष के संसर्ग सुख की अभिलाषा भाव स्त्री वेद है।
3. जिसमें कुछ स्त्री के चिन्ह और कुछ पुरुष के चिन्ह हो वह द्रव्य नपुंसक वेद और स्त्री–पुरुष दोनों के संसर्ग सुख की अभिलाषा भाव नपुंसक वेद है।

द्रव्य वेद का अर्थ ऊपर के चिन्ह से है और भाव वेद का मतलब अभिलाषा विशेष से है। द्रव्य वेद पौद्गलिक आकृति विशेष है जो नाम कर्म के उदय के कारण होता है। भाव वेद एक प्रकार का मनोविकार है, जो मोहनीय कर्म के उदय से होता है। अत: पतन का कारण लिंग (द्रव्य वेद) नहीं भाव वेद (वासना) है। द्रव्य वेद और भाव वेद के बीच साध्य–साधन पौष्य–पोषक का संबंध हैं।

**त्रिवेद का स्वभाव**

1. **स्त्री वेद** – स्त्री में कोमल भाव मुख्य है जिसे कठोर तत्व की अपेक्षा रहती है।

जीवाजीवाभिगम सूत्र में इसके स्वभाव का चित्रण करते हुए कहा गया है कि स्त्री वेद फुंफुक (करिष, छाणे कण्डे की) अग्नि के समान होता है। जैसे कण्डे की अग्नि धीरे–धीरे जागृत होती है और देर तक बनी रहती है उसी प्रकार स्त्री वेद का विकार है।[64]

2. **पुरुष वेद** – पुरुष में कठोर भाव मुख्य है जिसे कोमल तत्त्व की अपेक्षा रहती है। जीवाजीवाभिगम के अनुसार यह वन की अग्नि (घास) के समान है जो शीघ्र ही प्रज्ज्वलित हो जाती है। प्रारंभ में तीव्र दाह वाली होती है किन्तु शीघ्र ही शांत हो जाती है। [65]

3. **नपुंसक वेद** – नपुंसक वेद में दोनों भावों का मिश्रण होने से दोनों तत्त्वों की अपेक्षा रहती है। जीवाजीवाभिगम के अनुसार नपुंसक वेद की कामाग्नि महानगर में फैली हुई आग की ज्वालाओं के समान होती हैं।[66] कहीं–कहीं इसे ईंट या चूने के भट्टे की अग्नि के समान बताया जाता है। यह अति तीव्र और चिरकाल तक धधकती रहती है।

### 3.0 अब्रह्मचर्य : कारक तत्त्व

''कारण के बिना कार्य नहीं होता'' अर्थात् प्रत्येक कार्य के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। किसी समस्या के निराकरण के लिए प्रथम अनिवार्यता यह है कि उस समस्या के कारणों को खोजा जाए। समस्या के मूल को उन्मूलित किए बिना मात्र ऊपरी प्रयास करने से स्थाई हल नहीं हो पाता। अब्रह्मचर्य जनित समस्याओं के समाधान के लिए यह खोजना आवश्यक है कि वे कौन से कारण हैं जो व्यक्ति की कामुकता को उद्दीप्त करते हैं।

जैन आगमों में अब्रह्मचर्य की समस्या पर विस्तृत विवेचन के साथ–साथ इसके कारक तत्त्वों को खोजने का भी प्रयास हुआ है। आचारांग के भाष्यकार ने काम वासना की उत्पत्ति के कारणों को मूलत: दो भागों में विभक्त किया हैं –

(1) सनिमित्तिक (2) अनिमित्तिक

(1) **सनिमित्तिक** – जिस काम वासना का उदय बाह्य निमित्तों के कारण होता है वह सनिमित्तिक कहलाती है।

(2) **अनिमित्तिक** – जिस काम वासना का उदय आंतरिक कारणों से होता है वह अनिमित्तिक कहलाती है।[67] जैन आगमों में अनेक स्थलों पर अब्रह्मचर्य के कारणों पर जो प्रकाश डाला गया है। उसे इस प्रकार देखा जा सकता है –

### 3.1 कुशील की संगत

व्यक्ति के उत्थान और पतन में उसकी संगति की बहुत बड़ी भूमिका होती है। ज्ञाताधर्मकथा की वृत्ति में श्री अभयदेव सूरि ने कुशील व्यक्तियों की संगत को पतन का कारण बताते हुए कहा है –

**पुण्णोवि पइदिणं जह, हायंतो सव्वहा ससी नस्से।**

**तह पुण्णचरित्तो वि हु, कुसीलसंसग्गिमाईहिं।।**

अर्थात् जैसे प्रतिपूर्ण चंद्रमा भी प्रतिदिन हीन होते–होते सर्वथा नष्ट हो जाता है, वैसे ही चरित्र से प्रतिपूर्ण मुनि भी कुशील–संसर्ग आदि कारणों से नष्ट हो जाता है।[68]

भगवती आराधना में कहा गया है कि तरुणों की संगति से वृद्ध पुरुष भी मोह युक्त हो जाता है। सूत्रकार के अनुसार जो तरुणों की संगति में रहता है उसकी इंद्रियां चंचल होती हैं, मन चंचल होता है और पूरा विश्वासी होता है। फलत: शीघ्र ही स्वच्छंद होकर स्त्री विषयक दोषों का भागी होता है।[69]

**3.2 शब्द श्रवण** – आचारांग एवं ठाणं दोनों सूत्रों में मैथुन से संबंधित बातों को सुनने को वासना की उद्दीप्ति का कारण माना है।[70] भगवती आराधना के अनुसार जैसे मद्य पी कर, मद्यपान के विषय में सुनकर, मद्यपान की अभिलाषा उत्पन्न होती है। वैसे ही मोही मनुष्य विषयों के बारे में सुनकर विषयों की अभिलाषा करता है।[71]

**3.3 रूप दर्शन** – आचारांग सूत्र में काम की उत्पत्ति का कारण रूप दर्शन को भी माना गया है।[72] सौंदर्य को देखकर आसक्त हो जाने का वर्णन कथा साहित्य में भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। ज्ञाताधर्मकथा में कुमारी मल्लि को पाने के लिए आक्रमण करने वाले छह राजाओं में एक मल्लि के चित्र को देखकर उस पर मोहित हो गया था।[73]

भगवती आराधना में काम सेवन की अभिलाषा की उत्पत्ति का एक कारण स्त्री पुरुष के काम सेवन को प्रत्यक्ष देखना भी माना गया है।[74]

**3.4 आहार** – कामवासना की उत्पत्ति का आहार के साथ गहरा संबंध है। आचारांग सूत्र में आहार को भी इसका एक कारण स्वीकार किया गया है।[75]

**3.5 शरीर** – आचारांग सूत्र में शरीर को काम–वासना का एक कारण माना गया है।[76] ठाणं सूत्र में इसे और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि अत्यधिक मांस–शोणित के उपचय हो जाने से मैथुन संज्ञा (काम वासना) की उत्पत्ति होती है।[77] आधुनिक शरीर विज्ञान भी उम्र के विकास के साथ होने वाले रासायनिक परिवर्तन को कामोत्पत्ति का कारण मानता है।

**3.6 पूर्व भुक्त भोगों की स्मृति** – आचारांग सूत्र में पूर्व में भुक्त भोगों की स्मृति को काम वासना की उत्पत्ति का कारण माना गया है।[78]

**3.7 काम अध्यवसाय** – ठाणं सूत्र में मैथुन के सतत चिंतन को काम–वासना का हेतु माना है।[79] दसवैकालिक सूत्र में भी काम की उत्पत्ति संकल्प (काम अध्यवसाय) के द्वारा बताई गई है। संकल्प और काम का संबंध बताते हुए चूर्णिकार अगस्त्यसिंह ने इस श्लोक को उद्धृत किया है।[80]

**काम! जानामि ते रूपं संकल्पात् किल जायते।**
**न त्वां संकल्पयिष्यामि ततो मे न भविष्यसि।।**

काम! मैं तुझे जानता हूं। तू संकल्प से पैदा होता है। मैं तेरा संकल्प ही नहीं करूंगा। तू मेरे मन में उत्पन्न ही नहीं हो सकेगा।

उत्तराध्ययन सूत्र की टिप्पण में आचार्य महाप्रज्ञ ने इस संदर्भ में गीता का एक श्लोक उद्धृत किया है। जिसमें काम की उत्पत्ति का बीज इंद्रिय विषयों का निरंतर चिंतन करना कहा गया है। [81]

**ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।**
**संगात् जायते कामः कामात् क्रोधभिजायते।।**
**क्रोधात् भवति संमोहः, संमोहात् स्मृति विभ्रमः।**
**स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।** गीता 2/63-64

विषयों के चिंतन-ध्यान से उनके प्रति आसक्ति बढ़ जाती है। आसक्ति से कामना, कामना से क्रोध, क्रोध से मूढ़ता, मूढ़ता से विस्मृति और विस्मृति से बुद्धि का नाश होता है। बुद्धि के नष्ट होने से व्यक्ति का ही नाश होता जाता है।

**3.8 मान्यता/धारणा** – आचारांग सूत्र में काम वासना के प्रति आकर्षण का कारण 'भोग में सुख है' इस मान्यता को भी माना गया है।[82] उत्तराध्ययन में भी यह कहा गया है कि जिस व्यक्ति की काम भोग में सुख बुद्धि होती है वे अब्रह्मचर्य में ही रत रहते हैं।[83]

**3.9 कर्मों का उदय** – काम वासना को उद्दीप्त करने वाले अन्य कारण बाह्य निमित्त मात्र हैं, मूल कारण है कर्म। कर्म इसका उपादान कारण है। आचारांग सूत्र में कर्म के उदय को काम वासना का हेतु माना गया है।[84]

सूत्रकृतांग सूत्र में भी इसका समर्थन करते हुए कहा गया है कि जिनके पूर्वकृत कर्म नहीं होता वह काम-वासना का पार उसी प्रकार पा जाता है जिस प्रकार वायु, अग्नि की ज्वाला को पार कर जाती है। [85] कर्मों के विभागों को स्पष्ट करते हुए ठाणं सूत्र मोहनीय कर्म को इसका कारण मानता है।[86]

भगवती सूत्र में भी अब्रह्मचर्य का कारण मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृति चारित्रावरणीय कर्म का उदय माना गया है। सूत्रकार कहते हैं कि जिनके चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं है, वे भले ही केवल ज्ञानी से प्रेरणा प्राप्त कर लें, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते। [87] उत्तराध्ययन सूत्र में पूर्व जन्म में किए गए निदान के द्वारा बंधे निकाचित कर्मों को भी भोगासक्ति के कारण के रूप में माना है। मुनि संभूत ने हस्तिनापुर में महान ऋद्धि वाले चक्रवर्ती सनतकुमार को देखकर भोगों में आसक्त होकर अशुभ निदान (यदि मेरी तप-साधना का कोई फल हो तो मैं

चक्रवर्ती राजा बनूं ऐसा संकल्प) कर लिया। उसका उन्होंने प्रतिक्रमण (प्रायश्चित्त) नहीं किया। उसका फल यह हुआ कि वे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बने और धर्म को जानते हुए भी निकाचित कर्म के उदय के कारण काम–भोगों में मूर्च्छित ही रहे और मृत्युपरांत सर्वोत्कृष्ट नरक अप्रतिष्ठान नामक सातवीं नरक में गए।[88]

भगवती आराधना के अनुसार एकान्त में स्त्री के साथ पुरुष का और पुरुष के साथ स्त्री का होना तथा अंधकार काम सेवन की अभिलाषा का निमित्त है। [89]

**शरीर विज्ञान और काम वासना** – शरीर शास्त्र की दृष्टि से काम वासना की उत्पत्ति के कारणों की व्याख्या करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि इसके लिए अन्त:स्रावी ग्रंथियां और नाड़ी संस्थान भी काफी जिम्मेदार हैं। आप इस तथ्य की पुष्टि वैज्ञानिक आधार पर करते हैं। उनके अनुसार हमारी इंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाएं (दृश्य आदि) विद्युत आवेग के द्वारा मस्तिष्क में स्थित हाइपोथेलेमस के अमुक भाग को उत्तेजित करते हैं तथा हाइपोथेलेमस पिट्यूटरी ग्रंथि के अग्र भाग को सक्रिय करता है। तब इस ग्रंथि से गानोड़ोट्रॉफिन नामक हार्मोन निकलता है जो गोनाड्स को उत्तेजित करता है तब गोनाड्स (काम ग्रंथि) अपना लैंगिक हार्मोन एन्ड्रोजन का स्राव करती है जो रक्त के माध्यम से मस्तिष्क में पहुंच कर नाड़ी तंत्र को प्रभावित करता है। फलस्वरूप हृदय, नब्ज और श्वास की गति में वृद्धि हो जाती है। रक्तचाप बढ़ जाता है। मांस पेशियों में तनाव पैदा हो जाता है और काम भावना उद्दीप्त हो जाती है। [90] यह व्यवहारसिद्ध है कि डर, क्षोभ आदि की स्थिति में वासना के बाह्य निमित्त उत्पन्न होने पर भी काम वासना की भावना जागृत नहीं होती। इसका कारण है कि मस्तिष्क में अन्य विचारों के चलते हाइपोथेलेमस को संदेश नहीं पहुंच पाता अत: पिट्यूटरी से स्राव नहीं हो पाते हैं।

## 4.0 उपमाएं

अनियंत्रित काम भोग न केवल एक समस्या है बल्कि अनेक समस्याओं की जननी भी है। जैन आगमों में इस समस्या के निराकरण का विस्तृत मार्गदर्शन मिलता है। आध्यात्मिक मार्गदर्शन की एक विख्यात विधि है – उपमाएं। सामान्य व्यक्ति गूढ़ आध्यात्मिक सूत्रों को सहजता से नहीं समझ पाता। परंतु उपमा के माध्यम से उसे सरलता से समझ जाता है। जैन आगमों में विशेष कर उत्तराध्ययन सूत्र में काम भोगों से विरक्ति के लिए विभिन्न उपमाओं का सुंदर चित्रण किया गया है।

**4.1. सूअर** – सूअर एक तुच्छ और घृणित कोटि का जंतु माना जाता है। इसके प्रति जुगुप्सा का प्रमुख कारण है – विष्ठा भक्षण। विष्ठा के प्रति इसका इतना आकर्षण होता है कि इसके लिए चावलों की भूसी जो कि एक पौष्टिक पशु आहार है का भी वह त्याग कर देता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में दु:शील व्यक्ति को सूअर से उपमित किया गया है क्योंकि दु:शील

व्यक्ति आत्म सुख प्रदाता शील के आचरण को त्याग कर दु:शीलता की ओर आकर्षित होता है।[91] ज्ञानार्णव में भी कहा गया है कि जिस तरह विष्ठा खाने वाला सूअर अपने को सुखी मानता है, उसी तरह मूर्ख मनुष्य स्त्रियों के जघनविल के विष्ठा और मूत्र से भरे हुए चमड़े से सुख का अनुभव लेता है।[92]

**4.2. संग** – गोंद आदि चिपचिपे पदार्थ को संग (लेप) कहते हैं। जो कीट–पतंगे आदि इसकी सुगंध, स्वादादि से आकर्षित होकर इस पर मंडराते हैं, वे इसमें चिपक जाते हैं। एक बार इसमें फंस जाने के बाद जैसे–जैसे इससे निकलने का प्रयास करते हैं वैसे–वैसे और अधिक फंसते जाते हैं और अंतत: अपने प्राण खो देते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में स्त्रियों को संग (लेप) से उपमित किया गया है। जो पुरुष स्त्रियों में आसक्ति रखता है वह संग में कीट की तरह फंस जाता है।[93]

**4.3. दलदल** – कमल के फूल दलदल में उत्पन्न होते हैं। फूल के लोभ में मनुष्य या हाथी दलदल में प्रवेश कर जाते हैं, पानी में हलचल से फूल गहरे पानी और दलदल की ओर सरक जाता है। प्रविष्ट व्यक्ति और अधिक गहरे में जाता है और फंस जाता है। फिर न तो उसे फूल ही मिलता है और न वह वापस तट पर आ सकता है। उत्तराध्ययन सूत्र में स्त्रियों और काम गुण को दलदल के समान बताया गया है। इनकी आसक्ति में फंसा व्यक्ति न तो भौतिक सुख पा सकता है और न आध्यात्मिक लाभ ही।[94]

धर्मामृत अणगार में स्त्री को ऐसे कीचड़ की उपमा दी गई है जिसमें कीड़े बिलबिलाते हैं। जैसे कीचड़ में फंसकर निकलना कठिन होता है वैसे ही स्त्री के राग में फंसकर उससे निकलना कठिन होता है।[95] ज्ञानार्णव में भी नारी देह को कीचड़ कहा गया है।[96]

**4.4. बंधन** – जिस प्रकार विभिन्न पशु–पक्षियों के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरण बंधन होते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में स्त्री को उसी प्रकार मनुष्य के लिए बंधन कहा गया है। वह एक प्रकार का बंधन है यह बताने के लिए टीकाकार ने दो प्राचीन श्लोक उद्धृत किए हैं –

**वारी गयाणं जालं तिमिण हरिणाण वग्गुरा चेव।**
**पासा य सउणयाणं, णराण बंधत्थ मित्थीओ।।**[97]

अर्थात् हाथी के लिए वारि शृंखला, मछलियों के लिए जाल, हरिणों के लिए वाग्गुरा और पक्षियों के लिए पाश जैसे बंधन हैं, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए स्त्रियां बंधन हैं।

**उन्नयमाणा अक्खलिय-परक्कमा पंडिया कई जे य।**
**महिलाहि अंगुलीए, नच्चा विज्जंति ते वे नरा।।**[98]

अर्थात् उन्नत और अस्खलित पराक्रम वाले पण्डित और कवि भी महिलाओं की अंगुलियों के संकेत पर नाचते हैं।

**4.5. गाड़ी की धुरी** – उत्तराध्ययन सूत्र में इस उपमा का प्रयोग दो जगह किया गया है। गाड़ी की गति के लिए उसकी धुरी मुख्य उपकरण है। इसके टूट जाने पर गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। जो गाड़ीवान समतल राजमार्ग को जानता हुआ भी उसे छोड़कर विषम मार्ग पर चलता है उसे गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करना पड़ता है। इसी प्रकार धर्म को छोड़कर अधर्म को स्वीकार करने वाले अज्ञानी पुरुष को मृत्यु के आने पर शोक करना पड़ता है। [99]

दूसरे, जिस प्रकार गाड़ी की धुरी को भार वहन की दृष्टि से चुपड़ा जाता है अन्य किसी कारण से नहीं। उसी प्रकार ब्रह्मचारी को गुण भार को वहन करने की दृष्टि से आहार करना चाहिए। रसलोलुपता आदि अन्य दृष्टियों से नहीं।[100]

**4.6. जुआरी** – उत्तराध्ययन सूत्र में दुराचारी को जुआरी से उपमित करते हुए कहा गया है कि जो जुआरी प्रथम ही दांव में अपनी सारी सम्पत्ति हार जाता है उसके लिए शोक करने के अतिरिक्त कुछ नहीं बचता। उसी प्रकार दुराचरण करने वाला अज्ञानी पुरुष परलोक के भय से शोक करने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता।[101]

**4.7. शिशुनाग** – शिशुनाग अलस या केंचुए को कहते हैं। यह मिट्टी खाता है। उसका शरीर गीला होता है। यह निरंतर मिट्टी के ढेरों में ही घूमता रहता है। इसलिए इसके शरीर पर मिट्टी चिपक जाती है। सूर्य की संतप्त किरणों से गीलापन सूख जाता है, तब वह गर्म मिट्टी से झुलस कर मर जाता है। इस प्रकार दोनों तरफ से ग्रहीत मिट्टी उसके विनाश का कारण बनती है।

उत्तराध्ययन सूत्र में कामी पुरुष को शिशुनाग की उपमा देते हुए कहा गया है कि आसक्ति से ग्रस्त व्यक्ति भीतर के अशुद्ध भावों से तथा बाहर की असत् प्रवृत्ति से – दोनों ओर से कर्म का बंधन करता है। भोग के संबंध में उसकी आस्था भी असत् हो जाती है तथा आचरण भी असत् हो जाता है। इससे वह दोनों ओर से कर्म संचय करता है। वह इस लोक में भी जानलेवा रोग आदि कष्टों से ग्रस्त होता है और मृत्यु के बाद भी दुर्गति में जाता है।[102]

**4.8. मक्खी** – उत्तराध्ययन व भगवती आराधना में भोगों की आसक्ति में फंसे व्यक्ति को श्लेष्म में फंसी मक्खी की उपाधि दी गई है।[103] जिस प्रकार श्लेष्म में आसक्त होकर मक्खी उसमें प्रवेश करती है और उसी में फंस जाती है। उसी प्रकार, जो व्यक्ति आत्मा को दूषित करने वाले आसक्ति जनक भोग में फंस जाता है वह उससे निकलने में असमर्थ होता है।

**4.9. दुस्तर समुद्र** – उत्तराध्ययन सूत्र में काम–भोगजन्य आसक्ति को दुस्तर समुद्र के समान कहा गया है। जिस प्रकार अथाह समुद्र में सामान्य व्यक्ति डूब जाता है पर उसका पार नहीं पा सकता लेकिन पुरुषार्थी वणिक् बड़े–बड़े समुद्र को पार कर लेते हैं। उसी प्रकार काम भोग अधीर पुरुषों द्वारा सूत्यज नहीं है। सुव्रती ही उन्हें छोड़ सकता है। [104]

**4.10. राक्षसी** – राक्षसी एक प्रकार की व्यंतर देवी होती है। वह पहले प्रलोभन देकर व्यक्ति

को अपने जाल में फंसा लेती है, फिर उसका मनमाना उपयोग करती है। उत्तराध्ययन सूत्र में स्त्री को राक्षसी से उपमित किया गया है।[105]

उत्तराध्ययन की वृहद् वृत्ति में वृत्तिकार कहते हैं कि जिस प्रकार राक्षसी समस्त रक्त को पी जाती है, वैसे ही स्त्रियां भी मनुष्य के ज्ञान आदि गुणों तथा जीवन और धन का सर्वनाश कर देती हैं। वृत्तिकार कहते हैं –

**वातेद्धूतो दहति हुतभुग्देहमेकं नाराणां,**
**मत्तो नाग: कुपित भुजगश्चैकदेहं तथैव।**
**ज्ञानं शीलं विनयविभवौदार्य विज्ञानदेहान्;**
**सर्वानर्थान् दहति वनिताऽऽमुष्मिकानैहिकांश्च।।** [106]

इसी टिप्पण में इस तथ्य को पुष्ट करने वाला एक श्लोक उद्धृत किया है –

**दर्शनात् हरते चित्तं, स्पर्शनात् हरते बलम।**
**मैथुनात् हरते वित्तं, नारी प्रत्यक्षराक्षसी।।**

इस उपमा के भाव को स्पष्ट करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं – 'यहां राक्षसी शब्द लाक्षणिक है। अभिधावाचक नहीं है। यह कामासक्ति या वासना का सूचक है। पुरुष के लिए स्त्री वासना के उद्दीपन का निमित्त बनती है, इस दृष्टि से उसे राक्षसी कहा गया है। स्त्री के लिए पुरुष वासना के उद्दीपन का निमित्त बनता है, इस दृष्टि से उसे राक्षस कहा जा सकता है।'[107]

**4.11. शल्य** – शल्य के दो अर्थ हैं – कांटा और घाव (अन्तर्व्रण) शरीर में छोटा सा भी शल्य हो जाए तो वह व्यक्ति को बेचैन कर डालता है। उत्तराध्ययन सूत्र में काम को शल्य कहा गया है क्योंकि काम की चुभन भी निरन्तर बनी रहती है।[108]

ज्ञानार्णव कहता है कि प्राणी कामरूप कांटे से पीड़ित होकर इतना अस्थिर हो जाता है कि आसन, शयन, गमन, कुटुम्बीजन, भोजनादि किसी भी कार्य में उसका मन नहीं लगता। [109]

**4.12. विष** – जिसमें मारक शक्ति होती है उसे विष कहते हैं। इसके सेवन से व्यक्ति अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। जैन आगमों में अनेक स्थलों पर काम भोगों के लिए विष की उपमा का प्रयोग किया गया है। आचारांग सूत्र में काम भोगों को विष से उपमित किया गया है।[110] सूत्रकृतांग में यह उपमा दो रूपों में मिलती हैं –

(अ) **विष मिश्रित खीर** – विष मिश्रित खीर देखने में प्रिय लगती है किन्तु खाने के बाद मनुष्य को मार डालती है। उसी प्रकार काम भोग भोगकाल में प्रिय लग सकते हैं किन्तु इनका विपाक अच्छा नहीं होता। [111]

(ब) **विष बुझा कांटा**– विष से लिप्त कांटा शरीर के किसी भी अवयव से लग जाता है तब वह अनर्थकारी होता है। सूत्रकृतांग सूत्र में स्त्रियों (विषयवासना) को विष बुझे कांटे

के समान मान कर उसका वर्जन करने की बात कही गई है।[112] वृत्तिकार ने स्त्रियों को विष से भी अधिक खतरनाक बताते हुए ये श्लोक उद्धत किए हैं –

**विषस्य विषयाणां च, दूरमत्यन्तमन्तरम्।**
**अपभुक्तं विषं हन्ति विषया: स्मरणादपि।।**

विष और विषय में बहुत बड़ा अंतर है। विष तो खाने पर ही मारता है, किन्तु विषय स्मरण मात्र से मार डालते हैं।[113]

**वारि (वरं) विस खइयं न विसयसुहु इक्कसि विसिण मरंति।**
**विसयामिस पुण घारिया नर णरएहिं पड़ंति।।**

विषय सुख को भोगने के बदले विष खाना अच्छा है। विष केवल एक बार ही मारता है। विषयों से मारे जाने वाले पुरुष नरकों में पड़ते हैं।[114] उत्तराध्ययन सूत्र में भी काम भोगों के लिए विष की उपमा का प्रयोग किया गया है।[115]

सानुवाद व्यवहार भाष्य में विष की इस उपमा को और भी विस्तार दिया गया है। सूत्रकार के अनुसार पुरुष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरुष भाव विष है। घ्राणेंद्रिय, रसनेंद्रिय तथा स्पर्श इंद्रिय से गृहीत द्रव्य, प्राणी का एक बार अतिपात करता है और नहीं भी करता है। उससे प्राणी मरता भी है और नहीं मरता। भाव विष सर्वविषयानुसारी (पांचों इंद्रिय विषयों का संप्राषक) दुर्जय तथा अनेक बार अतिपात करता है, अनेक बार मारता है।[116] हरिभद्र सूरी ने भी मैथुन को विष मिश्रित अन्न की तरह त्याज्य बताया है।[117]

**4.13. तालपुट विष** – उत्तराध्ययन सूत्र में भोगों के लिए इस उपमा का प्रयोग किया गया है। यह तीव्रतम विष होता है। जीभ पर रखते ही ताली बजाने जितने अल्प समय में ही व्यक्ति को मार डालता है। इसे सद्योघाती विष कहते हैं। दसवैकालिक सूत्र में विभूषा, स्त्री संसर्ग और प्रणीत रस भोजन को ब्रह्मचारी के लिए तालपुट विष के समान बताया है।[118] उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचर्य की दस अगुप्तियों को तालपुट विष कहा गया है।[119] वहां विषय भोगों के लिए भी तालपुट विष का प्रयोग किया है।[120]

**4.14. आशीविष सर्प** – आशीविष सर्प वे होते हैं जिनकी दाढ़ में विष होता है, वे मणिधारी सर्प होते हैं। उनकी दीप्तमणि से विभूषित फण लोगों को सुंदर लगते हैं। लोग उन फणों को स्पर्श करने की इच्छा का संवरण नहीं कर पाते। ज्यों ही वे उन सर्पों का स्पर्श करते हैं, तत्काल उनके द्वारा डसे जाने पर मारे जाते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में काम की उपमा आशीविष सर्प से करते हुए कहा गया है कि काम भी लुभावना होता है और प्राणी इसका सहज शिकार हो जाता है।[121]

इसी सूत्र में प्रकारान्तर से सर्प की उपमा काम भोग में आसक्त व्यक्ति से की गई है।

सूत्रकार कहते हैं कि जिस प्रकार नागदमनी आदि औषधियों की गंध में गृध बिल से निकलता हुआ रागातुर सर्प अपने प्राण खो देता है, उसी प्रकार जो मनोज्ञ गंध में तीव्र आसक्ति रखता है वह अकाल में ही विनष्ट हो जाता है।[122]

धर्मामृत अनगार में काम को एक अपूर्व सर्प कहा गया है। इसके अनुसार यह संकल्परूपी अण्डे से पैदा होता है। इसके राग, द्वेष रूपी दो जिह्वाएं होती हैं। अपनी प्रेमिका विषयक चिंता ही उसका रोष है। रूपादि विषय ही उसके छिद्र हैं। जैसे सांप छिद्र पाकर उसमें घुस जाता है उसी तरह स्त्री का सौंदर्य आदि देखकर काम का प्रवेश होता है। वीर्य का उद्रेक उसकी बड़ी दाढ़ है जिससे वह काटता है। रति उसका मुख है। वह लज्जारूपी केंचुली को छोड़ता है। प्रतिक्षण बढ़ते हुए दस वेग ही उसका दु:खदायी विष है।[123]

ज्ञानार्णव और भगवती आराधना में भी काम को सर्पराज से उपमित करते हुए कहा गया है कि सर्प के डसने पर तो सात ही वेग (विकार) होते हैं पर काम सर्प के डसने पर दस वेग उत्पन्न होते हैं।[124]

**4.15. वमन** – किसी ने अतिपौष्टिक और स्वादिष्ट आहार किया। किसी कारणवश वमन हो जाए उस वमन को फिर से चाटना अतिघृणित और जुगुप्सित माना जाता है। इसी प्रकार त्यागे हुए काम भोग को फिर से चाहना, वमन चाटने के समान कहा गया है। दसवैकालिक सूत्र के अनुसार अगंधन कुल के सर्प जैसे तुच्छ प्राणी भी अग्नि में जल मरना स्वीकार कर लेते हैं किन्तु वमन किए हुए विष को वापस नहीं पीते।[125] उत्तराध्ययन सूत्र में भी त्यागे हुए काम भोगों को वापस सेवन करना वमन पीने के समान कहा गया है।[126]

**4.16. गरुड़** – गरुड़ पक्षी सांप को मारकर खा जाता है। इसलिए सांप हमेशा गरुड़ से शंकित होकर रहता है, बचकर चलता है। उत्तराध्ययन सूत्र में मनुष्य को सांप और विषय भोगों को संसार बढ़ाने वाले गरुड़ से उपमित करते हुए मनुष्य को विषय भोगों से बच कर रहने को कहा गया है।[127]

**4.17. बिजली की चमक** – बिजली की चमक बहुत ही चंचल होती है। एक क्षण में चमक कर विलुप्त हो जाती है। उत्तराध्ययन सूत्र में मनुष्य के जीवन और सौंदर्य को बिजली की चमक की उपमा देते हुए क्षणभंगुर कहा है।[128]

**4.18. पानी का बुलबुला** – पानी में हलचल होने से बुलबुले उत्पन्न होते हैं और बहुत ही जल्दी फूटकर फिर पानी में विलीन हो जाते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में मनुष्य के शरीर को पानी के बुलबुले के समान नश्वर कहा गया है।[129]

**4.19. नन्दीफल** – ज्ञाताधर्मकथा में नन्दीफल के वृक्ष का वर्णन इस प्रकार मिलता है – नन्दी फल के वृक्ष पत्र, पुष्प व फल से भरपूर होते हैं। इसकी हरीतिमा चित्ताकर्षक होती है।

इसकी छाया भी शीतलता देने वाली होती है। इसके रंग, रूप, गंध व स्पर्श अति मनोज्ञ होते हैं किन्तु जो इन वृक्षों के मूल, कंद, छाल, पत्ते, फूल, फल, बीज अथवा हरित खाता है अथवा छाया में विश्राम करता है, वह उसके लिए आपात भद्र होता है। तत्पश्चात् परिणत होते–होते वे असमय में ही जीवन का विनाश कर देते हैं। [130] वृत्तिकार ने निगमन गाथा में विषयों की तुलना नन्दी फलों से की हैं – वृत्तिकार के शब्दों में –

**नंदिफलाई त्व इहं, सिवपहपडि पण्णगाण विसया।**
**तब्भक्खणाओ मरणं, जह तह विसरहि संसारो।।**

शिवपथ प्रतिपन्न व्यक्तियों के लिए विषय नंदी फलों के समान हैं। जैसे– नंदी फलों के भक्षण से मृत्यु होती है, वैसे ही विषयों से संसार बढ़ता है। [131]

**4.20. किम्पाक फल** – यह फल देखने में अति सुंदर और खाने में अति स्वादिष्ट होता है किन्तु परिपाक के समय यह जीवन का अंत कर देता है। इसी प्रकार काम भोग भी भोग के समय प्रिय लगते हैं पर उनका विपाक अशुभ होता है। उत्तराध्ययन सूत्र एवं ज्ञानार्णव में काम भोगों को किम्पाक फल से उपमित किया गया है।[132]

**4.21. हट** – यह एक प्रकार की जलीय वनस्पति होती है। थोड़ी सी हवा चलने पर यह छिन्न–भिन्न हो जाती है। दसवैकालिक एवं उत्तराध्ययन दोनों ही सूत्रों में काम भोगों को हट की उपमा देते हुए कहा गया है कि जो स्त्री आदि के प्रति राग भाव रखता है वह हट के समान मानसिक अस्थिरता का शिकार हो जाता है।[133]

**4.22. गोपाल और भाण्डपाल** – गोपाल दूसरों की गायों को चराता है और भाण्डपाल दूसरों के वजन को ढ़ोता है। उसके स्वामी वे नहीं होते। इसी प्रकार जो साधक, साधना में स्थिर नहीं होता वह केवल वेश का भार ढोता है साधना का स्वामी वह नहीं होता।[134]

**4.23. बिल्ली–चूहा** – उत्तराध्ययन सूत्र में स्त्रियों को बिल्ली और ब्रह्मचारी को चूहों की उपमा देते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार बिल्ली की बस्ती के पास चूहों का रहना अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार स्त्रियों की बस्ती के पास ब्रह्मचारी का रहना अच्छा नहीं होता।[135]

**4.24. प्रकाश लोलुप पतंगा** – जिस प्रकार प्रकाश लोलुप पतंगा दीपक की लौ में जलकर विनष्ट हो जाता है। उसी प्रकार जो मनोज्ञ रूपों में तीव्र आसक्ति करता है वह अकाल में ही विनष्ट हो जाता है।[136]

**4.25. अग्नि** – उत्तराध्ययन सूत्र में काम को अग्नि की उपमा अनेक रूपों से दी गई है। सघन जंगलों में हवा द्वारा पेड़ों के घर्षण से अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। इसे 'दावानल' कहते हैं। तेज हवा के झोंकों के कारण प्रचुर ईंधन वाला वह दावानल उपशांत नहीं होता। इसी प्रकार,

अतिमात्रा में खाने वाले की इन्द्रियाग्नि–कामाग्नि शांत नहीं होती।[137] सूत्रकार कहते हैं कि जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क से पदार्थ संतप्त होकर जल जाते हैं उसी प्रकार जो वासनाओं से मुक्त नहीं होता वह अतृप्ति की अग्नि से संतप्त हो जाता है और प्रमत्त होकर जरा और मृत्यु को प्राप्त होता है। सूत्रकार कहते हैं कि मूढ़ लोग यह समझ नहीं पाते कि यह समूचा संसार अग्नि से जल रहा है। [138] ज्ञानार्णव में काम को अग्नि की उपमा देते हुए कहा गया है कि व्यक्ति इससे संतप्त होकर स्त्री के शरीर रूप अथाह कीचड़ का आश्रय लेते हुए उसके भीतर डूब जाता है।[139] यहां कामाग्नि को घी से सिंचित अग्नि से भी अधिक भयानक बताया गया है। इसका कारण यह बताते हैं कि अग्नि से जला हुआ प्राणी तो उस भव में कष्ट पाता है तथा कदाचित उचित औषध आदि के उपचार से वह उस भव में भी उसके कष्ट से मुक्त हो जाता है। परंतु अब्रह्मचर्य के पाप के कारण प्राणी अनेक भवों में दुर्गति के कष्ट पाता है तथा उसका कोई प्रतिकार भी संभव नहीं है। [140] अग्नि का महत्त्व तभी तक है जब तक वह प्रज्ज्वलित रहे। वह ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट हुए पुरुष को 'बुझी हुई अग्नि' से उपमित करते हुए उसके शीघ्र ही अपमानित होने की बात कही गई है। [141] धर्मामृत अनगार में स्त्री को अग्नि के तुल्य माना है। जैसे अग्नि के सम्पर्क से तत्काल घी पिघलता है और पारा उड़ जाता है वैसे ही स्त्री के सम्पर्क से मनुष्य का मनोगुणसत्त्व वीर्य छल से विलीन हो जाता है और युक्त–अयुक्त का विचार ज्ञान नष्ट हो जाता है।[142]

**4.26. मृग** – सूत्रकृतांग सूत्र में काम वासना में फंस चुके व्यक्ति की उपमा मृग से की गई है। जिस प्रकार घास के मोह में फंसा मृग परवश हो जाता है। वैसे ही काम वासनाओं के पाश में फंसा मनुष्य चाहकर भी बंधन से छूट नहीं सकता है। [143]

उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार जिस प्रकार शब्दों की आसक्ति के कारण हरिण अपने प्राण खो देता है। उसी प्रकार जो मनोज्ञ शब्दों में तीव्र आसक्ति रखता है वह अकाल में ही विनष्ट हो जाता है। [144]

**4.27. मत्स्य** – सूत्रकृतांग सूत्र के अनुसार ब्रह्मचर्य में पराजित मंद मनुष्य वैसे ही विषाद को प्राप्त होते हैं जैसे जाल में फँसी मछलियां। [145] उत्तराध्ययन सूत्र में मत्स्य की उपमा रसासक्ति के रूप में की गई है। जिस प्रकार मांस खाने के लालच में मत्स्य कांटे में बींधा जाता है, उसी प्रकार जो मनोज्ञ रसों में तीव्र आसक्ति रखता है वह अकाल में विनष्ट हो जाता है।[146]

**4.28. भैंसा** – उत्तराध्ययन सूत्र में स्पर्श इंद्रिय की आसक्ति में फंसे व्यक्ति की उपमा भैंसे से की गई है। जिस प्रकार जल के शीतल स्पर्श में आसक्त भैंसा घड़ियाल के द्वारा पकड़ा जाता है। उसी प्रकार जो मनोज्ञ स्पर्श में तीव्र आसक्ति रखता है वह अकाल में विनष्ट हो जाता है।[147]

**4.29. हाथी** – उत्तराध्ययन सूत्र में कामासक्त व्यक्ति की उपमा हाथी से दो तरीके से की गई

हैं। जैसे – जिस प्रकार पंक जल (दलदल) में फंसा हुआ हाथी स्थल को देखता हुआ भी किनारे तक नहीं पहुंच पाता। उसी प्रकार काम–गुणों में आसक्त बने हुए व्यक्ति धर्म को जानते हुए भी उसका अनुसरण नहीं कर पाते तथा जिस प्रकार हथिनी के पथ में आकृष्ट काम गुणों में गृद्ध बना हुआ रागातुर हाथी विनाश को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो मनोज्ञ भावों में तीव्र आसक्ति रखता है, वह अकाल में ही विनष्ट हो जाता है।[148] ज्ञानार्णव में कामवासना की उपमा मदोन्मत्त हाथी से करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी जंगल में वृक्षों को उखाड़ देता है उसी प्रकार निरंकुश कामासक्ति धर्मरूप वृक्षों को उखाड़ देती हैं।[149]

**4.30 वैतरणी नदी** – वैतरणी नदी नरक गति में मानी जाती है। अति तीव्र प्रवाह और विषम तट बंध के कारण यह दुस्तर मानी गई है। सूत्रकृतांग सूत्र में स्त्रियों को वैतरणी से उपमित करते हुए दुस्तर कहा गया है।[150]

**4.31. चोर** – उत्तराध्ययन सूत्र में विषयों के प्रति राग द्वेषात्मक प्रवृत्ति वाली इंद्रियों को चोर से उपमित किया गया है। क्योंकि ये मनुष्य का धर्म रूपी सर्वस्व छीन लेती है।[151]

**4.32. पिशाच** – भगवती आराधना में काम विषय को पिशाच की उपमा दी गई है। सूत्रकार कहते हैं कि जिस प्रकार पिशाच के द्वारा पकड़ा गया मनुष्य अपने हित–अहित को नहीं समझता, उसी प्रकार काम रूपी पिशाच के द्वारा पकड़ा गया मनुष्य अपने हित अहित को नहीं समझ सकता।[152] दूसरी तरफ कहा गया है कि जैसे जल में डूबा हुआ और प्रवाह में बहता मनुष्य चेतना रहित होता है। वैसे ही जिसका चित्त विषय रूपी पिशाच के द्वारा गृहीत है वह मनुष्य सब कार्यों में प्रवीण होते हुए भी मंद होता है।[153]

**4.33. रेशम का कीड़ा** – भगवती आराधना में स्त्री रूपी जाल में फंसे व्यक्ति को रेशम के कीड़े से उपमित करते हुए कहा गया है कि जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही मुख में से तार निकालकर उससे अपने को बांधता है, वैसे ही दुर्बुद्धि मनुष्य विषयों के लिए स्त्री रूपी जाल के द्वारा नित्य अपने को बांधता है, जिसका छूटना अशक्य है।[154]

**4.34. सछिद्र बर्तन** – ज्ञानार्णव के अनुसार जिस प्रकार सछिद्र बर्तन में भरा गया पानी क्षण भर भी स्थित नहीं रहता है, उसी प्रकार काम बाण से विद्ध हुए मन में अमृत के समान सुखप्रद विवेक भी क्षण भर के लिए स्थित नहीं रहता है।[155]

**4.35. मालती लता** – ज्ञानार्णव में स्त्रियों के अंगों को मालती लता से उपमित किया गया है। ये कोमल होते हैं किन्तु मर्म स्थानों को विदीर्ण कर देते हैं।[156]

**4.36. कौआ** – ज्ञानार्णव में कामी पुरुषों को कौए से उपमित किया गया है। सूत्रकार कहते हैं जिस प्रकार कौआ कीड़ों के समूहों से व्याप्त हड्डी में अनुराग करता है उसी प्रकार कामी स्त्री के गुप्तांगों में अनुराग करता है।[157]

**4.37. कुत्ता** – कामी जनों को कुत्ते की उपमा देते हुए ज्ञानार्णव में कहा है कि जिस प्रकार निकृष्ट कुत्ते हड्डी के चबाने से अपने ही तालु से निकले हुए रुधिर को पीकर सुख का अनुभव करते हैं उसी प्रकार कामी जन अपने शरीर की विडम्बना करते हुए मैथुन से उत्पन्न हुए सुख का अनुभव करते हैं।[158]

**4.38. कीड़े** – ज्ञानार्णव में स्त्रियों के अपवित्र अंगों की संगति करने वाले कामी पुरुषों को अपवित्र मल में विचरण करने वाले घृणास्पद क्षुद्र कीड़ों की उपमा दी गई है।[159]

**4.39. घी** – ज्ञानार्णव में विषय सेवन को घी की उपमा देते हुए कहा गया है कि जिस तरह घी डालने से अग्नि कभी शांत नहीं होती बल्कि अधिक प्रज्ज्वलित ही होती है उसी प्रकार विषय सेवन से काम की बाधा शांत नहीं होती, बल्कि वह उत्तरोत्तर वृद्धिंगत् ही होती है। [160]

**4.40. पागल** – जिस प्रकार पागल मनुष्य मिट्टी के ढेले में भी सुवर्ण को देखता है उसी प्रकार राग में अंधे हुए मन वाला विषयानुराग से अविवेकी बना प्राणी मैथुन सेवन में सुख मानता है। [161]

**4.41. अपथ्य आहार** – जिस प्रकार रोगी मनुष्य पथ्य (हितकर) समझकर अपथ्यों का अहितकर, रोगवर्द्धक भोजनादि का सेवन करता है उसी प्रकार कामी पुरुष सुख की इच्छा से निर्लज्ज होकर स्त्रियों के अंगों का सेवन करता है। [162]

**4.42. कुष्ठ रोग** – जिस प्रकार शरीर के ताप से पीड़ित कुष्ठरोगी खुजलाने को सुखकारक मानता है उसी प्रकार तीव्र काम रूप ताप से पीड़ित मनुष्य मैथुन को सुखकारक मानता है। परंतु यह उसका भ्रम है क्योंकि जिस प्रकार खुजलाने से अंत में कोढ़ी को अधिक ही कष्ट होता है उसी प्रकार काम सेवन से भी अंत में कष्ट ही अधिक होता है।[163]

इस प्रकार अब्रह्मचर्य के स्वरूप व इसके परिणामों को व्यापक रूप से समझने के लिए ये उपमाएं बहुत ही सहायक सिद्ध होती हैं। इन मर्मस्पर्शी उपमाओं से साधक को मूल विषय के अलावा अन्य विषयों का भी ज्ञान हो जाता है।

## 5.0 निष्कर्ष

भगवान महावीर समग्र ज्ञान के पक्षधर थे। उन्होंने प्रत्येक ज्ञेय को सभी दृष्टियों से देखने का सूत्र दिया। ब्रह्मचर्य के संदर्भ में भी सर्वप्रथम अब्रह्मचर्य को जानना और त्यागना बताया– **अबंभं परियाणामि, बंभं उवसम्पज्जामि।** जैन आगमों में अब्रह्मचर्य का भी विस्तृत विश्लेषण मिलता है। इसमें उसके पर्यायवाची, कारक तत्त्व एवं दुष्परिणामों का प्रतिपादन किया गया है। पर्यायवाची शब्दों में मैथुन, काम–गुण, काम–भोग, आदि के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से विचार किया गया है। विभिन्न ग्रंथों में इसके साथ ही 38 पर्यायवाची नामों का उल्लेख प्राप्त होता है।

काम भोग जैसी बड़ी समस्या को समग्रता से समझाने के लिए अनेक उपमाओं का प्रचुरता से उपयोग किया गया है। इन उपमाओं के उपयोग का उद्देश्य यह भी लगता है कि सामान्य प्रज्ञा के शिष्य किसी एक उपमा से विषय वस्तु को न समझ सके तो अन्य के द्वारा समझ लें।

जैन परम्परा में अब्रह्मचर्य को मात्र मैथुन क्रिया तक ही सीमित न रखकर विस्तृत रूप से लिया गया है। पांचों इंद्रियों और मन का असंयम, इनके विषयों में राग–द्वेष या आसक्ति ही अब्रह्मचर्य है। क्योंकि इनसे व्यक्ति बहीरात्म भाव हो जाता है। अब्रह्मचर्य के भेद–प्रभेदों को अनेक दृष्टिकोणों से अनेक रूपों में प्रतिपादित किया गया है।

इसमें विशेष बात यह है कि देवताओं के काम भोग पर भी विचार किया गया है। यहां काम–वासना की समस्या के मूल कारणों के अंतर्गत आंतरिक एवं बाह्य कारणों पर चिंतन किया गया है।

प्रस्तुत अध्याय में अब्रह्मचर्य का विस्तृत निरूपण का उद्देश्य इसके प्रति विरक्ति उत्पन्न करना है। काम–वासना से विरक्ति होने पर ही ब्रह्मचर्य साधना का मार्ग उद्घाटित होता है।

किसी भी कार्य में प्रवृत्ति या निवृत्ति के लिए उससे होने वाले लाभ एवं हानि का ज्ञान अत्यावश्यक होता है। इसके अभाव में साधक का उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न नहीं होता। इसी अपेक्षा से ब्रह्मचर्य एवं अब्रह्मचर्य के विस्तृत अध्ययन के बाद इनसे होने वाले लाभ एवं हानि का अध्ययन आगामी तृतीय अध्याय में काम्य हैं।

## 6.0 संदर्भ


1. सूयगडो (1)/1/1
2. सूयगडो (1)/1/1 का टिप्पण संख्या – 1
3. भगवती/श 1/उ.6/ क्रिया पद सूत्र 276–286
4. प्रज्ञापना सूत्र / अष्टम संज्ञापद/734–735 में उद्धृत मलय, वृत्ति पत्रकां 223
5. दसवैकालिक 4/11
6. प्रश्नव्याकरण सूत्र 1/4/81
7. प्रश्नव्याकरण (आचार्य श्री मिश्रीमलजी) 1/4/81
8. प्रश्नव्याकरण (अमर मुनि) 1/4/81
9. तत्त्वार्थ सूत्र 7/11
10. जैन सिद्धांत दीपिका 7/9
11. A Sanskrit English Dictionary Pg. 60
12. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, पृ. 191 में उद्धृत – द.पा.टी. 9/9/4, ध.अ. 4/173
13. जैन आचार मीमांसा / पृ. 125 में उद्धृत
14. (अ) धर्मामृत अनगार (ब) भगवती आराधना
15. प्रश्नव्याकरण (मधुकर मुनि) 1/4/81
16. प्रश्नव्याकरण (अमर मुनि) 1/4/81
17. जैन सिद्धांत दीपिका 7/9
18. तत्त्वार्थ सूत्र 7/11 (विवेचन)
19. पाइयसद्दमहण्णवो
20. व्रतदीक्षा / पृ. 4 (Foot Note No. 2)
21. ठाणं 3/10
22. दसवैकालिक 4/14 के टिप्पण में उद्धृत
    (क) अ चू पृ. 84 (ख) जि चू पृ. 150
    (ग) हाटी प. 148
23. ठाणं 3/12
24. ठाणं 3/12 के टिप्पण में उद्धृत–स्थानांग वृत्ति, पत्र 100
25 आचारांग भाष्यम् 5(1)/15
26. दसवेआलियं, 4/16 के टिप्पण संख्या 60 में उद्धृत जि.चु.पृ 150
27. जैन लक्षणावली पृष्ठ 829 में उद्धृत मूलाचार 5/95,

अचित्त देव–माणुस–तिरिक्ख जादं च मेहुणं च चदुधा।
तिविहेण तं ण सेवदि णिच्चं पि मुणि ही पयदमणो।।

28. ज्ञानार्णव 11/7–9
29. आवश्यक सूत्र / पृ.44
30. ठाणं/ 5/578
31. आवश्यक सूत्र / पृ. 44 में उद्धृत
32. जैन लक्षणावली पृष्ठ 935 में उद्धृत मैथुन संज्ञा वेदोदयजनितो मैथुनाभिलाष:
(स्थानांग 4/4 जीवाजी, मलय वृ. 13)
33. जैन लक्षणावली पृष्ठ 935 में उद्धृत मैथुन संज्ञा मैथुनाभिलाषा वेदमोहोदयजो जीव परिणाम:।
(आव. हरि. वृ. 4. पृ 580)
34. ठाणं 4/581
35. आवश्यक सूत्र पृष्ठ 44
36. ठाणं सूत्र /2/206
37. प्रश्नव्याकरण (मधुकर मुनि) 1/4/1 (विवेचन से उद्धृत)
समवाओ 5/3 (टिप्पण संख्या 2) में उद्धृत
38. स्थानांग वृत्ति पत्र 277 (समवाओ 5/3, टिप्पण संख्या 2 में उद्धृत)
39. समवाओ 5/3, (टिप्पण संख्या 2) से उद्धृत– समवायांग वृत्ति पत्र 10
40. ठाणं 5/5
41. ठाणं 3/501
42. सू. चू. 1 पृष्ठ 177 (निरुक्त कोष से उद्धृत)
43. दसवै /2/4 का टिप्पण संख्या 17 में उद्धृत, ठाणं 4/136, टी. प. 190 बहिद्धा–मैथुनम
44. ठाणं 3/510
45. ठाणं 4/74
46. ठाणं 5/54
47. ठाणं 5/54 टिप्पण संख्या 48 में उद्धृत
48. भगवती/शतक 7/ उद्देशक 7/6–11
49. उत्तरज्झयणाणि 5/5, टिप्पण संख्या 7 में उद्धृत चूर्णि पृ. 131
50. उत्तराध्ययन वृहद् वृत्ति
51. दसवेआलियं 2/टिप्पण संख्या 11

52. आचारांग भाष्यम् 2(5)/121
53. उत्तरज्झयणाणि 8/ टिप्पण संख्या 24
54. ठाणं 4/583
55 उत्तरज्झयणाणि 8/टिप्पण संख्या 24
56. आचारांग भाष्यम् 5(1)/15
57. ज्ञानार्णव 11/32
58. धर्मामृत अनगार 4/66
59. भगवती आराधना 893–895
60. सूत्रकृतांग (1)/4 (टिप्पण संख्या 36)
61. सूत्रकृतांग 9/29 (टिप्पण संख्या 97)
62. तत्त्वार्थ सूत्र 2/50–51
63. समवाओ / प्रकीर्णक समवाय / 209
64. जीवाजीवाभिगम 2/41 (पृ. 141)
65. वही 2/51 (पृ. 157)
66. वही 2/61 (पृ. 176)
67. आचारांग भाष्यम् 5 (4)/78–84
68. ज्ञाताधर्म कथा अध्याय 10 में उद्धृत निगमन गाथा ज्ञाता वृत्ति 10/2
69. भगवती आराधना 1071, 1073
70. (अ) आचारांग भाष्यम् 5(4)/78–84 (ब) ठाणं 4/581
71. भगवती आराधना 1075
72. आचारांग भाष्यम् 5(4)78–84
73. ज्ञाताधर्मकथा/अ.8
74. भगवती आराधना 1074
75. आचारांग भाष्यम् 5(4)/ 78–84
76. वही
77. ठाणं 4/581
78. आचारांग भाष्यम् 5(4)/78–84
79. ठाणं 4/581
80. दसवेआलियं 2/1 का टिप्पण संख्या 4
81. उत्तरज्झयणाणि 9/53 टिप्पण संख्या 46 में उद्धृत – गीता 2/62,63
82. आचारांग भाष्यम् 5/77

83. उत्तरज्झयणाणि/19/28
84. आचारांग भाष्यम् 5(4)/78-84
85. सूयगडो (1) / 15/ 8
86. ठाणं 4/ 581
87. भगवती / स./9/ उ 31/ सू 13,32
88. उत्तरज्झयणाणि 13/1, 28, 29
89. भगवती आराधना 1074
90. प्रेक्षाध्यान चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा / पृ.2
91. उत्तरज्झयणाणि 1/5
92. ज्ञानार्णव 13/22 (2)
93. उत्तरज्झयणाणि 2/16
94 वही 2/17, 13/30
95. धर्मामृत अणगार 4/67
96. ज्ञानार्णव 11/22, 13/3
97. उत्तरज्झयणाणि 4/2 के टिप्पण में उद्धृत – सुखबोधा टीका पृ.80
98. वही
99. उत्तरज्झयणाणि 5/14,15
100. वही 8/ टि. संख्या 19 में उद्धृत
101. वही 5/16
102. वही 5/10 के टिप्पण में उद्धृत
103. (अ) उत्तरज्झयणाणि 8/5 (ब) भगवती आराधना / 338
104. उत्तरज्झयणाणि 8/6
105. वही 8/18
106. वही टिप्पण में उद्धृत – उत्तराध्ययन वृहद् वृत्ति पत्र 297
107. वही
108. उत्तरज्झयणाणि 9/53
109. ज्ञानार्णव 11/36
110. आचारांग भाष्यम् 2(4)/92
111. सूयगडो (1)/4/10
112. वही (1)/4/11
113. वही (1)/4/10 के टिप्पण में उद्धृत – सूत्रकृतांग वृत्ति पत्र 108

114. वही
115. उत्तरज्झयणाणि 19/11, 9/53
116. सानुवाद व्यवहार भाष्य 3030, 3031
117. अष्टक प्रकरणम् / मैथुनदुषणाष्टकम् 8 11
118. दसवेआलियं 8/56
119. उत्तरज्झयणाणि 16/13
120. वही 20/44
121. वही 9/53
122. वही 32/50
123. धर्मामृत अणगार 4/65
124. (अ) ज्ञानार्णव 11/28-31 (ब) भगवती आराधना 886-889
125. दसवेआलियं 2/6
126. उत्तरज्झयणाणि 10/29, 22/42
127. वही 14/47
128. वही 18/13
129. वही 19/13
130. ज्ञाताधर्मकथा 15/11
131. ज्ञाताधर्मकथा / 15 में उद्धृत – ज्ञाता वृत्ति की निगमन गाथा 15/3
132. (अ) उत्तरज्झयणाणि 19/17, 32/20 (ब) ज्ञानार्णव 13/8
133. (अ) दसवेआलियं 2/ (ब) उत्तरज्झयणाणि 22/44
134. उत्तरज्झयणाणि 22/45
135. वही 32/13
136. वही 32/24
137. वही 32/11
138. वही 14/42, 43
139. ज्ञानार्णव 11/22
140. वही 13/2
141. ज्ञानार्णव 14/33
142. धर्मामृत अनगार 4/84
143. सूयगडो (1) / 4 / 10
144. उत्तरज्झयणाणि 32/37

145. सूयगडो (1) / 3 /13
146. उत्तरज्झयणाणि 32/63
147. वही 32/76
148. वही 13/30, 32/89
149. ज्ञानार्णव 11/42
150. सूयगडो (1) / 3/76
151. उत्तरज्झयणाणि 32/ टिप्पण संख्या 17
152. भगवती आराधना 894
153. वही 907
154. वही 913
155. ज्ञानार्णव 11/45
156. वही 13/20
157. वही 13/15
158. वही 13/17
159. वही 13/18
160. वही 13/1
161. वही 13/5
162. वही 13/6
163. वही 13/10

# अध्याय तृतीय
# ब्रह्मचर्य के लाभ और अब्रह्मचर्य की हानियां

## अध्याय तृतीय

## 3. ब्रह्मचर्य के लाभ और अब्रह्मचर्य की हानियां

**1.0 ब्रह्मचर्य के लाभ**

**1.1 व्यावहारिक लाभ**

(1) मंगलकारी (2) विश्वास पात्रता
(3) मैत्री का विकास (4) सम्मान
(5) शारीरिक स्वास्थ्य

**1.2 मानसिक लाभ**

(1) मानसिक स्थिरता (2) मानसिक स्वास्थ्य
(3) सद्गुणों का प्रेरक

**1.3 भावात्मक लाभ**

(1) शुभ लेश्याओं की परिणति (2) आत्मिक सुख (समाधि)
(3) घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि (4) सुलभ बोधिता

**1.4 आध्यात्मिक लाभ**

(1) दु:ख मुक्ति (2) संवर
(3) कर्म निर्जरा (4) सद्गति
(5) मोक्ष (6) साधना की क्षमता में वृद्धि

**2.0 अब्रह्मचर्य से हानियां**

**2.1 शारीरिक हानियां**

(1) निर्बलता (2) जरा (बुढ़ापा)
(3) इन्द्रिय मूढ़ता (4) नि:संतानता
(5) रोग (6) अकाल मृत्यु
(7) दण्ड (8) दु:ख
(9) तनाव

**2.2 मानसिक हानियां**

(1) परवशता (2) अनिश्चितता
(3) चिंता (4) मानसिक असमाधि (अशांति)
(5) दुर्ध्यान (6) धृष्टता
(7) पश्चात्ताप (8) विषाद ग्रस्तता
(9) स्वाभिमान का नाश (10) बुद्धि का नाश

**2.3 नैतिक एवं चारित्रिक हानियां**

(1) व्रत भंग (2) हिंसा
(3) असत्य (4) विषयासक्ति (चोरी की प्रेरक)
(5) परिग्रह (6) निर्दयता

**2.4 व्यावहारिक हानियां**

(1) आज्ञा की हानि (2) निंदा व तिरस्कार की प्राप्ति
(3) कलह (4) वैर की वृद्धि
(5) अशुभ संस्कारों की प्रगाढ़ता (6) विघ्न बहुलता
(7) महान अनर्थ (8) संबंधों की उपेक्षा
(9) सद्गुणों का नाश (10) जिम्मेदार पद के अयोग्य
(11) अभ्याख्यान

**2.5 भावात्मक हानियां**

(1) क्रोध (2) अहंकार की वृद्धि
(3) अविनय की वृद्धि (4) माया
(5) अतृप्ति (6) भय कारक
(7) अविवेक जनक (8) अशुभ लेश्याओं का परिणमन
(9) धर्म की हानि

**2.6 आध्यात्मिक हानियां**

(1) ज्ञान का विपर्यास (2) अत्राणता और अशरणता
(3) प्रमाद का जनक (4) दु:ख
(5) उपसर्ग (6) दुर्गति
(7) भव वृद्धि (8) आश्रव/कर्म बंधन का हेतु
(9) धर्म से पतन (10) महामोहनीय कर्म का बन्ध

**3.0 निष्कर्ष**

**4.0 संदर्भ**

## 3. ब्रह्मचर्य के लाभ और अब्रह्मचर्य की हानियां

### 1.0 ब्रह्मचर्य के लाभ

किसी भी करणीय या अकरणीय कार्य के गुण–दोष को स्पष्ट करने से अनुयायियों में उसके प्रति जागृति बढ़ जाती है। जैन आगमों एवं व्याख्या साहित्य में ब्रह्मचर्य की महिमा के प्रतिपादन के साथ–साथ उससे होने वाले अनेक लाभ का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। ब्रह्मचर्य के लाभ को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

### 1.1 व्यावहारिक लाभ

प्रत्येक साधना पद्धति के लोकप्रिय होने में उसका व्यावहारिक रूप से लाभदायक होना बहुत जरूरी है। जैन आगमों में वर्णित ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त अनेक दृष्टियों से व्यावहारिक लाभ देने वाला है जैसे–

**1.1(1) मंगलकारी –** जो शुभ हो अर्थात् जिससे हित सधता हो उसे मंगल कहते हैं। मंगल के दो प्रकार होते हैं–

**(i) द्रव्य मंगल** – औपचारिक या लौकिक मंगल। पूर्ण कलश, स्वस्तिक, अक्षत, रोली, मौली, नारीयल आदि अनेक वस्तुएं लौकिक मंगल मानी जाती हैं।

**(ii) भाव मंगल** – वास्तविक मंगल। जिससे आत्म हित की सिद्धि होती है अर्थात् आत्म शुद्धि एवं उत्कर्ष होता है वह भाव मंगल कहलाता है।

ठाणं सूत्र में काम भोगों की परिज्ञा अर्थात् उन्हें अच्छी तरह जानना और जानकर त्यागना, जीवों के लिए हितकर, शुभ, क्षम, नि:श्रेयस तथा अनुगामिकता आदि का हेतु कहा गया है। अर्थात् काम–भोगों का समझपूर्वक त्याग मंगलकारी माना गया है। [1]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को सभी मंगलों का मार्ग – उपाय बताकर इसे लौकिक एवं लोकोत्तर दोनों ही मंगलों का जनक कहा गया है। [2]

दसवैकालिक सूत्र में धर्म को उत्कृष्ट मंगल माना गया है। यहाँ धर्म के तीन लक्षण बताए गए हैं– अहिंसा, संयम और तप। [3] धर्म के इन तीनों लक्षणों में ब्रह्मचर्य प्राण तत्व की तरह समाहित है।

**(i) अहिंसा में** – यहाँ अहिंसा शब्द व्यापक अर्थ में व्यवहृत है। इसलिए मृषावाद विरति, मैथुन विरति, परिग्रह विरति भी इसमें समाविष्ट हैं। [4]

**(ii) संयम में** – यहाँ संयम शब्द का प्रयोग भी बहुत व्यापक अर्थ में किया गया है। हिंसा, असत्य, चौर्य, मैथुन और परिग्रह का त्याग, कषायों पर विजय, इन्द्रियों का निग्रह, समितियों और गुप्तियों का पालन – ये सब संयम शब्द में अन्तर्निहित हैं। [5]

(iii) **तप में** – बारह प्रकार के तप में छठा है – प्रतिसंलीनता। इसका अर्थ है इन्द्रियों के विषय शब्द आदि विषयों में राग–द्वेष न करना, अनुदीर्ण क्रोध आदि का निरोध तथा उदय में आए क्रोध को विफल करना, अकुशल मन आदि का निरोध और कुशल मन आदि की प्रवृत्ति तथा स्त्री–पशु–नपुंसक रहित एकांत स्थान में वास। [6]

इस प्रकार धर्म के लक्षणों के अंश के रूप में ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट मंगल की कोटि में आता है।

**1.1(2) विश्वास पात्रता** – जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य में दृढ़ रहता है वह लोक में विश्वास का पात्र बन जाता है। सूत्रकृतांग सूत्र एवं ज्ञाताधर्मकथा में अनेक श्रावकों के प्रसंग में कहा गया है कि वे राजाओं के अन्त:पुर एवं दूसरों के घरों में बिना किसी रुकावट के प्रवेश करने वाले थे। ब्रह्मचर्य के विश्वास के कारण उन्हें कहीं भी जाने में रुकावट नहीं थी। [7]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में भी ब्रह्मचर्य का प्रतिपादन करते हुए इसे नि:शंक कहा गया है। अर्थात् ब्रह्मचारी पुरुष विषयों के प्रति निष्पृह होने से लोगों के लिए शंकनीय नहीं होता। [8]

**1.1(3) मैत्री का विकास** – प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को वैर भाव की निवृत्ति और उसका अन्त करने वाला कहा गया है।[9]

इसकी व्याख्या में मुनि श्री कन्हैयालालजी ने एक सुंदर श्लोक उद्धृत किया है–

**सप्पो हारायए तस्स, विसं चावि सुहायए।**
**बंभचेरप्पभावेण, रिऊ मित्तायए सया।।**

सर्प उसके लिए हार जैसा बन जाता है और विष भी सुधा जैसा हो जाता है। यह ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव है कि शत्रु भी मित्र बन जाता है। [10]

**1.1(4) सम्मान** – ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में भोगासक्ति से मुक्त व्यक्ति को बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय कहा गया है। [11]

उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचारी को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर आदि के द्वारा सम्माननीय बताया गया है।[12]

हेमचंद्राचार्य ने योगसूत्र में कहा है कि ब्रह्मचर्य का परिपालक पूज्यों का भी पूज्य बन जाता है। वह न केवल सामान्य व्यक्ति बल्कि सुरों, असुरों एवं नरेंद्रों का पूजनीय–सम्माननीय बन जाता है। [13]

ज्ञानार्णव में भी ब्रह्मचर्य के पालक को तीनों लोकों में पूजनीय बताया गया है। [14]

**1.1(5) शारीरिक स्वास्थ्य** – शारीरिक स्वास्थ्य मानसिक एवं भावात्मक स्वास्थ्य का आधार होता है। आयुर्वेद आदि स्वास्थ्य ग्रंथों के अनुसार स्वस्थ शरीर का आधार वीर्य रक्षा है।

वीर्य रक्षा का माध्यम है – ब्रह्मचर्य। इस प्रकार स्वास्थ्य का मूल आधार ब्रह्मचर्य माना गया है। पातंजल योग दर्शन के अनुसार ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर वीर्य का लाभ होता है।[15] योग सूत्र में इसका विस्तार इस प्रकार किया गया है –

**चिरायुष: सुसंस्थाना - दृढ़संहनना नरा: ।**
**तेजस्विनो महावीर्या भवेयुर्ब्रह्मचर्यत: ।।**

अर्थात् ब्रह्मचर्य के प्रभाव से प्राणी – दीर्घ आयु वाला, सुंदर आकार वाला, दृढ़ शरीर वाला, तेजस्वी और अतिशय बलवान होता है।[16]

**1.2. मानसिक लाभ**

ब्रह्मचर्य के पालन से मानसिक लाभ भी उपलब्ध होता है। मानसिक शान्ति भौतिक उपलब्धियों से भी अधिक मूल्यवान होती है।

**1.2(1) मानसिक स्थिरता** – प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य से मानसिक स्थिरता की बात कही गई है।[17] इसके अनुसार ब्रह्मचर्य के पालन से साधकों का अंत:करण प्रशस्त, गम्भीर और स्थिर हो जाता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में मानसिक अस्थिरता का कारण विषयासक्ति बताते हुए कहा गया है कि ब्रह्मचारी के काम–गुणों में होने वाली तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है, संकल्प–विकल्प समाप्त हो जाते हैं। फलत: मानसिक स्थिरता की उपलब्धि होती है।[18]

**1.2(2) मानसिक स्वास्थ्य** – ब्रह्मचर्य और मानसिक स्वास्थ्य का बहुत गहरा संबंध है। संबोधि में आचार्य महाप्रज्ञ ने मानसिक स्वास्थ्य के कुछ सूत्र दिए हैं जो ब्रह्मचर्य के ही अंग हैं। वे सूत्र इस प्रकार हैं –

- मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयों में राग–द्वेष नहीं करना।[19]
- भौतिक फलों की आशा और भोग विषयक संकल्पों का त्याग।[20]
- भोगों की रक्षा का प्रयत्न न करना।[21]

**1.2(3) सद्गुणों का प्रेरक** – प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को गुणों का अद्वितीय नायक कहा गया है। जिस प्रकार नायक के आने पर पूरी सेना उसके साथ आ जाती है उसी प्रकार ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर अन्य सभी सद्गुण स्वयं आ जाते हैं।[22]

**1.3. भावात्मक लाभ**

ब्रह्मचर्य का भावनाओं से बहुत गहरा संबंध है। दोनों एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। ब्रह्मचर्य साधना से भावात्मक लाभ इस प्रकार हैं–

**1.3(1) शुभ लेश्याओं की परिणति** – उत्तराध्ययन सूत्र में लेश्याओं का विस्तृत वर्णन

मिलता है। उसके अनुसार जीव के अध्यवसायों के अनुरूप उसकी लेश्याओं का निर्माण होता है। शुभ अध्यवसायों से शुभ लेश्याएं और अशुभ अध्यवसायों से अशुभ लेश्याएं बनती हैं। जो व्यक्ति विषयों की आसक्ति से मुक्त होता है उसके अध्यवसाय पवित्र होते हैं फलत: उसमें शुभ लेश्याओं का परिणमन होता है।[23]

**1.3(2) आत्मिक सुख (समाधि)** सुख दो प्रकार का होता है– (1) पौद्गलिक सुख और (2) आत्मिक सुख अर्थात् समाधि। पौद्गलिक सुख अत्यल्प और क्षणिक होता है। जबकि आत्मिक सुख अनंत और शाश्वत होता है।

सूत्रकृतांग सूत्र में ब्रह्मचर्य से आत्मिक सुख की प्राप्ति बताई गई है।[24] व्याख्या साहित्य में काम भोगों से बचने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है कि इस लोक में भी वही व्यक्ति सुखी होता है जो अपनी कामेच्छा का निरोध करता है। फिर परलोक की तो बात ही क्या? चूर्णिकार ने आत्मिक सुख को चक्रवर्ती और इंद्र के सुख से भी ऊंचा मानते हुए कहा है–

**नैवास्ति राजराजस्य तत् सुखं नैव देवराजस्य।**
**यत् सुखमिहैव साधोर्लोक व्यापाररहितस्य।।**

(प्रशमरति आन्हिक 128)

जो मुनि लौकिक व्यापार से मुक्त है, उसके जो सुख होता है वह सुख चक्रवर्ती या इन्द्र के भी नहीं होता है।

**तणसंथारणिवण्णो वि मुणिवर भग्गराग-मय दोसो।**
**जं पावति मुत्ति सुहं ण चक्कवट्टी वि तं लभति।।**

(संस्तारक प्रवीर्णक गा. 48)

तृण संस्तारक पर निविष्ट मुनि राग–द्वेष रहित क्षण में जिस मुक्ति सुख का अनुभव करता है वह चक्रवर्ती को भी उपलब्ध नहीं होता है।[25]

ठाणं सूत्र[26] एवं उत्तराध्ययन सूत्र[27] में भी मैथुन एवं काम भोग विरति रूप ब्रह्मचर्य से समाधि की उपलब्धि की बात स्वीकार की गई है।

**1.3(3) घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि–** ब्रह्मचर्य की साधना से अनेक प्रकार की ऋद्धियां उत्पन्न हो जाती हैं। उनमें से एक है– 'घोर ब्रह्मचर्य ऋद्धि'। यह चारित्र मोहनीय कर्म के उत्कृष्ट क्षयोपशम से होती है। इसके होने से साधक का मन स्वप्न में भी विचलित नहीं होता। इस ऋद्धि के प्रभाव से साधक जिस स्थान में रहता है वहां चोरी, भय, दुर्भिक्ष, महामारी, महायुद्ध आदि नहीं होते हैं।[28]

**1.3(4) सुलभ बोधिता–** संबोधि ग्रंथ में आचार्य महाप्रज्ञ ने ब्रह्मचर्य रूप भौतिक सुखों की अनिदानता को मृत्यु के उपरांत भी सुलभ बोधिता का कारण बताया है।[29]

## 1.4. आध्यात्मिक लाभ

मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में ब्रह्मचर्य का बहुत बड़ा योगदान होता है। इससे चेतना का ऊर्ध्वारोहण होता है। जैन आगमों में ब्रह्मचर्य की आध्यात्मिक उपलब्धियों का अनेक दृष्टियों से वर्णन मिलता है –

**1.4(1) दु:ख मुक्ति –** अध्यात्म साधना का मुख्य उद्देश्य दु:ख का आत्यन्तिक अन्त करना होता है। सूत्रकृतांग सूत्र में भगवान महावीर की साधना का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उन्होंने दु:खों को क्षीण करने के लिए स्त्री का वर्जन किया।[30]

दसवैकालिक सूत्र के अनुसार काम वासना का अतिक्रम करने से दु:ख अपने आप अतिक्रांत होता है। [31]

उत्तराध्ययन सूत्र में भी उदाहरण के साथ यह कहा गया है कि भोगों से विरक्त व्यक्ति शोक–मुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल से लिप्त नहीं होता वैसे ही वह संसार में रहकर भी अनेक दु:खों की परंपरा में लिप्त नहीं होता है। [32]

भगवती आराधना के अनुसार ब्रह्मचर्य का साधक मुक्तात्मा की तरह प्रज्ज्वलित कामाग्नि से जलते हुए सब जगत को एक प्रेक्षक के रूप में देखता है। वह द्रष्टा ही रहता है, कष्ट से स्वयं पीड़ित नहीं होता है। [33]

**1.4(2) संवर –** संवर का अर्थ है कर्मों को आकर्षित करने वाली प्रवृत्तियों को रोक देना जिससे कर्म बंधन न हों। यह आश्रव का प्रतिपक्षी शब्द है। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार विषयों एवं मैथुन से विरत जीव अनाश्रव होता है।[34] इसी सूत्र में एक–एक इन्द्रिय के निग्रह का फल बताते हुए कहा गया है कि जीव इन्द्रिय निग्रह से मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयों के प्रति होने वाले राग–द्वेष के निमित्त कर्म बंधन नहीं करता है।[35]

**1.4(3) कर्म निर्जरा –** कर्म निर्जरा का अर्थ है– आत्म शुद्धि अर्थात् आत्मा के लगे हुए कर्म परमाणुओं का पृथक होना। ठाणं एवं समवायांग सूत्र में कर्म निर्जरा के पांच साधनों में एक मैथुन विरमण – ब्रह्मचर्य को माना है। [36] इस सूत्र में शौच–शुद्धता के प्रसंग में मिट्टी, जल आदि से होने वाले शौच को द्रव्य शौच कहा गया है तथा ब्रह्मचर्य आदि के आचरण को भाव शौच की संज्ञा दी गई है। [37]

समवायांग सूत्र में इस संदर्भ में एक तात्त्विक प्रश्न खड़ा कर उसका समाधान दिया गया है। प्रश्न है कि विरमण या विरति निर्जरा का कारण कैसे बनती है? विरति संवर है। यहां दोनों स्थानों में उसे निर्जरा का हेतु या निर्जरा माना है, इसकी संगति क्या है?

इसका समाधान देते हुए कहा गया है– जब व्यक्ति विरति या प्रत्याख्यान करता है, उस क्षण की प्रवृत्ति निर्जरा का हेतु बनती है। उस प्रवृत्ति क्षण के पश्चात् वह विरमण संवर की

कोटि में चला जाता है। इसी प्रवृत्ति क्षण की अपेक्षा से यहां 'विरमण' को निर्जरा माना गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचर्य को 'शांति तीर्थ' की उपमा दी गई है। [38] वृहद् वृत्ति के अनुसार ब्रह्मचर्य संसार समुद्र को तैरने का उपायभूत घाट है। [39] इसमें स्नान करने वाला अर्थात ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला कर्म रजों को धो कर निर्मल हो जाता है। इसी सूत्र में ब्रह्मचर्य के मात्र एक साधन, विविक्तशयनासन की साधना करने वाले को आठ ही कर्मों को तोड़ने वाला बताया गया है। [40]

दसवैकालिक सूत्र में भी ब्रह्मचर्य को विशोधि स्थान अर्थात् कर्म निर्जरा का निमित्तभूत माना गया है। [41]

**1.4(4) सद्गति** – यह संसार चतुर्गत्यात्मक है। जीव अपने–अपने कर्मो के अनुसार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव– इन गतियों का परिसंचरण करते रहते हैं। इनमें नरक व तिर्यंच गति को दुर्गति और मनुष्य व देव गति को सद्गति माना जाता है।

जो अनुत्तर विमान आदि स्वर्ग विमानों में जन्म लेते हैं, वे लंबी आयु और समचतुरस्र संस्थान पाते हैं। और जो मनुष्य गति में जन्म लेते हैं वे वज्र ऋषभनाराच जैसा सुदृढ़ संहनन पाते हैं। तीर्थंकर और चक्रवर्ती आदि के रूप में उत्पन्न होने वाले तेजस्वी और महान बलशाली होते हैं।

यद्यपि एक साधक का लक्ष्य मोक्ष पाना होता है, लौकिक ऋद्धि–सिद्धि नहीं। लेकिन जब तक चरम लक्ष्य प्राप्त नहीं होता तब तक देव व मनुष्य गतियाँ प्रशस्त मानी जाती हैं। जैन आगमों में ब्रह्मचर्य के प्रभाव से देवगति की प्राप्ति के अनेक प्रमाण मिलते हैं–

ठाणं सूत्र के अनुसार शब्द, रूप आदि काम भोगों की परिज्ञा करने वाला [42] अर्थात् भली–भांति जानकर त्याग करने वाला तथा मैथुन का विरमण करने वाला सुगति को प्राप्त होता है।[43]

राजा, सेनापति, मंत्री आदि उच्च राज्याधिकारियों का जीवन महाआरम्भ और महापरिग्रह युक्त होता है। वे भी यदि काम–भोगों का त्याग करते हैं तो मृत्यु के पश्चात् सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवता के रूप में उत्पन्न होते हैं। [44]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को नरक गति एवं तिर्यंच गति के मार्ग को रोकने वाला कहकर प्रकारांतर से सद्गति का मार्ग खोलने वाला कहा गया है। [45]

यहाँ ब्रह्मचर्य को परलोक में फल प्रदायक एवं भविष्य में कल्याण का कारण कहा गया है। [46]

साधना के क्षेत्र में बल प्रयोग नहीं चलता। जब साधक अपनी मानसिकता के साथ त्याग करता है तभी वह साधना फलदायी होती है। कहा भी गया है–

**जे य कंते पीए भोए, लद्धे विपिट्ठी कुव्वई।**
**साहीणे चयई भोए, सेहु चाई ति उच्चई।।**

किन्तु औपपातिक सूत्र में ब्रह्मचर्य साधना को इसका अपवाद माना गया है। इस ग्रंथ के अनुसार मन बिना– परवशपने से भी ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले के भी अकाम निर्जरा होती है और उसके भी 14000 वर्ष स्थिति वाले देव होने का उल्लेख है। [47]

दसवैकालिक सूत्र में भी ब्रह्मचर्य को देवगति का निमित्त माना गया है। [48]

उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार इस मनुष्य भव में काम भोगों से निवृत्त होने वाले पुरुष का आत्मप्रयोजन नष्ट नहीं होता। वह पूतिदेह (औदारिक शरीर) का निरोध कर देव होता है तथा देवलोक से च्युत होकर वह जीव विपुल ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण, आयु और अनुत्तर सुखवाले मनुष्य कुल में उत्पन्न होता है। [49]

**1.4(5) मोक्ष** – मोक्ष का अर्थ है कर्मों का आत्यन्तिक क्षय। जन्म–मृत्यु–रोग–बुढ़ापा आदि सारे दु:खों का समाप्त होना मोक्ष है। आध्यात्मिक साधना का चरम लक्ष्य मोक्ष–प्राप्ति होता है। जैन आगमों में अनेक स्थानों पर ब्रह्मचर्य का निरूपण मोक्ष के साधन के रूप में किया गया है।

सूत्रकृतांग सूत्र में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है– 'जो स्त्रियों के प्रति अनासक्त हैं वे संसार को तरे हुए के समान कहे गए हैं।'[50]

ये काम वासना को जीतने वाले संसार समुद्र का पार पा जाएंगे जैसे व्यापारी समुद्र का पार पा जाता है। [51]

जो स्त्रियों का सेवन नहीं करते (जो काम वासना से मुक्त होते हैं) वे जन मोक्ष पाने वालों की पहली पंक्ति में हैं।[52]

ठाणं सूत्र में विद्या और चरण– इन दो स्थानों से मुक्त होना बताया गया है। स्पष्ट है कि चारित्र में ब्रह्मचर्य भी समाहित है। [53]

इसी सूत्र में भोग प्राप्ति के लिए संकल्प (निदान) न करना भी मोक्ष का साधन है। निदान के फलस्वरूप प्राप्त भोग में आसक्ति तीव्र होती है तथा उससे मुक्त होना भी असंभव होता है। [54]

ज्ञाताधर्मकथा में भी विषयासक्ति से मुक्त व्यक्ति के चार गति वाले इस संसार कांतार (जंगल का रास्ता) से पार हो जाने की बात की गई है। [55]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को मुक्ति का द्वार खोलने वाला तथा कभी क्षीण न होने वाला पद (मोक्ष) को प्रदान करने वाला बताया गया है। [56]

दसवैकालिक सूत्र में भी साधना का अंतिम फल मोक्ष बताया गया है। [57]

उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार इन्द्रिय और मन को विषयों से दूर रखने वाला नए सिरे

से पाप कर्म का बंधन नहीं करता और पूर्व बद्ध कर्मों की निर्जरा कर देता है। इस प्रकार वह पाप कर्म का विनाश कर चार अन्तों (गति) रूप संसार अटवी को पार कर जाता है। [58]

इतना ही नहीं, ब्रह्मचर्य का त्रिकाल महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि 'इसका पालन कर अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्य में भी होंगे।'[59]

योग सूत्र में हेमचंद्राचार्य ने मोक्ष का एकमात्र कारण ब्रह्मचर्य को माना है। [60]

**1.4(6) साधना की क्षमता में वृद्धि**

उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचर्य से साधना की क्षमता में विकास होना माना गया है। सूत्रकार की भाषा में – जो मनुष्य इन स्त्री विषयक आसक्तियों का पार पा जाता है, उसके लिए शेष सारी आसक्तियां वैसे ही सुतर (सुख से पार पाने योग्य) हो जाती हैं, जैसे महासागर को पार पाने के लिए गंगा जैसी बड़ी नदी। [61]

## 2.0 अब्रह्मचर्य से हानियां

जिस प्रकार किसी शुभ प्रवृत्ति के लिए प्रेरक तत्त्व उससे होने वाले लाभ का ज्ञान है उस प्रकार अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्ति के लिए उससे होने वाली हानि का ज्ञान प्रेरक बनता है। अब्रह्मचर्य सेवन से क्षणिक सुख की अनुभूति तो हो सकती है लेकिन इसके परिणाम किंपाक फल के सेवन के समान अति भयानक होते हैं। जैन आगमों में अब्रह्मचर्य गत दुष्परिणामों एवं इससे होने वाली हानियों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

### 2.1. शारीरिक हानियां

अब्रह्मचर्य का सेवन शरीर के माध्यम से होता है इसलिए शरीर के साथ इसका बहुत गहरा एवं सीधा संबंध है। अब्रह्मचर्य का प्रत्यक्ष प्रभाव शरीर से ही प्रदर्शित होता है। जैन आगमों में इससे होने वाली अनेक प्रकार की शारीरिक हानियों का उल्लेख हैं –

**2.1(1) निर्बलता :** सानंद जीवन जीने के लिए शरीर का शक्तिशाली होना बहुत जरूरी है। आयुर्वेद के अनुसार मनुष्य की शारीरिक शक्ति का रहस्य 'वीर्य' में निहित होता है। अब्रह्मचर्य के सेवन से वीर्य का क्षय होता है। उसका सीधा प्रभाव शरीर पर पड़ता है। आचारंग भाष्य के अनुसार अब्रह्मचर्य सेवन से शरीर निर्बल हो जाता है। फलस्वरूप कामासक्त व्यक्ति को अनेक प्रकार की पीड़ा भोगनी पड़ती है। [62]

**2.1(2) जरा (बुढ़ापा) :** मनुष्य का दीर्घ यौवन उसकी जीवन शैली पर निर्भर करता है। यदि जीवन शैली संयम प्रधान है तो लंबी उम्र में भी जरा का आक्रमण नहीं होता। इसके विपरीत उत्तराध्ययन के अनुसार जो कामनाओं में आसक्त होते हैं तथा वृथा आकांक्षाओं का जाल बुनते रहते हैं, वे शीघ्र ही वृद्धावस्था के शिकार हो जाते हैं। [63]

**2.1(3) इंद्रीय मूढ़ता :** आचारंग सूत्र के अनुसार काम के अति सेवन से इंद्रियों की क्षमता क्षीण

होती जाती है। इससे मनुष्य इंद्रिय विषयों के प्रति और अधिक आसक्त हो जाता है। इस प्रकार इंद्रिय मूढ़ता अयोग्यता की स्थिति को पाकर वह अनेक प्रकार के कष्ट उठाता है। [64]

**2.1(4) नि:संतानता :** एक गृहस्थ के लिए संतान का महत्त्व शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक आदि अनेक दृष्टियों से होता है। वंश परंपरा का निर्वाह भी संतानोत्पत्ति से होता है। परंतु असंयमित काम भोग मनुष्य की इस अपेक्षा में भी बाधक होता है। ठाणं सूत्र में स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भधारण न कर पाने के पांच कारणों का वर्णन हैं – 'अप्राकृतिक काम क्रीड़ा करना, अत्यधिक पुरुष सहवास करना या अनेक पुरुषों से सहवास करना।'[65]

वृत्तिकार ने वेश्या का उदाहरण देकर इस तथ्य को पुष्ट किया है। [66]

आयुर्वेद ग्रंथों में पुरुषों के लिए संतानोत्पत्ति के अयोग्य होने का कारण अति अब्रह्मचर्य को माना है।

**2.1(5) रोग :** आचारांग के भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ ने अब्रह्मचर्य से रोगों की उत्पत्ति की संभावना व्यक्त करते हुए इससे भंगदर, वात, धातुक्षय आदि रोग उत्पन्न होना माना है। [67] आधुनिक युग में एड्स को अब्रह्मचर्य के कारण होने वाला एक असाध्य एवं सद्योघाती रोग माना जाता है। ठाणं सूत्र में भी रोग की उत्पत्ति के नौ स्थानों में एक इंद्रियार्थ विकोपन अर्थात् काम विकार को माना गया है। [68]

दसवैकालिक सूत्र के निर्युक्तिकार ने काम को रोग बताते हुए कहा है–

**अन्नंपि य से नामं कामा रोगत्ति पंड़िया बिंति।**
**कामेपत्थेमाणो रोगे पत्थेइ खलु जन्तू।।**

अर्थात् पंडित काम को रोग कहते हैं जो कामों की प्रार्थना करते हैं वे प्राणी निश्चय ही रोगों की प्रार्थना करते हैं।[69]

उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार आसक्ति के साथ अनियंत्रित भोग–भोगने से शरीर में अचानक उत्पन्न होने वाले रोग हो जाते हैं। इन्हें आतंक कहा जाता है। [70]

ज्ञानार्णव में मैथुन के कारण होने वाले रोगों की सूची को आगे बढ़ाया है। इसके अनुसार मैथुन से ग्लानि (खेद), मूर्छा, भ्रान्ति, कम्प, श्रम (थकावट), स्वेद (ताप या पसीना) अंग विकार और क्षयरोग आदि रोग होते हैं। [71]

योगशास्त्र में हेमचन्द्राचार्य ने उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त भ्रमि (चक्कर आना), शक्ति का विनाश तथा खांसी, श्वास आदि रोगों का कारण भी मैथुन को सेवन माना गया है। [72]

**2.1(6) अकाल मृत्यु –** आचारांग भाष्य के अनुसार विषयों में अति आसक्त मनुष्य अपनी मनोगत स्त्री के न मिलने पर आत्महत्या कर लेता है। इसलिए विषयासक्ति को मृत्यु के समान

माना है। [73] यह भी स्पष्ट है कि विषय सेवन से व्यक्ति की शक्तियां क्षीण होती है। जिससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं और व्यक्ति समय से पूर्व ही मृत्यु का शिकार हो जाता है। ठाणं सूत्र में भी कामासक्ति को अकाल मृत्यु के सात कारणों में से एक माना है। [74] ठाणं वृत्तिकार ने काम विकार के दोषों का विस्तृत वर्णन करते हुए अंतिम परिणति मृत्यु बताया है। [75] उत्तराध्ययन सूत्र में भी कामासक्ति को मृत्यु का कारण माना है। [76]

सानुवाद व्यवहार भाष्य के अनुसार जिन गांवों और नगरों में स्त्रियां बलवान होती हैं अर्थात् कामासक्ति के कारण पुरुष कमजोर हो जाते हैं वहां अपर्व में मुंडन होता है अर्थात् अकाल मृत्यु होती है। [77] ज्ञानार्णव और भगवती आराधना में भी कामी पुरुष को मनोज्ञ स्त्री न मिलने पर विविध साधनों से आत्महत्या करने का उल्लेख मिलता है। [78]

**2.1(7) दण्ड** – कामासक्ति से अंध बना व्यक्ति राष्ट्रीय एवं सामाजिक नियमों का उल्लंघन करता है। भगवती आराधना में ऐसे व्यक्ति को राजपुरुषों अथवा उस स्त्री के संबंधियों द्वारा वध, बंधन आदि से दंडित होना बताया है। [79] सर्वार्थ सिद्धि में वध, बंधन के अतिरिक्त लिंग छेदन और सर्वस्व अपहरण आदि दंडों का भी उल्लेख किया गया है।[80]

**2.1(8) दु:ख** – सूत्रकृतांग सूत्र में काम भोगों की आसक्ति को दुख का हेतु कहा गया है। सूत्रकार कहते हैं कि प्राणी जितना अधिक काम भोगों में लिप्त रहता है वह उतना ही अधिक शोक करता है, क्रंदन करता है, विलाप करता है। [81]

ज्ञानार्णव में कहा गया है कि पिशाच, सर्प, रोग, दैत्य, ग्रह और राक्षस भी प्राणियों को उतनी पीड़ा नहीं देते जितनी काम की वेदना उसको पीड़ा दिया करती है–

**न पिशाचोरग रोगा न दैत्यग्रहराक्षसा: ।**
**पीडयन्ति तथा लोकं यथेयं मदनव्यथा।।** [82]

भगवती आराधना में सूत्रकार कहते हैं–

**जावइया फिर दोसा इहपरलोए दुहावहा होंति।**
**सव्वे वि आवहदि ते मेहुण सण्णा मणुस्सस्स।।**

अर्थात इस लोक और परलोक में दु:खदायी जितने भी दोष हैं, मनुष्य की मैथुन संज्ञा में वे सब दोष विद्यमान हैं।[83]

काम की वेदना के संबंध में सूत्रकार कहते हैं कि काम से पीड़ित मनुष्य का एक क्षण भी एक वर्ष की तरह बीतता है। उसके सब अंग वेदनाकारक होते हैं। [84] यहां भोग को त्रिकाल – भोग काल से पहले, भोग के समय और उसके बाद– दु:ख का कारण कहा गया है। [85]

सर्वार्थ सिद्धि में कारण में कार्य का उपचार करते हुए हिंसा आदि को दु:ख ही कहा

गया है।[86]

संबोधि में आचार्य महाप्रज्ञ ने विषयों की कामना को ही दु:ख का कारण बताया है। वे कहते हैं–

**कामानुगृद्धि प्रभवं हि दु:खं, सर्वस्य लोकस्य सदैवतस्य।**
**यत् कायिकं मानसिकंच किंचित्तस्यान्तमाप्नोति च वीतराग:।।**[87]

इसके अतिरिक्त संबोधि के सूत्रकार आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि भोग में आसक्त रहने वाला व्यक्ति कर्तव्य और अकर्तव्य के बारे में सोच नहीं पाता। कर्तव्य और अकर्तव्य को नहीं जानने वाला व्यक्ति अंत में दु:ख को पाता है।[88]

**2.1(9) तनाव -** आचार्य महाप्रज्ञ ने तनाव का एक प्रमुख कारण काम को माना है। उनके अनुसार इस दृश्य शरीर के मुख्य दो केंद्र हैं– ज्ञान केंद्र और काम केंद्र। नाभि से ऊपर मस्तिष्क तक का स्थान ज्ञान केंद्र है और नाभि से नीचे का स्थान काम केंद्र है। हमारी चेतना इन दो वृत्तियों के आसपास उलझी रहती है। जहां चेतना की सघनता ज्यादा होती है वहां चेतना का प्रवाह भी अधिक हो जाता है। चेतना के काम केंद्र तक ही सिमटे रहने से काम जन्य तनाव बहुत बढ़ जाते हैं। भय, क्रोध, ईर्ष्या, मान तथा अन्य कारणों से होने वाला तनाव कभी–कभी होता है किंतु काम जन्य तनाव निरंतर बना रहता है। यह तनाव अनेक समस्याओं को जन्म देता है।[89]

**2.2. मानसिक हानियां**

कामासक्ति की उत्पत्ति शरीर से पहले मन में होती है। यह मानसिक स्वास्थ्य पर भी अपना प्रभाव डालती है। कामासक्त व्यक्ति अनेक प्रकार की मानसिक मजबूरियों से ग्रस्त रहता है–

**2.2(1) परवशता -** आचारांग में कामासक्त व्यक्तियों के स्त्रियों के वशवर्ती होने के संकेत हैं।[90] सूत्रकृतांग में काम भोग के लिए भ्रष्ट हुए मनुष्यों की दुर्दशा का विस्तृत एवं दारुण वर्णन किया गया है। स्त्रियां उसे अनेक प्रकार की वस्तुएं लाने को मजबूर तो करती ही हैं। दास और पशु की तरह काम भी करवाती हैं। चाहते हुए भी मनुष्य उससे मुक्त नहीं हो सकता।[91] उत्तराध्ययन सूत्र में इसी को आगे बढ़ाते हुए कहा गया है कि स्त्रियां कामासक्त व्यक्ति को प्रलोभन में डालकर उसे दास की भांति नचाती हैं।[92] कामासक्त व्यक्ति अपनी विवशता को समझता हुआ भी उनके चंगुल से निकल नहीं पाता।

संघदास गणि विरचित व्यवहार भाष्य में कथानक के माध्यम से बताया गया है कि कामासक्ति के कारण राजा, पुरोहित आदि उच्च पदस्थ व्यक्ति भी स्त्रियों के वश में हो जाते हैं और अत्यंत घृणित कार्य करने को बाध्य हो जाते हैं।[93]

भगवती आराधना में विषयासक्त मनुष्य की परवशता का विस्तार से वर्णन किया गया

है। सूत्रकार कहते हैं –

**गायदिणच्चदिधावदि कसइ बवदि लवदि तह मलेई णरो।**
**तुण्णेइ वुणइ जाचइ कुलम्मि जादो वि विसयवसो।।911।।**
**सेवदिणियादिरक्खदि गोमहिसिमजावियं हयं हत्थिं।**
**ववहरदि कुणदि सिप्पं सिणेहपासेण दढबद्धो।। 912।।**

अर्थात् उच्च कुल में जन्मा मनुष्य भी विषयासक्त होकर गाता है, नाचता है, दौड़ता है, खेत जोतता है, अन्न बोता है, खेती करता है, अनाज निकालता है, कपड़े सीता है, बुनता है।

स्त्री के स्नेहजाल में दृढ़तापूर्वक बँधा मनुष्य राजा आदि की सेवा करता है, धान के खेत में लगी घास को उखाड़ता है। गाय, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़ा, हाथी आदि पालता है। व्यापार करता है, शिल्पकर्म–चित्रकला आदि करता है।

**2.2(2) अनिश्चितता –** मनुष्य भोग की अभिलाषा इंद्रिय सुखों के लिए करता है। लेकिन इंद्रिय सुख कभी निश्चित नहीं होते। प्रथम क्षण में जो सुख प्रतीत हो रहा है दूसरे ही क्षण में वही दु:ख का कारण बन जाता है। आचारांग के अनुसार काम से पीड़ित व्यक्ति इस अनिश्चितता को समझ नहीं पाता। वह दु:ख पाता हुआ भी सुख की लालसा में काम भोगों के अधीन हो जाता है।[94]

**2.2(3) चिंता –** आचारांग भाष्य के अनुसार अतिकाम सेवन और अवस्था प्राप्त होने पर शारीरिक शक्तियां क्षीण होने लगती हैं। विषयासक्त पुरुष विषय सेवन में असक्षम होने लगता है। यह देखकर वह चिंताग्रस्त हो जाता है।[95]

युवावस्था में भी कामासक्त मनुष्य किंकर्तव्यता (अब यह करना है, अब वह करना है इस चिंता) से आकुल रहता है। वह सुख का अर्थी होने पर भी दु:ख ही पाता है। आचारांग वृत्तिकार ने विषयासक्ति से मूढ़ बने व्यक्ति के दु:ख का चित्रण इस प्रकार किया है –

**सोउं सोवणकाले, मज्जण काले य मज्जिऊं लोलो।**
**जेमेऊं च वराओ, जेमणकाले न चाएइ।।**

वह आकुलतावश शयन काल में शयन, स्नान काल में स्नान और भोजनकाल में भोजन नहीं कर पाता।[96]

भगवती आराधना में कामग्रस्त व्यक्ति की चिंता का विशद वर्णन किया गया है। सूत्रकार कहते हैं कि वह अपनी हथेली को गाल पर रखकर दीन मुख से बहुत सी व्यर्थ चिंता किया करता है। काम चिंता का आंतरिक आतप इतना तीव्र होता है कि वह शीतकाल में भी पसीने से भीग जाता है। बिना कारण ही उसके अंग काँपते हैं।[97]

**2.2(4) मानसिक असमाधि (अशांति) –** आचारांग में अब्रह्मचर्य को मानसिक असमाधि का

हेतु कहा गया है। विषयासक्त व्यक्ति की कामनाओं की पूर्ति न होने से उसका मन अनेक प्रकार के मानसिक संक्लेशों से असमाधिस्थ हो जाता है। जैसे इष्ट विषय के अप्राप्त होने पर या उसके वियोग हो जाने पर वह खिन्न और क्रोधित होता है। पीड़ित होकर आंसू बहाता है। वह बाहर और भीतर में कायिक, वाचिक और मानसिक इन तीनों प्रकार से ताप का अनुभव करता है। [98] इसी ग्रंथ में आगे कहा गया है कि स्वजन आदि के संसर्ग से बद्ध तथा इंद्रिय विषयों की आसक्ति में निमग्न मनुष्य काम जनित अशांति का अनुभव करता है। [99] ठाणं सूत्र में भी मैथुन अविरमण रूप अब्रह्मचर्य को असमाधि का एक प्रकार माना गया है। [100]

**2.2(5) दुर्ध्यान –** ध्यान के चार भेदों में आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान अप्रशस्त ध्यान हैं। इन्हें दुर्ध्यान भी कहते हैं। ठाणं सूत्र में काम–विषयों को आर्त्तध्यान और रौद्र ध्यान का हेतु कहा गया है। [101]

**2.2(6) धृष्टता –** उत्तराध्ययन सूत्र में काम भोग में आसक्ति के कारण मनुष्य का धृष्ट होना बताया गया है। उदाहरण देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि धृष्ट व्यक्ति प्रेरणा देने पर भी नहीं मानता और इस प्रकार के कुतर्क प्रस्तुत करता है – 'मैं लोक समुदाय के साथ रहूँगा, जो गति उनकी होगी, वह मेरी भी हो जाएगी।' फलत: वह अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक उत्ताप से उत्तप्त रहता है। [102]

**2.2(7) पश्चात्ताप –** काम पूर्ति के लिए मनुष्य परिवार जन के लिए अनेक प्रकार के आरंभ समारंभ करता है। किंतु अर्जित कर्मों का जब उदयकाल आता है तो कोई सहारा नहीं मिलता। मनुष्य के हाथ केवल पश्चात्ताप ही लगता है। सूत्रकृतांग सूत्र में सूत्रकार ने इसका सुंदर चित्र खींचा है–

**मया परिजनस्यार्थेकृतं कर्म सुदारुणम्।**
**एकाकी तेनदह्येऽहं गतास्ते फल भोगिन:।।**

मैंने अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए कठोर कर्म अर्जित किए हैं। अब मैं अकेला ही उन कर्मों का परिणाम भोग रहा हूँ। परिणाम भोगने के समय वे कुटुंबी कहीं भाग गए। वे मेरा हिस्सा नहीं बंटा रहे हैं। [103]

दसवैकालिक सूत्र में ब्रह्मचर्य को छोड़कर अब्रह्मचर्य के मार्ग को अपनाने का फल पश्चात्ताप बताया है। [104]

**2.2(8) विषाद ग्रस्तता –** विषाद का अर्थ है संयम और धर्म के प्रति अरुचि की भावना उत्पन्न होना। दसवैकालिक सूत्र के व्याख्या साहित्य में कहा गया है कि इच्छाओं के वश होने वाला व्यक्ति बात–बात में शिथिल और कायर होकर विषाद ग्रस्त हो जाता है। [105]

**2.2(9) स्वाभिमान का नाश –** विषय लोलुप व्यक्ति विषयों की प्राप्ति के लिए अपने स्वाभिमान को भी खो देता है। ज्ञानार्णव में रूपक की भाषा में आचार्य शुभचंद्र कहते हैं–

**अपि मानसमुत्तुंनगश्रृंग्रवर्तिनाम्।**
**स्मरवीर: क्षणार्धेन विधत्ते मानखण्डनम्।। 11/33।।**

जो प्राणी मान रूप ऊँचे पर्वत के शिखर पर स्थित हैं उसके उस मान का खण्डन कामदेव रूपी सुभट क्षणभर में कर डालता है।

भगवती आराधना के अनुसार विषयों का लोभी मनुष्य कुलीन और बुद्धिमान होते हुए भी विषय सेवन के लिए ज्ञान और कुल आदि से अत्यंतहीन की भी सेवा करता है। [106]

**2.2(10) बुद्धि का नाश –** भगवती आराधना में कहा गया है कि कामी मनुष्य की वचन कुशलता और समझदारी नष्ट हो जाती है। शास्त्रों को समझने वाली तीक्ष्ण बुद्धि भी मंद हो जाती है। [107]

## 2.3. नैतिक एवं चारित्रिक हानियां

नैतिकता एवं चरित्र ही किसी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के विकास एवं सुरक्षा का मूलाधार होता है। अब्रह्मचर्य (कामासक्ति) एक ऐसा अभिशाप है जो नैतिकता एवं चरित्र की जड़ों को खोखला कर देता है। इससे अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं।

**2.3(1) व्रत भंग –** आचारांग सूत्र के अनुसार इंद्रिय विषयों की अधीनता से पीड़ित व्यक्ति ग्रहण किए हुए व्रतों का संपूर्ण पालन नहीं कर सकता। [108] ब्रह्मचर्य के नष्ट होने पर सभी व्रतों का विध्वंस हो जाता है। साधक सिंह वृत्ति से व्रतों को स्वीकार कर उन्हें पुन: भंग करता हुआ श्रृंगाल वृत्ति का आचरण करने लग जाता है। दसवैकालिक सूत्र में भी मैथुन को चारित्र भेद का आयतन (स्थान) माना है। [109]

सूत्रकार कहते हैं कि ब्रह्मचर्य व्रत के विनष्ट होने पर सभी व्रतों का विनाश हो जाता है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए चूर्णिकार कहते हैं कि ब्रह्मचर्य से विचलित होने वाला श्रामण्य को त्याग देता है। इसलिए उसके सारे व्रत टूट जाते हैं। कोई श्रमण श्रामण्य को न भी त्यागे, किंतु मन भोग में लगे रहने के कारण उसका ब्रह्मचर्य व्रत पीड़ित होता है। वह चित्त की चंचलता के कारण ऐषणा व ईर्या की शुद्धि नहीं कर पाता, इससे अहिंसा व्रत नष्ट होता है। वह इधर–उधर रमणियों की ओर देखता है, दूसरे पूछते हैं तब झूठ बोलकर दृष्टि दोष को छिपाना चाहता है, इस प्रकार सत्य व्रत का नाश होता है। तीर्थंकरों ने श्रमण के लिए स्त्री संग का निषेध किया है। स्त्री संग करने वाला उनकी आज्ञा भंग करता है, इस प्रकार अचौर्य व्रत का नाश होता है। स्त्रियों में ममत्व करने का कारण उसके अपरिग्रह व्रत का भी नाश हो जाता है। इस प्रकार एक ब्रह्मचर्य के नाश होने से सभी व्रतों का नाश हो जाता है। [110]

**2.3(2) हिंसा –** आचारांग के अनुसार हिंसा के दो कारण होते हैं। प्रमाद और विषयार्थिता। वस्तुत: विषयासक्ति से आक्रांत पुरुष प्रमत्त हो जाता है और मन, वचन और शरीर से षट्जीवनिकायों की बार–बार हिंसा करता है। वस्तुत: काम वासनाएं ही मनुष्य को हिंसा के लिए प्रेरित करती हैं। [111]

भगवती सूत्र में गणधर गौतम के यह पूछने पर कि मैथुन सेवन करने वाले के कैसा असंयम होता है? भगवान महावीर कहते हैं कि गौतम! जिस प्रकार कोई पुरुष तपी हुई शलाका से रुई से भरी हुई नालिका अथवा बूर से भरी हुई नालिका को ध्वस्त कर देता है। गौतम! मैथुन सेवन करने वाले जीव के ऐसा असंयम होता है। [112] वृत्तिकार ने स्त्री पुरुष के संभोग से स्त्री की योनि में उत्कर्षत: नौ लाख पंचेंद्रिय जीवों की हिंसा बताई है। [113]

भगवती जोड़ में जयाचार्य ने संभोग के समय असंज्ञी (अमनस्क) जीवों का पैदा होना बताया है किंतु उनकी संख्या का कोई निर्देश नहीं मिलता।[114] मुनिश्री सुमेरमलजी 'लाडनूं' ने यह संख्या असंख्य मानी है। [115]

कामासक्ति की तीव्र आग से व्यक्ति के हृदय की करुणा का स्रोत सूख जाता है। उपासकदशांग सूत्र के आठवें अध्ययन में श्रावक महाशतक की पत्नी रेवती द्वारा अपनी बारह सोतों की हत्या कर देना इसका ज्वलंत प्रमाण है। [116]

दसवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र में भी कामांधता को हिंसा का एक मूल कारण माना गया है। [117]

आगमेत्तर साहित्य में भी आचार्यों ने मैथुन से महाहिंसा का विस्तृत वर्णन किया है। स्याद्वाद् मंजरी के अनुसार स्त्रियों की योनि में दो इंद्रिय जीव उत्पन्न होते हैं, इन जीवों की संख्या एक, दो, तीन से लगाकर लाखों तक पहुंच जाती हैं। जिस समय पुरुष स्त्री के साथ संभोग करता है उस समय जैसे अग्नि से तपाई हुई लोहे की सलाई को बांस की नली में डालने से नली में रखे तिल भस्म हो जाते हैं, वैसे ही पुरुष के संयोग से योनि में रहने वाले संपूर्ण जीवों का नाश हो जाता है। इतना ही नहीं, पुरुष और स्त्री के एक बार संभोग करने पर स्त्री गर्भ में अधिक से अधिक नौ लाख पंचेद्रिय मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इन नौ लाख मनुष्यों में से एक या दो जीव जीते हैं बाकी सब जीव नष्ट हो जाते हैं। [118]

संबोधि में भी कहा गया है कि मनुष्य प्राप्त भोगों की रक्षा के लिए हिंसादि का आचरण करता है और उससे वह रौद्र बन जाता है। [119]

इनके अतिरिक्त प्राचीन कथा साहित्य तथा आधुनिक काल के सूचना तंत्र में काम वासना के आवेश में हत्याओं के दृष्टांत भरे हुए मिलते हैं।

**2.3(3) असत्य –** उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार जो व्यक्ति काम भोगों में आसक्त होता है

उसकी गति मिथ्या भाषण की ओर हो जाती है। वह केवल वर्तमान में आसक्त बन अतीत, अनागत जन्म तथा आत्मा आदि तत्त्वों की उत्थापना करने लग जाता है। वह कहता है – परलोक तो मैंने देखा नहीं, यह रति (आनंद) तो चक्षु–दृष्ट है– आंखों के सामने हैं। ये काम भोग हाथ में आए हुए हैं, भविष्य में होने वाले संदिग्ध हैं। कौन जानता है, है या नहीं? [120]

**2.3(4) विषयासक्ति – चोरी की प्रेरक –** आचारांग सूत्र में विषयासक्ति के परिणामों को बताते हुए कहा गया है कि विषय की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को धन की आवश्यकता होती है। इसलिए विषयासक्त मनुष्य समय–असमय का विवेक किए बिना निरंतर धन संग्रह में प्रयत्नशील रहता है। मूर्च्छा के कारण उसे उचित–अनुचित का भान नहीं रहता इसलिए वह चोरी–डकैती आदि कार्यों में भी प्रवृत्त हो जाता है। [121] उत्तराध्ययन सूत्र में भी तृष्णा की पूर्ति न होने पर आसक्त व्यक्ति द्वारा दूसरों की वस्तुओं को चुराने की बात कही गई है। [122]

**2.3(5) परिग्रह –** आचारांग सूत्र में विषयासक्ति को ही परिग्रह का हेतु मानते हुए कहा गया है कि इंद्रिय विषय ही लोभ के उदय में प्रेरक बनते हैं और लोभ के कारण ही इंद्रिय विषयों के प्रति प्रिय–अप्रिय की भावना पैदा होती है। इससे (प्रिय–अप्रिय की भावना से) मनुष्य माता–पिता आदि स्वजनों तथा नाना प्रकार के उपकरणों में आसक्त होकर परिग्रह रत हो जाता है। उन स्वजनों तथा उपकरणों के ममत्व के कारण वह रात–दिन कायिक, वाचिक और मानसिक परिताप से संतप्त रहता है। [123]

**2.3(6) निर्दयता –** धर्मामृत अणगार में यह कहा गया है कि विषयासक्ति दयाभाव का शत्रु है इसलिए विषयों की लालसा से व्यक्ति निर्दयी हो जाता है। [124]

## 2.4 व्यावहारिक हानियां

निश्चय की दृष्टि से तो अब्रह्मचर्य हेय है ही, व्यवहार की दृष्टि से भी वह उतना ही हेय है। अब्रह्मचर्य जन्य आसक्ति से मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में अनेक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। जैन आगमों में इन व्यावहारिक हानियों का भी विस्तृत वर्णन मिलता है–

**2.4(1) आज्ञा की हानि –** आचारांग सूत्र में साधना के क्षेत्र में तीर्थंकरों की आज्ञा को प्राथमिकता दी गई है। इस संदर्भ में यह बताया गया है कि तीर्थंकरों ने विषय–विकार से दूर रहकर आचार में रमण करने की आज्ञा दी है। आचार का फल है कर्म–निर्जरा। विषयलोलुप व्यक्ति सम्यक् आचरण और कर्म निर्जरा के प्रति गतिशील नहीं होता। इंद्रिय जय की साधना करते हुए भी वह इंद्रिय विषयों में आसक्त हो जाता है और पारिवारिक बंधन और आर्थिक अनुबंध को तोड़ नहीं पाता। आसक्ति के अंधकार में प्रविष्ट तथा कामासक्ति के दोषों से अनभिज्ञ व्यक्ति को आज्ञा का लाभ नहीं मिलता है। [125]

**2.4(2) निंदा व तिरस्कार की प्राप्ति –** आचारांग सूत्र में विषयासक्ति को लोक में निंदा और

तिरस्कार का कारण माना गया है। विशेषकर मुनियों के लिए कामनाओं की दासता साधारण लोगों के द्वारा भी निंदनीय है। 'ये मुनि जीवन को स्वीकार करके भी गृहस्थ जैसा आचरण करते हैं, इन्होंने वेश बदला है, वृत्तियां नहीं बदली।' ऐसे आक्षेपों के द्वारा उनका तिरस्कार होता है और उनकी निंदनीय प्रसिद्धि (बदनामी) भी होती है। [126]

कामांध गृहस्थ भी सामाजिक, पारिवारिक परंपराओं और मर्यादाओं का उल्लंघन करता है तो वह समाज में निंदित और तिरस्कृत तो होता ही है, दण्डित भी होता है।

ठाणं सूत्र में ब्रह्मचर्य से रहित पुरुष के तीन स्थान गर्हित बताए हैं–

(1) इहलोक (वर्तमान) गर्हित होता है।

(2) उपपात (देव लोक तथा नरक का जन्म) गर्हित होता है।

(3) आगामी जन्म (देव लोक या नरक के बाद होने वाला मनुष्य या तिर्यंच का जन्म) गर्हित होता है। [127]

नायाधम्मकहाओ में विषयासक्त व्यक्ति को निंदा व अवहेलना का पात्र बताया गया है। [128]

दसवैकालिक सूत्र के व्याख्याकार जिनदास गणि महत्तर ने भी अब्रह्मचर्य को घृणा प्राप्त कराने वाला माना है। [129]

भगवती आराधना और सर्वार्थ सिद्धि में भी अब्रह्मचर्य का परिणाम अपयश व गर्हा माना है। [130]

**2.4(3) कलह –** आचारांग सूत्र में अब्रह्मचर्य को कलह का प्रमुख कारण माना है। सूत्रकार के अनुसार काम की सिद्धि न होने से कामुक व्यक्ति को क्रोध आ जाता है। इससे वह कलह करने लग जाता है। [131] 'कलह के तीन कारण – जर, जोरू और जमीन' यह प्रसिद्ध लोकोक्ति भी इसी ओर इशारा करती है।

**2.4(4) वैर की वृद्धि –** आचारांग सूत्र में अब्रह्मचर्य के दुष्परिणाम के रूप में कहा गया है कि कामार्त्त पुरुष अपने वैर बढ़ाता है। [132] भगवती आराधना एवं सर्वार्थ सिद्धि आदि ग्रंथों में भी यही बात दोहराई गई है। [133]

**2.4(5) अशुभ संस्कारों की प्रगाढ़ता –** आचारांग सूत्र में काम के आसेवन से होने वाले दूरगामी दुष्परिणामों का मनौवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। काम के आसेवन से कामनाएं समाप्त नहीं होती हैं। एक इच्छा की पूर्ति के साथ दूसरी इच्छा प्रकट हो जाती है। इस प्रकार कामनाओं के चक्र का कभी अंत नहीं होता।

कामनाओं की पूर्ति के बाद भी कामनाएं फिर से क्यों उभरती हैं? इस जिज्ञासा का समाधान सूत्रकार इस प्रकार देते हैं – ऐसा 'अनुवृत्ति के सिद्धांत' के कारण होता है। इसके

अनुसार मनुष्य जो कार्य (काम सेवन) करता है, उसकी वृत्ति अर्थात् संस्कार मन में अंकित हो जाते हैं। वे संस्कार बार–बार प्रकट होते हैं और काम पूर्ति के साथ–साथ प्रगाढ़ होते जाते हैं। इस प्रकार काम के आसेवन से मनुष्य काम के अंतहीन चक्र में फंस जाता है। [134]

सूत्रकृतांग सूत्र में इसी तथ्य को आगे बढ़ाते हुए कहा गया है कि संस्कारों के प्रगाढ़ हो जाने पर उनसे मुक्त होना बहुत ही कठिन होता है। सूत्र में उदाहरण के साथ कहा गया है कि जैसे गाड़ीवान द्वारा प्रताड़ित और प्रेरित बैल अंत में अल्प प्राण हो जाता है तथा वह दुर्बल होकर गाड़ी को विषम मार्ग में नहीं खींच पाता, कीचड़ में फंस जाता है। इसी प्रकार काम के संत्रास से पीड़ित होकर कामुक व्यक्ति सोचता है कि मुझे आज या कल यह संस्तव (काम–भोग) छोड़ देना चाहिए। वह उस काम भोग को छोड़ना चाहते हुए भी कुटुंब पोषण आदि के दु:खों से प्रताड़ित और प्रेरित होकर उन्हें छोड़ नहीं पाता। प्रत्युत उस बैल की भांति अल्प प्राण होकर उनमें निमग्न हो जाता है। मनुष्य कामी होकर कहीं भी प्राप्त या अप्राप्त कामों की कामना न करें। [135]

**2.4(6) विघ्न बहुलता –** आचारांग सूत्र में काम को विघ्न–बहुल बताते हुए कहा गया है कि काम का संसार विघ्न बाधाओं से भरा हुआ होता है। काम और विघ्न दोनों साथ–साथ चलते हैं। मनुष्य सुख की इच्छा से काम का सेवन करना चाहता है पर काम के सेवन काल में अपहरण, रोग, मृत्यु आदि अनेक विघ्न बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं। मनुष्य इष्ट विषय चाहता है, पर प्रत्येक इष्ट विषय के साथ अनिष्ट विषय अनचाहा आ जाता है। काम अपूर्ण है इसलिए वे मनुष्य की इच्छा को तृप्त करने में सक्षम नहीं होते। फलत: उनका पार पाना संभव नहीं है। [136]

**2.4(7) महान अनर्थ –** आचारांग सूत्र के अनुसार विषयों की आसक्ति से मनुष्य मूढ़ बन जाता है। वह हित–अहित का चिंतन किए बिना ही कार्य करता है। फलत: वह अनेक प्रकार के महान अनर्थों को जन्म देता है। [137]

दसवैकालिक सूत्र में भी अब्रह्मचर्य को अधर्म का मूल और महान दोषों की राशि बताते हुए मैथुन वर्जन करने का उपदेश दिया गया है। [138]

उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार काम भोग की आसक्ति से व्यक्ति क्रोध, मान, माया, लोभ, पुरुष वेद, नपुंसक वेद तथा हर्ष, विषाद आदि अनेक प्रकार के विकारों का केंद्र बन जाता है। इनके दुष्परिणामों के कारण वह करुणास्पद, दीन, लज्जित और अप्रिय बन जाता है। इस प्रकार काम भोग व्यक्ति को इस प्रकार घेरता है कि उसकी संसार–मुक्ति दुर्लभ हो जाती है। कहा गया है कि काम–भोग अनर्थों की खान है। [139]

**2.4(8) संबंधों की उपेक्षा –** ज्ञानार्णव के अनुसार काम से पीड़ित मनुष्य पुत्रवधू, सास, पुत्री, उपमाता, गुरु की पत्नी, तपस्विनी और यहां तक कि तिर्यंचनी को भी भोगने की इच्छा करता है। [140] भगवती आराधना में कहा गया है कि मैथुन संज्ञा से मनुष्य मूढ़ बन जाता है। इससे वह

मातृवंश, पितृवंश, साथ में रहने वाले मित्रादि, धर्म और बंधु बांधवों की भी परवाह नहीं करता है।[141]

धर्मामृत अनगार में इसके कई पौराणिक उदाहरण भी दिए गए हैं। सूत्रकार कहते हैं कि कामी पुरुष ऐसा कोई काम नहीं है जिसे नहीं करता। पुराणों में कहा गया है कि काम से पीडित ब्रह्मा ने अपनी कन्या में, विष्णु ने गोपिकाओं में, महादेव ने शन्तनु की पत्नी में, इन्द्र ने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या में और चंद्रमा ने अपने गुरु की पत्नी में मन विकृत किया।[142]

इस प्रकार कामांधता से व्यक्ति पारिवारिक, सामाजिक संबंधों की उपेक्षा कर देता है।

**2.4(9) सद्गुणों का नाश –** ज्ञानार्णव के अनुसार काम से मुग्ध हुआ प्राणी चतुर होकर भी मूर्ख हो जाता है, क्षमाशील होकर भी दुष्ट बन जाता है। शूर होकर भी कायर जैसी चेष्टा करने लगता है, महान होकर भी हीनता का कार्य करता है, तीक्ष्ण होकर भी कुंठित हो जाता है तथा जितेंद्रिय होकर भी भ्रष्ट हो जाता है।[143]

योगशास्त्र में कहा गया है कि विषय–विकारों के चिंतन मात्र से महापुरुषों के भी सद्गुणों का नाश हो जाता है।[144] इसी प्रकार धर्मामृत अनगार कहता है कि जैसे आग तृणों के समूह को जलाकर भस्म कर देती है वैसे ही प्रज्ज्वलित काम विकार कुल, शील, तप, विद्या, विनय आदि गुणों के समूह को क्षण भर में नष्ट कर देता है।[145]

**2.4(10) जिम्मेदार पद के अयोग्य –** व्यवहार सूत्र में अब्रह्मचर्य सेवी को पद देने के संदर्भ में विधि–निषेध की विस्तृत चर्चा की गई है। इसके अनुसार साधु गण से पृथक् न होता हुआ तथा गणावच्छेदक, आचार्य और उपाध्याय यदि पद पर रहता हुआ अब्रह्मचर्य का सेवन करे तो उस कारण से उसे जीवन भर के लिए आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना तथा धारण करना नहीं कल्पता है।

यदि वह पद से हटकर अब्रह्मचर्य का सेवन करे तो तीन वर्ष पर्यन्त ये पद देना और धारण करना नहीं कल्पता है। तीन वर्ष व्यतीत होने के बाद, चौथे वर्ष में प्रविष्ट हो जाने पर यदि वे ब्रह्मचर्य में स्थित, उपशान्त–वासना विरहित, अब्रह्मचर्य से सर्वथा उपरत, प्रतिविरत एवं विकार शून्य हो जाए तो ही उन्हें आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना व धारण करना कल्पता है।[146]

**2.4(11) अभ्याख्यान –** काम वासना मनुष्य की व्यक्तिगत कमजोरी है। इसके आवेग में आकर वह स्वयं को बचाने के लिए दूसरों पर मिथ्या आरोप लगाने लग जाता है। भगवती आराधना में कहा गया है कि काम से उन्मत्त साधु, साधु रूप को त्याग कर अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सब साधुजनों का अवर्णवाद करता है, उन पर मिथ्या दोषारोपण करता है।[147]

## 2.5 भावात्मक हानियां

अब्रह्मचर्य व्यक्ति के भावात्मक स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। काम भोग की अत्यासक्ति से व्यक्ति भावात्मक दृष्टि से रुग्ण हो जाता है। जैन आगमों में अब्रह्मचर्य जनक भावात्मक हानियों का भी अनेक स्थलों पर वर्णन मिलता है –

**2.5(1) क्रोध –** ठाणं सूत्र में क्रोध की उत्पत्ति के दस कारणों में नौ कारण मनोज्ञ विषयों के अपहरण एवं अमनोज्ञ विषयों के उपहृत करने से संबंधित हैं। इससे स्पष्ट होता है कि क्रोध के कारणों में प्रमुख कारण विषय वासना ही है।[148]

ज्ञानार्णव एवं भगवती आराधना में सोदाहरण यह कहा गया है कि जैसे चोर जागते हुए मनुष्य पर कुपित होता है वैसे ही कामी पुरुष ब्रह्मचारी पर कुपित होता है।[149]

**2.5(2) अहंकार की वृद्धि –** उत्तराध्ययन सूत्र में विषयासक्त मनुष्य के अहंकार की वृद्धि में मनोज्ञ विषयों की सुलभता को भी एक कारण माना है। वह मन, वचन और काय से मत्त हो जाता है। व्याख्याकार ने उदाहरण देकर स्पष्ट करते हुए कहा है कि शरीर से मत्त होकर वह मानने लगता है कि 'मैं कितना रूप और शक्ति संपन्न हूँ।' वाणी का अहंकार करते हुए वह सोचता है – 'मैं कितना सु–स्वर हूँ, मेरी वाणी में कैसा जादू है।' मानसिक अहं के वशीभूत होकर वह सोचता है – 'ओह! मैं अपूर्व अवधारणा शक्ति से संपन्न हूँ।' इस प्रकार वह अपना गुणाख्यान करता है।[150]

**2.5(3) अविनय की वृद्धि –** आचारांग सूत्र में अब्रह्मचर्य को अविनय को बढ़ाने वाला बताया गया है। सूत्रकार कहते हैं कि विषयासक्त मनुष्य न तो चारित्र का सम्यक् पालन कर सकता है और न ही गुरुकुलवास के अनुशासन का सम्यक् पालन कर सकता है। वह उद्दण्ड और स्वेच्छाचारी हो जाता है। वह शरीर की विभूषा करने लगता है। दूसरों के द्वारा प्रेरित करने पर भी वह उनकी अवहेलना करते हुए कहता है कि 'यह तीर्थंकरों की आज्ञा नहीं है।' इस प्रकार उसका अविनय बढ़ता जाता है।[151]

**2.5(4) माया –** आचारांग सूत्र के अनुसार कामासक्त व्यक्ति अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए बहुत माया, छल, कपट करता है, इसलिए वह बहुमायावी होता है।[152] सूत्रकृतांग सूत्र में अब्रह्मचर्य के कारण किए जाने वाले मायाचार का बड़ा सुंदर एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। दुराचार का सेवन कर अपने पाप पर पर्दा डालने के लिए वह आत्म प्रशंसा करने लग जाता है। जब दूसरे उसे ऐसा न करने की प्रेरणा देते हैं तब भी वह भूल स्वीकार नहीं करता। वह कहने लगता है – 'मैं अमुक कुल में जन्मा हूँ।' 'मैं अमुक हूँ। क्या मैं ऐसा अकार्य कर सकता हूँ।' 'मैंने वायु से प्रेरित होने वाली कनकलता की भांति कामदेव की वश्यता से कंपित होने वाली भार्या को छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण की है। क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ।'

वह धमकी भरे शब्दों में कहने लगता है–

**यदि सम्भाव्यपापोऽहम पापेनापि किं मया।**
**निर्विषस्यादि सर्पस्य भृशमुद्विजते जनः।।**

यदि लोग मुझे पापी के रूप में देखते हैं तो भला मैं अपापी होकर भी क्या करूंगा। सर्प चाहे निर्विष ही क्यों न हो, लोग तो उससे भय खाते ही हैं। [153] सूत्रकृतांग सूत्र में माया की निष्पत्ति बताते हुए कहा गया है कि वह मायावी चाहकर भी अपने आपको छिपा नहीं सकता। व्यक्ति का आचरण स्वयं उसका स्वरूप प्रकट कर देता है, उसके लिए दूसरे की साक्षी आवश्यक नहीं होती है। इसके समर्थन में व्याख्याकार ने एक सुंदर श्लोक प्रस्तुत किया है –

**न य लोणं लोणिज्जइ, ण य तुप्पिज्जइ धयं व तेल्लं वा।**
**किह सक्को वंचेउं, अत्ता अणुहूय कल्लाणो।।**

अर्थात् नमक को नमकीन नहीं बनाया जा सकता। घी और तेल को स्निग्ध नहीं किया जा सकता है। जिस आत्मा ने अपने कल्याण का अनुभव कर लिया है उसे कैसे ठगा जा सकता है। [154]

उत्तराध्ययन सूत्र में भी इसी संदर्भ को आगे बढ़ाते हुए कहा गया है कि विषयासक्त व्यक्ति विषय की उपलब्धि के लिए किसी भी स्तर तक गिर सकता है। कामासक्ति एक ऐसा पाप है जो अन्य सभी पापों को जन्म देती है। उन्हीं में से एक पाप प्रमुख है माया मृषा। [155]

**2.5(5) अतृप्ति –** आचारांग सूत्र के अनुसार मनुष्य दुःख मुक्ति के लिए काम का आसेवन करता है। किंतु मूढ़ता के कारण वह नहीं समझ पाता कि इससे दुःख और उसके हेतुभूत काम– दोनों का पोषण होता है। [156] आचारांग के चूर्णिकार ने एक श्लोक में कहा है –

**नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां, नापगानां महोदधिः।**
**नान्तकृत सर्व भूतानां, न पुंसां वामलोचना।।**

जैसे अग्नि ईंधन से, महासमुद्र नदियों से और यमराज सभी प्राणियों को मारकर भी तृप्त नहीं होता, वैसे ही स्त्री पुरुषों से तृप्त नहीं होतीं। [157] मनोवैज्ञानिक भी इस बात की पुष्टि करते हैं।

इसी सूत्र में भोगों को अतृप्तिकर बताते हुए यह उदाहरण प्रस्तुत किया गया है कि यदि ये भोग जीवन का समाधान देते तो भरत आदि चक्रवर्ती राजा भी संयमी क्यों बनते। [158] सूत्रकृतांग सूत्र में भी काम भोग के सेवन करने से अतृप्ति की वृद्धि होना माना गया है। [159]

उत्तराध्ययन सूत्र में भी इसी का समर्थन करते हुए कहा गया है कि विषयासक्ति के कारण मनुष्य उनका उत्पादन, रक्षण और व्यापार करता है। उनके भोग से पूर्व, पश्चात् और भोग काल के समय में ये अतृप्ति की ही वृद्धि करते हैं। [160]

योगशास्त्र में कहा गया है कि जैसे घी की आहुति देने से अग्नि बुझती नहीं, बढ़ती है वैसे ही काम का उपशमन करने के लिए काम का सेवन करने से काम बढ़ता है। यह विपरीत प्रयास है। सूत्रकार के शब्दों में–

**स्त्री सम्भोगेन यः कामज्वरं प्रति चिकीर्षति।**
**स हुताशं घृताहुत्या, विध्यापयितुमिच्छति।। 2/81**

जो पुरुष विषय वासना का सेवन करके काम ज्वर का प्रतिकार करना चाहता है, वह घी की आहुति के द्वारा आग को बुझाने की इच्छा करता है।

संबोधि में आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि विषयों के सेवन से विषय वासना दृढ़ हो जाती है।[161]

**2.5(6) भय कारक –** आचारांग सूत्र में विषयाभिलाषा को महाभयंकर कहा गया है। क्योंकि यह प्रिय और मृदु उद्दीपनों से उद्दीप्त होती है और वेदना को उत्पन्न करती है। चूर्णिकार कहते हैं–

**एतो व उण्हतरीया अण्णा का वेयणा गणिज्जंति।**
**जं कामवाहिगहितो डज्झति किर चंदकिरणेहिं।।**

अर्थात् इससे अधिक उष्णतर, तीव्रतर अन्य कौन सी वेदना होगी कि कामरूपी व्याधि से ग्रस्त व्यक्ति चंद्रमा की शीतल किरणों से भी जल जाता है।[162]

कहा जाता है कि गधे को रात में नहीं दिखता और उल्लू को दिन में नहीं दिखता। परंतु जो व्यक्ति कामांध होता है उसे न दिन में दिखता है और न रात में दिखता है। वासना के आवेग में व्यक्ति बड़ा क्रूर हो जाता है। ऐसा कोई भी कार्य नहीं होता जिसे वह न कर सके। इसलिए दसवैकालिक सूत्र में भी अब्रह्मचर्य को महाभयानक कहा गया है।[163]

अब्रह्मचर्य उभयमुखी भय का कारक है। अर्थात् स्वयं के लिए भी और दूसरों के लिए भी भयप्रद है।

**2.5(7) अविवेक जनक –** अब्रह्मचर्य को अविवेक का जनक कहा गया है क्योंकि आचारांग सूत्र के अनुसार विषयासक्त मनुष्य मोहग्रस्त होता है, इससे वह करणीय और अकरणीय का विवेक नहीं कर पाता। उदाहरणतः स्त्रियां भोग सामग्री नहीं है फिर भी वह इन्हें भोग सामग्री मानता है।[164]

ज्ञानार्णव में इसका विस्तार देते हुए कहा गया है कि कामी व्यक्ति वस्तु स्वरूप को जानता हुआ भी नहीं जानता तथा देखता हुआ भी नहीं देखता। तात्पर्य यह है कि काम से पीड़ित मनुष्य की विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है।[165]

भगवती आराधना और सर्वार्थसिद्धि में भी कामुकता का परिणाम विवेकहीनता बताया

गया है। [166]

**2.5(8) अशुभ लेश्याओं का परिणमन –** विषयासक्त मनुष्य की भावधारा– आध्यवसाय सदा मलीन रहती है। इससे उसमें अशुभ लेश्याओं का परिणमन होता है। उत्तराध्ययन सूत्र में इन अशुभ लेश्याओं के कारण व लक्षणों का वर्णन किया गया है। [167]

**2.5(9) धर्म की हानि –** भगवती आराधना में कहा गया है कि काम से पीड़ित मनुष्य स्त्री आदि के स्मरण में ही रत रहता है। वह अन्यमनस्क होकर धर्म–कर्म भूल जाता है। वह धर्म संघ का विरोधी हो जाता है। [168]

**2.6 आध्यात्मिक हानियां –** अब्रह्मचर्य में रत व्यक्ति न आत्मा में रमण कर सकता है और न आत्म विकास की दृष्टि से कुछ कर सकता है। जैन आगमों में ब्रह्मचर्य से होने वाली अनेक आध्यात्मिक हानियों का उल्लेख अनेक दृष्टियों से किया गया है।

**2.6(1) ज्ञान का विपर्यास –** अध्यात्म के क्षेत्र में ज्ञान का महत्त्व सर्वोपरि है। ज्ञान से ही व्यक्ति हेय और उपादेय का विवेक कर पाता है। आचारांग सूत्र में विषयासक्ति को ज्ञान प्राप्ति के बाधक तत्त्व के रूप में माना गया है। [169] इसके अनुसार विषय लोलुप व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति के अयोग्य होता है। विषयासक्ति के कारण दुर्गति में भटकने से मनुष्य निरंतर मूर्च्छित बना रहता है। मूर्च्छित व्यक्ति धर्म को नहीं जान सकता है। [170]

इतना ही नहीं सूत्रकार कहते हैं कि विषयासक्ति से प्राप्त ज्ञान भी विपरीत हो जाता है। अर्थात् इंद्रिय विषयों का आसेवन सुख की अनुभूति पैदा करता है पर उसकी परिणति दु:ख में होती है। इसलिए वस्तुत: वह दु:ख ही है। अज्ञानी पुरुष इसे समझ नहीं पाता है। [171]

सूत्रकृतांग सूत्र के अनुसार काम भोगों में मूर्च्छित व्यक्ति भगवान महावीर द्वारा कथित समाधि मार्ग को जान ही नहीं सकता है। [172]

उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है कि काम में आसक्त व्यक्ति समाधि योग से भ्रष्ट होकर नरक गति में जाता है। वहाँ से निकलकर भी वह प्रचुर कर्मार्जन के कारण संसार में भ्रमण करता है। उसे बोधि की प्राप्ति अति दुर्लभ हो जाती है। [173]

भगवती आराधना के अनुसार काम से ग्रस्त मनुष्य तीनों लोकों के सारभूत श्रुतज्ञान के लाभ को भी छोड़ देता है। अर्थात् उसे शास्त्र स्वाध्याय में रस नहीं रहता, इससे उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है। [174]

**2.6(2) अत्राणता और अशरणता –** आचारांग सूत्र के अनुसार इंद्रिय विषयों के भोग के लिए मनुष्य धन का संचय करता है। पारिवारिक जनों में ममत्व रखता है। फिर भी यह सत्य है कि धन और परिवार त्राण और शरण नहीं दे सकता। शरीर के रोग ग्रस्त हो जाने पर या वृद्धावस्था आ

जाने पर कोई साथ नहीं देता। इस प्रकार विषय भोग में आसक्त मनुष्य का कोई त्राण नहीं होता, कोई शरण नहीं होती। [175]

**2.6(3) प्रमाद का जनक –** पांच आश्रव द्वारों में प्रमुख आश्रव है – प्रमाद अर्थात् आत्म विस्मृति। दसवैकालिक सूत्र में सभी प्रमादों का मूल कारण अब्रह्मचर्य को 'प्रमाद का जनक' कहा गया है। [176] यह चरित्र भंग का प्रमुख कारण है। चूर्णिकार अगस्त्य सिंह के अनुसार अब्रह्म सेवन से प्रमत्त जीव का सारा आचार और व्यवहार प्रमादमय और भूलों से परिपूर्ण बन जाता है। [177]

**2.6(4) दु:ख –** आचारांग सूत्र में कामासक्ति को दु:ख का मुख्य हेतु बताया गया है। इसमें दो प्रकार से दु:ख की उत्पत्ति बताई है –

**(1) सुख का अभाव –** कामासक्त पुरुष कभी तृप्ति का अनुभव नहीं करता। वह सदा शोक, भय आदि मोहात्मक भावों से अभिभूत होने के कारण वास्तविक सुख से वंचित रहता है। [178]

**(2) दु:ख का उपादान –** कामासक्त मनुष्य क्रूर बन जाता है। क्रूर कर्म दुराचरण है दु:ख का हेतु है। परंतु मूर्च्छा के कारण वह सुख पाने के लिए दुराचरण करता है फलत: वह सुख की अर्थी बनकर दु:ख ही पाता है। [179]

आसक्त पुरुष राग–द्वेष से बद्ध होकर विषयों के प्रति खींचे चले जाते हैं। इस आसक्ति के चक्र में वे बार–बार दु:ख पाते हैं। वे –

* पदार्थ संग्रह के प्रति सचेष्ट रहते हैं।
* पदार्थ के संरक्षण और उपयोग की चिंता करते हैं।
* उसके व्यय और वियोग में दु:ख का अनुभव करते हैं।
* पदार्थ के भोग से अतृप्ति की वेदना को प्राप्त करते हैं।

वे अतृप्ति के दोष से दु:खी होकर लोभ से आकुल हो जाते हैं और दूसरों के पदार्थों की चोरी करते हैं। इस प्रकार वे दु:खों के अंतहीन चक्र में फंस जाते हैं। [180]

सूत्रकृतांग सूत्र में अब्रह्मचर्य से होने वाले दु:खों का विस्तृत एवं हृदयस्पर्शी विवेचन किया गया है। कामासक्त पुरुष को मिथ्यादृष्टि, अनार्य, पार्श्वस्थ आदि कहते हुए कहा गया है कि वे भोगों में वैसे ही आसक्त रहते हैं जैसे भेड़ अपने बच्चों में। [181] जिस प्रकार जाल में फंसी हुई मछलियां विषादग्रस्त होती हैं वैसे ही कामासक्त व्यक्ति शोक करता है, क्रन्दन करता है परिताप करता है और विलाप करता है। [182]

चूर्णिकार ने एक श्लोक के द्वारा उपरोक्त दु:खों का चित्र प्रस्तुत किया है–

**हतं मुष्टिभिराकाशं, तुषाणां कुट्टनं कृतम।**

**यन्मया प्राप्य मानुष्यं, सदर्थेनादरः कृतः।।**

अर्थात् मैंने मनुष्य जन्म पाकर यदि उत्तम अर्थ के प्रति आदर प्रदर्शित नहीं किया, मेरा यह आचरण वैसा ही हुआ जैसे मैंने मुक्कों से आकाश को पीटा और तुषों का खलिहान रचने का स्वांग किया है।[183]

सूत्रकृतांग सूत्र में कामासक्त होकर व्यभिचार करने वाले व्यक्ति को मिलने वाले दण्ड का दारुण वर्णन किया गया है जैसे उसके हाथ पैर काटे जाते हैं, चमड़ी छीली जाती है, मांस निकाला जाता है, उन्हें आग में जलाया जाता है, उसके शरीर को काटकर नमक छिड़का जाता है अथवा उसके नाक–कान काटे जाते हैं, कंठ छेदन किया जाता है।[184] इसके अतिरिक्त परस्त्रीगामी जीवों के वृषण छेदे जाते हैं तथा अग्नि में तपे लोहस्तंभों का आलिंगन करने के लिए बाध्य किया जाता है।[185]

ठाणं सूत्र में अब्रह्मचर्य की अभिलाषा मात्र करने को 'दुःख शय्या' कहकर उद्धृत किया है। सूत्र की भाषा में 'कोई व्यक्ति मुण्ड होकर आगार से अनगारत्व में प्रव्रजित होकर देवताओं तथा मनुष्यों के काम भोगों का आस्वादन करता है। स्पृहा करता है, प्रार्थना करता है, अभिलाषा करता है वह उसका आस्वाद करता हुआ, स्पृहा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ, अभिलाषा करता हुआ, मानसिक उतार–चढ़ाव और विनिघात को प्राप्त होता है।'[186]

दसवैकालिक सूत्र के अनुसार भी काम का निवारण नहीं करने वाला पग–पग पर विषादग्रस्त होता है।[187]

उत्तराध्ययन सूत्र में काम भोगों को दुःख कर तो कहा ही है।[188] यहाँ तक कहा गया है कि काम भोगों की अभिलाषा भी दुःख का कारण है।[189]

**2.6(5) उपसर्ग –** ठाणं सूत्र में कुशील प्रतिसेवन के लिए उपसर्ग की बात कही गई है।[190]

**2.6(6) दुर्गति –** चार गतियों में नरक व तिर्यंच गति में अति वेदना होने से उसे दुर्गति कहा जाता है। आचारांग सूत्र के अनुसार विषयासक्त मनुष्य हिंसा–परिग्रह आदि कारणों से नरक में उत्पन्न होता है। वहाँ से निकल कर वह तिर्यंचगति में जन्म लेता है।[191] ठाणं सूत्र में दुर्गति में जाने के कारणों में काम–भोग के परिज्ञात नहीं होने[192] तथा मैथुन को माना है।[193]

दसवैकालिक सूत्र में भी कामासक्त व्यक्ति के लिए सुगति दुर्लभ बताया गया है।[194]

उत्तराध्ययन सूत्र में भी अनेक स्थलों पर काम–भोगों को दुर्गति दायक बताया गया है।[195]

वहाँ यहाँ तक कहा गया है कि काम भोगों की इच्छा करने वाले उनका सेवन न करते हुए भी दुर्गति को प्राप्त होते हैं।[196] इस संदर्भ में सुख बोधा टीका में एक श्लोक प्रस्तुत किया गया

है –

**वरि विसु भुंजिउ मं विसय, एक्कसि विसिण मरंति।**
**नर- विसयामिस मोहिया बहुसा नरइ पड़ति।।**

अर्थात् विष पीना अच्छा है, विषय नहीं। मनुष्य विष से एक ही बार मरते हैं, किंतु विषय रूपी मांस में मोहित मनुष्य अनेक बार मरते हैं, नरक में जाते हैं।

व्यवहार भाष्य में अतृप्त काम के दु:ख से मरने पर व्यंतर देवी बनने का उल्लेख मिलता है।[197] ज्ञानार्णव, योगशास्त्र, भगवती आराधना आदि ग्रंथों में भी कामासक्ति को नरक गति आदि दुर्गति का कारण भूत मानते हुए इसमें होने वाले कष्टों का विस्तृत वर्णन मिलता है।[198]

**2.6(7) भव वृद्धि (जन्म मरण की परंपरा बढ़ती है)** – आचारांग सूत्र के अनुसार इंद्रिय विषय दो प्रकार का होता है – इष्ट और अनिष्ट। इष्ट विषय के प्रति राग और अनिष्ट विषय के प्रति द्वेष होता है। इस प्रकार विषयों से कषाय बढ़ता है और कषाय से संसार बढ़ता है – जन्म मरण की परंपरा बढ़ती है। अर्थात् विषयासक्ति के कारण जीव चतुर्गत्यात्मक संसार में भ्रमण करता रहता है।[199]

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र के अनुसार जो मनुष्य शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध द्रव्यों में आसक्त, अनुरक्त, गृद्ध, मुग्ध होता है वह इस संसार में अनुपवर्तन करता रहता है।[200] उत्तराध्ययन सूत्र में भी काम भोगों को संसार मुक्ति का विरोधी बताया गया है।[201]

ज्ञानार्णव में पौद्गालिक भोगों की आकांक्षा को भोगार्त्तध्यान कहा है, इसे संसार परिभ्रमण का कारण बताया गया है।[202]

**2.6(8) आश्रव/ कर्म बंधन का हेतु –** जीव की आध्यात्मिक दृष्टि से सबसे बड़ी हानि कर्म बंधन होती है। इसके कारण ही वह जन्म मरण चक्र में गोते खाता रहता है। आत्म स्वरूप को पाने में कर्म ही बाधक होते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से भी कर्म ही जीव को दु:ख देने वाला होता है। जैन आगमों में अब्रह्मचर्य को कर्म बंधन का मुख्य स्रोत बताया गया है।

आचारांग सूत्र में भगवान महावीर का उदाहरण देते हुए कहा गया है कि उन्होंने भी स्त्रियों को सभी कर्मों का आवाहन करने वाली जानकर उनका परिहार किया।[203] सूत्रकृतांग सूत्र में भी काम भोग को कर्म बंधन का कारक बताते हुए आश्रवों में स्त्री प्रसंग को प्रधान आश्रव कहा गया है।[204] ठाणं सूत्र में पाप कर्म के आयतन के रूप में मैथुन को लिया गया है।[205]

भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञति) में भगवान महावीर जयंती श्राविका के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं – इंद्रिय विषयों में आसक्त जीव आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की शिथिल बंधन में बंधी हुई कर्म प्रकृतियों को गाढ़ (दृढ़) बंधन वाली करता है। अल्पकालिक स्थिति वाली प्रकृतियों को दीर्घकालिक स्थिति वाली करता है, मंद अनुभाग वाली प्रकृतियों को

तीव्र अनुभाग वाली करता है, अल्प प्रदेश वाली प्रकृतियों को बहुत प्रदेश वाली करता है और आयु कर्म को कदाचित बांधता है एवं कदाचित नहीं बांधता। असातावेदनीय कर्म का बार–बार उपार्जन करता है, तथा अनादि अनवदग्र–अनंत दीर्घमार्ग वाले चतुर्गति वाले संसार रूपी अरण्य में बार–बार पर्यटन –परिभ्रमण करता है। [206]

उत्तराध्ययन सूत्र में श्लेष्म में फंसी मक्खी का उदाहरण देते हुए भोगासक्ति से कर्म बंधन बताया गया है। [207]

**2.6(9) धर्म से पतन** – दसवैकालिक निर्युक्ति में काम–भोगों को धर्म से पतन करने वाला बताया गया है –

**विसयसुहेसु पसत्तं अबुहजणं कामरागपडिबद्धं।**
**उक्कामयंति जीवं धम्माओ तेण-ते कामा।।**

अर्थात् विषय सुख में आसक्त और काम राग में प्रतिबद्ध जीव को काम धर्म से गिराते हैं। [208]

**2.6(10) महामोहनीय कर्म का बन्धन –** दशाश्रुतस्कंध की नवम दशा में महामोहनीय कर्म बंधन के कारणों का वर्णन है। उसमें यह उल्लेख है कि जो वस्तुत: बाल ब्रह्मचारी नहीं होता हुआ भी अपने आप को बाल ब्रह्मचारी घोषित करता है तथा जो ब्रह्मचारी नहीं होता हुआ भी 'मैं ब्रह्मचारी हूँ' ऐसा कथन करता है वह महामोहनीय कर्म का बंधन करता है। [209] काम भोगों की तीव्र अभिलाषा करना भी महामोहनीय कर्म बंध का कारण बताया गया है। [210]

## 3.0 निष्कर्ष

व्यक्ति किसी भी साधना के प्रति तभी आकर्षित होता है जब उसमें कोई लाभ प्रतीत हो। जैन आगमों में ब्रह्मचर्य का उपदेश मात्र प्रतिपादित नहीं है। बल्कि इससे होने वाले लाभ की भी विस्तृत विवेचना मिलती है। लौकिक और पारलौकिक दोनों ही दृष्टियों से ब्रह्मचर्य बहुत लाभप्रद है। यहां ब्रह्मचर्य से होने वाले लाभ को अनेक विभागों – व्यावहारिक, मानसिक, भावात्मक और आध्यात्मिक– में व्यवस्थित किया गया है।

ब्रह्मचर्य साधना से शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ लोक में विश्वास और सम्मान की पात्रता भी मिलती है। यह सर्वमंगलकारी है, अहिंसा आदि सभी व्रत, नियम आदि इसी में समाहित हैं इसलिए एक ब्रह्मचर्य के पालन से साधना के सभी आयामों की आराधना हो जाती हैं।

मानसिक चंचलता और संस्कारों का अभाव आज की प्रमुख समस्या है। ब्रह्मचर्य इसका एक मात्र समाधान है। ब्रह्मचर्य से व्यवहारिक और मानसिक लाभ के अतिरिक्त भावात्मक लाभ भी बहुत हैं। इससे साधक को आत्मिक सुख की उपलब्धि होती है। लेश्याओं में परिस्कार होता हैं। इतना ही नहीं नैष्ठिक रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करने से अनेक ऋद्धियां भी उपलब्ध

होती हैं। ऐसा साधक अनुग्रह और निग्रह करने में सक्षम होता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी ब्रह्मचर्य के लाभ की शृंखला कम नहीं है। इससे संवर और निर्जरा दोनों की उपलब्धि होती है। इससे साधना की क्षमता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। ब्रह्मचर्य का साधक भवान्तर में या तो देव या मनुष्य गति को पाता है या सभी कर्मों को क्षय कर मोक्ष में जाता है।

ब्रह्मचर्य साधना में गहरा उतरने के लिए ब्रह्मचर्य के लाभ को जानने के साथ अब्रह्मचर्य से होने वाली हानियों को जानना भी जरूरी है। यह अनुभव सिद्ध है कि जिसका त्याग किया जाता है उसके दोषों का वास्तविक ज्ञान होने पर ही त्याग टिक सकता है। जैन आगमों में अब्रह्मचर्य जन्य हानियों का भी विस्तृत एवं हृदयस्पर्शी विवेचन किया गया है। इन्हें भी अनेक विभागों में विभक्त किया गया है।

अब्रह्मचर्य से प्रथम व प्रत्यक्ष हानि शारीरिक है। मैथुन सेवन से वीर्य का विनाश होता है। वीर्य का विनाश होने पर शरीर निर्बल हो जाता है। इससे रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति कम हो जाती है। फलत: वह अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। इससे समय पूर्व बुढ़ापा और अकाल मृत्यु तक हो जाती है।

मानसिक असमाधि का प्रमुख कारण भी अब्रह्मचर्य को माना जाता है। काम–भोगों की आसक्ति में डूबा व्यक्ति परवशता, चिंता आदि मानसिक कठिनाइयों से जूझता रहता है। उसकी बुद्धि, ज्ञान और स्वाभिमान का नाश हो जाता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अब्रह्मचर्य न केवल एक समस्या है बल्कि अनेक समस्याओं का स्रोत भी है। यह सभी पापों का जनक है। इसके चक्रव्यूह में फंसकर मनुष्य इहभव और परभव दोनों में ही दु:ख पाता है। नैतिक, चारित्रिक, व्यावहारिक, भावात्मक और आध्यात्मिक जीवन के हर आयाम में इससे अनेक हानियां हैं।

चूंकि ब्रह्मचर्य एक अतिसंवेदनशील साधना है। व्रत स्वीकार करने के बाद भी विभिन्न निमित्तों के कारण व्रत भंग का खतरा बना रहता है। इसलिए इसकी सुरक्षा के उपाय बहुत जरूरी है। आगामी चतुर्थ अध्याय में आगमों में वर्णित ब्रह्मचर्य सुरक्षा के उपायों का विवेचन किया जा रहा है।

## 4.0 संदर्भ


1. ठाणं 5/13
2. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/145
3. दसवेआलियं 1/1
4. वही 1/1 का टिप्पण संख्या 4
5. वही 1/1 का टिप्पण संख्या 5
6. वही 1/1 का टिप्पण संख्या 6
7. ज्ञाताधर्मकथा पृ/. 141 (अ) सू./ 72
8. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/141 णिस्संकियं
9. वही 2/4/143
10. वही पृ. 712
11. नायाधम्मकहाओ 17/ निगमन गाथा 25
12. उत्तरज्झयणाणि
13. योगसूत्र 2/104
14. ज्ञानार्णव 11/2
15. पातञ्जल योग दर्शन 2/37
16. योग सूत्र 2/105
17 प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/141
18. उत्तराध्ययन /32/107
19. संबोधि/ 2/16
20. वही 16/12
21. वही 16/15
22. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/145
23. उत्तराध्ययन /34/29,30
24. (अ) सूत्रकृतांग (1)/3/77
    (ब) वही (1)/10/ 13
25. सूयगडो (1)/ 4/51 का टिप्पण संख्या 134
26. ठाणं 10/13
27. उत्तराध्ययन /13/17; 16/15
28. जैन लक्षणावली एवं जैनेंद्र सिद्धांत कोश में उद्धृत –
    ति.प. 4/1058– 1060

ति.वा. 3/36,3
चा.सा. पृ. 100(223/3)

29. संबोधि 15/45
30. सूयगडो (1) /6/28
31. दसवेआलियं 2/5
32. उत्तराध्ययन 32/34,100
33. भगवती आराधना 25/2/05
34. (अ) उत्तरज्झयणाणि 21/32,33
    (ब) वही 30/2
35. वही 21/63-67
36. ठाणं 5/129, समवाओ 5/6
37. ठाणं 5/164(टिप्पण संख्या 115)
38. उत्तरज्झयणाणि 12/46
39. वही वृहद्वृत्ति, पत्र 373 (उत्तरा 12/46 का टिप्पण संख्या 48)
40. वही 29/ 32
41. दसवेआलियं 9(1)/13
42. ठाणं 5/15
43. ठाणं 5/17
44. ठाणं 3/136
45. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/141, 4,144
46. वही (2)/4/7
47. औपपातिक सूत्र 2/8(पृ. 139)
48. दसवेआलियं 3/14,4/27
49. उत्तरज्झयणाणि 7/26,27
50. सूयगडो (1)/2/56
51. वही (1)/3/78
52. वही (1)/15/9
53. ठाणं 2/40
54. ठाणं 3/88
55. नायाधम्मकहाओ 17/ निगमन गाथा 25
56. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/144,141

57. दसवेआलियं 3/14,15
58. उत्तरज्झयणाणि 29/ 33, 31/14
59. वही 16/ 17
60. योग सूत्र 2/104
61. उत्तरज्झयणाणि 32/18
62. आचारांग भाष्यम् 6 (1)/17
63. उत्तरज्झयणाणि 14/14,15
64. आचारांग भाष्यम् 2(1)/6,9
65. ठाणं 5/105
66. ठाणं 5/105 के टिप्पण संख्या 72 में उद्धृत
    ठाणं वृत्ति
67. आचारांग भाष्यम् 2(4)/75
68. ठाणं 9/13
69. दसवे नि. गा 165 (दसवेआलियं 2/1 टिप्पण संख्या 3 में उद्धृत)
70. उत्तरज्झयणाणि 5/11
71. ज्ञानार्णव 13/12
72. योग शास्त्र 2/104
73. आचारांग भाष्यम् 2(4)/12
74. ठाणं 7/72
75. ठाणं 9/13/ टिप्पण से उद्धृत
76. उत्तरज्झयणाणि 14/14,15
77. सानुवाद व्यवहार भाष्य / 937
78. (अ) ज्ञानार्णव 11/39
    (ब) भगवती आराधना 883
79. भगवती आराधना 921
80. सर्वार्थ सिद्धि 7/8/347/11
81. सूयगडो (1)/2/61
82. ज्ञानार्णव 11/38
83. भगवती आराधना 877
84. वही 880
85. वही 919,920

86. सर्वार्थ सिद्धि 7/10
87. संबोधि 2/15
88. वही 2/3
89. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा / 11,12
90. आचारांग भाष्यम् 2/90
91. सूयगडो (1) 4/34–49
92. उत्तरज्झयणाणि 8/18
93. सानुवाद व्यवहार भाष्य पृ. 136 (परिशिष्ट 8/47)
94. आचारांग भाष्यम् 2(4)/90
95. वही 2 (5)/134
96. वही 2(4)/134 के भाष्य में उद्धृत – आ.वृ.पं. 125
97. भगवती आराधना /881
98. आचारांग भाष्यम् 2(4)/124
99. वही 6(5)/109, 110
100. ठाणं 10/14
101. ठाणं 4/61, 63
102. उत्तराध्ययन 5/7 (टिप्पण 12)
103. सूयगडो (1) 4/ टिप्पण संख्या 27
104. दसवेआलियं
105. दसवेआलियं 2/1 टिप्पण संख्या 5 में उदधृत
(अ) अ.चू.पृ 41
(ब) जि. चू. पृ .78
(स) हा.टी.पृ. 89
106. भगवती आराधना / 902
107. वही / 906
108. आचारांग भाष्यम् 6(5)/94,95
109. दसवेआलियं 6(4) / टिप्पण संख्या 36 में उद्धृत
110. वही 5 (1) टिप्पण संख्या 48 में उद्धृत
111. आचारांग भाष्यम् 1(4)/69; 4 (1)/ 7,8; 2 (1)/ 3; 2(4)/100; 4(4)/47,48,49;
4 (7) 172; 5(1)2,6,10,15

112. भगवई 2/5/89
113. वही 2/5/89 भाष्य में उद्धृत
भ.वृ 2/5/89
114. वही 2/5/87-88 के भाष्य में उद्धृत भ.जो 1/40/30
115. अवबोध / 93
116. उपासक दशांग /8
117. (अ) दसवेआलियं 6/15
(ब) दसवै जि. चु. पृ. 219 'घोरं नाम निरणमुक्कोसं, कहं?
अबंभ पवत्तो हि ण
किंचि तं अकिच्चं जं सो न भणई।' (दसवै 6/115 का टिप्पण सं. 23 में उद्धृत)
(स) उत्तरज्झयणाणि 5 /4,8
(द) वही 32/26
118. जैन सिद्धान्त कोश में उद्धृत - स्या. मं./23/276/15
(3 से 7) (भाग-4, पृ- 532)
119. संबोधि 16/14
120. उत्तरज्झयणाणि 5/5:6
121. आचारांग भाष्यम् 2 (1)/3;5(1)/ 10
122. उत्तरज्झयणाणि 32/30
123. आचारांग भाष्यम् 2 (1) 2,3, 5 (1)/10
124. धर्मामृत अनगार 4/14
125. आचारांग भाष्यम् 4(4)/45
126. वही 6(4)/86
127. ठाणं 3/315
128. नायाधम्मकहाओ 17 / निगमन गाथा 36
129. दसवेआलियं 6/15, टिप्पण संख्या 25
130. भगवती आराधना 901
सर्वार्थसिद्धि 7/8/347/11
131. आचारांग भाष्यम् 5 (4) 86, 5(3)/44
132. वही 2(5)/134
133. भगवती आराधना 921

सर्वार्थसिद्धि 7/8/347/11

134. आचारांग भाष्यम् 2(5)/126,135
135. सूयगडो (1)/2/59, 60
136. आचारांग भाष्यम् 6(2)/34
137. वही 2(1)/3
138. दसवेआलियं 6/16
139. उत्तरज्झयणाणि 32/102, 103; 14/13
140. ज्ञानार्णव 11/44
141. भगवती आराधना 893
142. धर्मामृत अनगार 4/68
143. ज्ञानार्णव 11/40
144. योग शास्त्र 2/83
145. धर्मामृत अनगार 4/70
146. व्यवहार सूत्र 3/82-86
147. भगवती आराधना / 900
148. ठाणं 10/6
149. ज्ञानार्णव 11/43

भगवती आराधना 896

150. उत्तरज्झयणाणि 5/10 (टिप्पण संख्या 16)
151. आचारांग भाष्यम् 6(4)/78, 79
152. वही 2(5)/134
153. सूयगडो (1) /4 (टिप्पण संख्या 56 में उद्धृत)
154. वही (1) /4 (टिप्पण संख्या 54 में उद्धृत)
155. उत्तरज्झयणाणि 32/30
156. आचारांग भाष्यम् 2(4)/97,48
157. वही में उद्धृत (आ. चूर्णि, पृ. 75)
158. वही 3(2) /44
159. सूयगडो (1) /4/50 के टिप्पण में उद्धृत)
160. उत्तरज्झयणाणि 32/28:30
161. संबोधि 5/26
162. आचारांग भाष्यम् 2(4)/99 में उद्धृत - आचारांग चूर्णि पृ. 65

163. दसवेआलियं 6/15 (टिप्पण संख्या 24)
164. आचारांग भाष्यम् 2(4)/91,92
165. ज्ञानार्णव 11/27
166. भगवती आराधना 917, 918
सर्वार्थसिद्धि 7/8/347/11
167. उत्तरज्झयणाणि 34/21,22,23
168. भगवती आराधना 878, 897
169. आचारांग भाष्यम् 5(3)/58
170. वही 2(4)/93
171. वही 2(6)/157:186
172. सूयगडो (1) /2/58
173. उत्तरज्झयणाणि 8/14:15
174. भगवती आराधना 898
175. आचारांग भाष्यम् 2(1)/23, 2(4)/79, 5(1)/16
176. दसवेआलियं 6/15
177. आ.चू.पृ. 219 (दसवेआलियं 6/15 टिप्पण संख्या 24 में उद्धृत)
178. आचारांग भाष्यम् 5(1)/3
179. वही 5(1/6)
180. वही 5(1)/14; 5(3)/44; 2(5)/138,139; 2/124
181. सूयगडो (1) /3/73
182. वही (1) /3/13; (1) /2/61; (1)/3/74
183. सूयगडो चूर्णि पृ. 98 (सू (1) /3/74 के टिप्पण में उद्धृत)
184. सूयगडो (1)/4/21,22
185. वही (1)/5, आमुख पृ. 234 में उद्धृत चूर्णि, पृष्ठ 133
186. ठाणं 4/450
187. दसवेआलियं 2/1
188. उत्तरज्झयणाणि 13/16; 14/13; 6/11
189. वही 32/19
190. ठाणं 4/599
191. आचारांग भाष्यम् 2(4) 92: 4(2)/ 17
192. ठाणं 5/14: 2/448

193. ठाणं 5/16
194. दसवेआलियं 4/26
195. उत्तरज्झयणाणि 5/7 12,13 (टिप्पण संख्या 12), 6/6,7,16; 8/14; 13/34; 18/25
196. वही 9/53 टिप्पण संख्या 45
197. व्यवहार भाष्य, पृष्ठ 139 कथा संख्या 59
198. ज्ञानार्णव 33/35,36,52,53,70
योगशास्त्र 2/82
भगवती आराधना 899,901
199. आ.भा 5 (1) /7,8; 5(3)/48; 5(6)/121; 6(4)/86; 2(1)/1(पाद टिप्पण)
3(1)/14; 5(1)/18; 2(5)/126
200. नायाधम्मकहाओ 17 / निगमन गाथा 36
201. उत्तरज्झयणाणि 14/13
202. ज्ञानार्णव 23/32
203. आचारांग भाष्यम् 3(2)/31,9(1)/17
204. (अ) सूयगडो (1)/15/8 (टिप्पण संख्या 19)
(ब) वही (1)/4/50
205. ठाणं 5/128, 9/26
206. भगवती (व्याख्या प्रज्ञाप्ति ) श. 12 उ. 2/21 (1,2)
207. उत्तरज्झयणाणि 8/5; 5/10
208. दसवेआलियं 2/1 टिप्पण संख्या 3 में उद्धृत नि. गाथा 164
209. दशाश्रुतस्कन्ध / नवम दशा / 11,12
210. वही / 33

# अध्याय चतुर्थ
# ब्रह्मचर्य : सुरक्षा के उपाय

## अध्याय चतुर्थ

## 4. ब्रह्मचर्य : सुरक्षा के उपाय

### रूपरेखा

**1.0 ब्रह्मचर्य सुरक्षा का महत्त्व**

**2.0 ब्रह्मचर्य सुरक्षा के उपाय**

2.1. विविक्तशयनासन
  2.1.1. विविक्तशयनासन के उद्देश्य
2.2. स्त्री संस्तव एवं संवास का वर्जन
  2.2.1. स्त्री संस्तव के दोष
  2.2.2. स्त्री चरित्र (स्वभाव) का वर्णन
2.3. स्त्री कथा का वर्जन
  2.3.1. स्त्री कथा का अर्थ
  2.3.2. स्त्री कथा के प्रकार
  2.3.3. स्त्री कथा के दोष
2.4. स्त्री के स्थानों का सेवन वर्जन
2.5. स्त्री के मनोरम इन्द्रियों को न देखना (दृष्टि संयम), न चिन्तन करना (मनःसंयम / मनोनिग्रह)
2.6. प्रणीत रस वर्जन
2.7. अतिमात्रा में आहार निषेध
2.8. पूर्व भुक्त भोगों का स्मरण न करना (स्मृति संयम)
2.9. शब्दादि इन्द्रिय विषयों एवं श्लाघा का अनुपाती (आसक्त) न होना।
2.10. सात और सुख में प्रतिबद्ध न होना
2.11. श्रोतेन्द्रिय संयम
2.12. विभूषा वर्जन
2.13. वाणी संयम
2.14 ग्रामानुग्राम विहार

2.15. प्राण विसर्जन
2.16 संघबद्ध साधना
2.17 सम्यक् प्रवृत्तियों में व्यस्तता
2.18 हास्य वर्जन
2.19 निमित्तों से बचाव

**3.0. सुरक्षा उपायों की उपेक्षा के परिणाम**

**4.0. निष्कर्ष**

**5.0. संदर्भ**

## 4. ब्रह्मचर्य : सुरक्षा के उपाय

### 1.0. ब्रह्मचर्य सुरक्षा का महत्त्व

साधना के विभिन्न आयामों में ब्रह्मचर्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और संवेदनशील आयाम है। जिस प्रकार एक छोटे से छिद्र की उपेक्षा कर देने से बड़े–बड़े बांध विनष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार विषय–वासना, को उद्दीप्त करने वाले छोटे से निमित्त की उपेक्षा करने से ब्रह्मचर्य विनष्ट हो सकता है। इसलिए जैन आगमों में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के संदर्भ में बहुत अधिक सजगता रखी गई है। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के अनेक सूत्र स्थान–स्थान पर मिलते हैं। इतना ही नहीं ठाणं[1], समवायांग[2], तथा आवश्यक सूत्र [3] में 'ब्रह्मचर्य की गुप्तियों' के रूप में नौ–नौ नियमों का क्रमबद्ध और व्यवस्थित रूप से उल्लेख है। इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र में सोलहवां अध्ययन 'ब्रह्मचर्य समाधिस्थान' के नाम से है, जिसमें ब्रह्मचर्य समाधि (सुरक्षा) के दस स्थान का वर्णन है। मूलाचार [4] एवं अणगार धर्मामृत [5] में भी कुछ साम्य एवं कुछ विविधता के साथ ब्रह्मचर्य सुरक्षा के उपाय निर्दिष्ट किए गए हैं।

### 2.0. ब्रह्मचर्य सुरक्षा के उपाय

ब्रह्मचर्य साधना में विघ्न बाधाओं से सुरक्षा के लिए लिंग भेद नहीं होता। पुरुष और स्त्री दोनों ही इसकी साधना करते हैं। प्राचीन शास्त्रों में पुरुष वर्ग को ही सामने रखकर बातें कही गई हैं। जहां पुरुष के लिए स्त्रियों से बचाव आदि का उल्लेख है। वहाँ स्त्रियों के लिए पुरुष को जानना चाहिए। जैन आगमों में मुख्यतः मुनियों को ही सम्बोधित किया गया है। इसलिए बहुत सी बातें मुनियों से ही संबंधित हैं। फिर भी एक सद्गृहस्थ के लिए ब्रह्मचर्य की साधना में ये नियम उतने ही उपयोगी हैं।

**2.1.0. विविक्तशयनासन** – प्रायः सभी संबंधित ग्रंथों में ब्रह्मचर्य का प्रथम सुरक्षा चक्र है– विविक्तशयनासन। इसका अर्थ है ऐसे स्थान में निवास नहीं करना जो स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त हो। कामवासना का प्रारंभ संसर्ग से होता है। इसलिए सूत्रकृतांग सूत्र में एक मुनि के लिए गृहस्थों के साथ एक स्थान पर रहने का निषेध है। [6] स्थानांग, समवायांग, दसवैकालिक, उत्तराध्ययन एवं आवश्यकवृत्ति आदि ग्रंथों में भी विविक्तशयनासन को ब्रह्मचर्य सुरक्षा स्थान में प्रथम स्थान पर रखा गया है।[7]

उत्तराध्ययन सूत्र में केवल स्त्री आदि से आकीर्ण स्थान ही नहीं, स्त्रियों के मनोरम चित्रों से युक्त, माल्य व धूप से सुवासित, किवाड़ सहित सजे–धजे स्थानों को भी काम–राग की वृद्धि करने वाला मानते हुए न केवल वहां निवास करने का बल्कि वहां निवास करने की अभिलाषा करने तक का निषेध है।[8] सूत्रकार मानते हैं कि यद्यपि तीन गुप्तियों से गुप्त मुनियों को विभूषित देवियां भी विचलित नहीं कर सकती फिर भी ऐसे स्थानों में इन्द्रियों पर नियंत्रण करना

दुष्कर होता है, इसलिए भगवान महावीर ने एकान्त हित की दृष्टि से विविक्त वास को प्रशस्त कहा है।[9] इसी सूत्र में विविक्तशयनासन की उपयोगिता को सोदाहरण बताया गया है कि जैसे औषध लेने से रोग आक्रान्त नहीं करता वैसे ही इससे साधक के चित्त को राग रोग आक्रांत नहीं करता,[10] काम बीज अनुकूल वातावरण मिलने पर ही अंकुरित होता है। विविक्त शयनासन इसे प्रारम्भिक स्तर पर ही रोक देता है।

बृहत्कल्प सूत्र में गृहस्थों से युक्त आवास में साधु–साध्वियों के प्रवास की विधि–निषेध इस प्रकार बताई गई है –

- साधु–साध्वियों को गृहस्थ के आवासयुक्त उपाश्रय में प्रवास करना नहीं कल्पता हैं।[11]
- केवल स्त्री निवास युक्त उपाश्रय में साधुओं का रहना नहीं कल्पता हैं।[12]
- केवल पुरुषों के आवास युक्त उपाश्रय में साधुओं का रहना कल्पता हैं।[13]
- साध्वियों को केवल पुरुष निवास युक्त उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता हैं।[14]
- केवल स्त्री के आवास युक्त उपाश्रय में साध्वियों को रहना कल्पता हैं।[15]

इस सूत्र में विविक्तशयनासन के क्षेत्र को और भी विस्तृत करते हुए 'प्रतिबद्ध शय्या' प्रवास स्थल में भी साधुओं का प्रवास कल्पनीय नहीं माना गया है।[16]

प्रतिबद्ध शय्या को स्पष्ट करते हुए चूर्णिकार कहते हैं कि मध्यवर्ती दीवार तथा काष्ठफलक आदि के साथ गृहस्थ के घर से जुड़ा हुआ उपाश्रय प्रतिबद्ध शय्या कहलाता है। 'द्रव्य प्रतिबद्ध' और 'भाव प्रतिबद्ध' के भेद से इसके दो रूप मिलते हैं। दीवार आदि के व्यवधान से युक्त आवास द्रव्य प्रतिबद्ध कहलाता है। भाव प्रतिबद्ध से तात्पर्य उस आवास से है, जिससे भावों में विकृति आना, मानसिक विचलन आशंकित हो। चूर्णिकार ने इसके चार भेद किए हैं :–

1. जहां गृहवासी स्त्री–पुरुषों का एवं साधु का प्रस्रवण स्थान एक हो।
2. जहां घर के लोग एवं साधुओं के बैठने का स्थान एक हो।
3. जहां स्त्रियों का रूप सौन्दर्य आदि दृष्टिगोचर होता हो।
4. जहां स्त्री की भाषा, आभरणों की झंकार तथा काम विलासान्वित गोप्य शब्दादि सुनाई पड़ते हों।[17]

इसी सूत्र में प्रतिबद्ध मार्ग युक्त उपाश्रय अर्थात् ऐसा उपाश्रय जिसका मार्ग गृहस्थ के घर के बीच से होकर हो तो साधुओं के लिए वहां रहना अविहित बताया गया है।[18]

**2.1.1 विविक्तशयनासन के उद्देश्य** – आगमों में अनेक स्थल पर विविक्तशयनासन के उद्देश्य का विवेचन निम्नलिखित रूप में मिलता है–

**(1) वेश्याओं से सम्पर्क वर्जन** – ब्रह्मचर्य के लिए वेश्याओं का सम्पर्क बड़ा दुर्गति कारक होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य की साधना करने वालों के लिए वेश्याओं से संग परिचय करना निषिद्ध माना गया है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में वेश्याओं के अड्डे में निवास का वर्जन किया गया है।[19] दसवैकालिक सूत्र में यहाँ तक कहा गया है कि ब्रह्मचारी को वेश्या बाड़े के समीप भी नहीं जाना चाहिए। इस ग्रंथ में इस निषेध के पीछे बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण प्रस्तुत किया है। वेश्याएं विभिन्न उपायों से लोगों को आकर्षित करने का प्रयास करती है। इससे ब्रह्मचारी का मन साधना मार्ग से विचलित हो सकता है। विचलित मन वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य साधना में और इसके फल में संदेह होने लगता है। वह सोचने लगता है– 'अब्रह्मचर्य में तो प्रत्यक्ष सुख है पर ब्रह्मचर्य से मोक्ष या स्वर्ग का सुख है या नहीं? मैं ब्रह्मचर्य का पालन कर कहीं ठगा तो नहीं जा रहा?' इस प्रकार संकल्प विकल्प में पड़ा ब्रह्मचारी साधना मार्ग से पतित हो सकता है। साधक का ब्रह्मचर्य भले ही नष्ट न हो, उसका चित्त असमाधिस्थ तो हो ही सकता है। इस निषेध का दूसरा कारण यह भी है कि जो ब्रह्मचारी बार–बार वेश्याओं से सम्पर्क करता है या वेश्या बाड़े की तरफ जाता है तो लोगों के मन में उसके चरित्र पर सन्देह होने लगता है क्योंकि सभ्य समाज में इसे अच्छा नहीं माना जाता है।[20]

**(2) बुरी संगत का वर्जन** – व्यक्ति के चिंतन एवं चरित्र पर उसकी संगति का बहुत गहरा असर पड़ता है। आचारांग सूत्र के अनुसार संसार में विभिन्न प्रकार के दार्शनिक मान्यताओं के लोग रहते हैं। कुछ दार्शनिकों के विचार मिथ्यात्व, कषाय और विषयों से अभिभूत होते हैं। वैसे लोगों के सम्पर्क से साधक उनके विचारों से प्रभावित होकर विषयों में लिप्त हो सकता है। इसलिए यहाँ इस प्रकार की कुसंगतियों से बचाव का सुझाव दिया गया है।[21]

सूत्रकृतांग सूत्र में काम–भोग में गृद्ध कुछ अनार्यों द्वारा स्त्री–परिभोग को निर्दोष स्थापित करने का कुतर्क दिया गया है। वे कहते हैं–

(1) स्त्री–परिभोग गांठ या फोड़े को दबाकर मवाद निकालने जैसा निर्दोष है।[22]

(2) स्त्री परिभोग मेंढे के जल पीने की क्रिया की तरह निर्दोष है। इसमें दूसरे को पीड़ा नहीं होती और स्वयं को भी सुख की अनुभूति होती है।[23]

(3) जैसे कपिंजल पक्षिणी आकाश से नीची उड़ान भरकर धीमे से चोंच में जल पी लेती है वैसे ही स्त्री परिभोग निर्दोष है।[24]

ऐसे तर्कों को सुनकर नए साधकों के मन में अनुकूल उपसर्ग उत्पन्न हो सकते हैं, इसलिए सूत्रकृतांग सूत्र में कुशील संसर्ग का वर्जन ब्रह्मचर्य सुरक्षा की दृष्टि से किया गया है।[25]

सूत्रकृतांग के निर्युक्तिकार ने संसर्ग का अर्थ इस प्रकार किया है। कुशील के साथ आना–जाना, उन्हें देना, उनसे लेना, उनके साथ प्रवृत्ति करना।[26]

उत्तराध्ययन सूत्र में उन्मार्गगामी व्यक्तियों से दूर रहने को कहा गया है। [27]

ज्ञानार्णव में भी ब्रह्मचर्य व्रत को सुरक्षित रखने के लिए बुरी संगत से बचना आवश्यक माना गया है। सूत्रकार के शब्दों में –

**ब्रह्मचर्य विशुद्धयर्थं संगः स्त्रीणां न केवलम् ।**
**त्याज्यः पुंसामपि प्रायो विटविद्यावलम्बिनाम् ।।**

ब्रह्मचर्य व्रत को निर्मल रखने के लिए केवल स्त्रियों के ही संसर्ग का परित्याग करना आवश्यक नहीं है, बल्कि काम–कला का आलम्बन करने वाले दुराचारियों के संसर्ग का परित्याग करना भी आवश्यक है।[28]

कुसंगत के परिणाम को बताते हुए सूत्रकार कहते हैं –

**मदान्धैः कामुकैः पापैर्वञ्चकैर्मार्गविच्युतैः ।**
**स्तब्धलुब्धाधमैः सार्धं संगो लोकद्वयान्तकः ।।**

जो मद से अन्धे हो रहे हैं, विषयी हैं, पापी हैं, धूर्त हैं, सन्मार्ग से भ्रष्ट हैं, अभिमानी हैं, लोभी हैं और निकृष्ट आचरण करने वाले हैं, उनके साथ किया गया संसर्ग दोनों ही लोकों को नष्ट करने वाला होता हैं। [29]

भगवती आराधना में भी ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए कुसंगत के वर्जन पर बल दिया गया है। सरल दृष्टान्त देते हुए सूत्रकार कहते हैं :–

**जइ भाविज्जइ गंधेण मट्टिया सुरभिणा व इदरेण।**
**किह जोएण ण होज्जो परगुणपरिभाविओ पुरिसो।।**

यदि सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध के संसर्ग से मिट्टी भी सुगन्धित अथवा दुर्गन्धयुक्त हो जाती है तो संसर्ग से पुरुष पार्श्वस्थ आदि के गुणों से तन्मय क्यों न होगा ? [30]

**पुनश्चः**

**सुजणो वि होइ लहुओ दुज्जणसंमेलणाए दोसेण।**
**माला वि माल्लगरूया होदि लहु मडयसंसिट्ठा।।**

दुर्जनों की गोष्ठी के दोष से सज्जन भी अपना बड़प्पन खो देता है। फूलों की कीमती माला भी मुर्दे पर डालने से अपना मूल्य खो देती है।[31]

यदि आत्मशक्ति के बल पर किसी साधक पर कुसंगत का असर न भी पड़े तो भी लोक व्यवहार में यह अच्छा नहीं लगता। सूत्रकार के शब्दों में –

**दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि संजदो वि दोसेण।**
**पाणागारे दुद्धं पियंतओ बंभणो चेव।।**

दुर्जन के संसर्ग से लोग संयमी के भी सदोष होने की शंका करते हैं। जैसे मद्यालय में बैठ कर दूध पीने वाले ब्राह्मण के भी मद्यपायी होने की शंका होती है।[32]

**2.2.0. स्त्री संस्तव एवं संवास वर्जन**

विविक्तशयनासन से यह सहज लाभ होता है कि साधक स्त्रियों के साथ संस्तव से बच जाता है। संस्तव का अर्थ है परिचय– घनिष्ठता। सूत्रकृतांग के चूर्णिकार ने संस्तव का अर्थ परिचय किया है। उनके अनुसार स्त्रियों के साथ उल्लाप, समुल्लाप करना, उन्हें कुछ देना, उनसे कुछ लेना आदि संस्तव के ही प्रकार हैं।[33] सूत्रकृतांग वृत्ति में संस्तव का अर्थ परिचय, घनिष्ठता किया है।[34] यहाँ चूर्णिकार ने संस्तव का अर्थ हास्य, कन्दर्प क्रीड़ा आदि भी किया है।[35] चूर्णिकार एवं वृत्तिकार ने संस्तव के और भी अर्थ दिए हैं जैसे स्त्री के घर बार–बार जाना, उनके साथ बातचीत करना, उसको आसक्त दृष्टि से देखना आदि। [36] सूत्रकृतांग चूर्णिकार ने संवास का अर्थ इस प्रकार किया है – स्त्रियों के साथ एक घर में या स्त्रियों के निकट रहना संवास है। [37]

जैन आगमों में अनेक स्थानों पर स्त्रियों के साथ संस्तव एवं संवास का निषेध विभिन्न कारणों के साथ किया गया है। आचारांग सूत्र में ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए एकान्त में स्त्रियों के समीप बैठने, एकान्त में उनके साथ बातचीत या विचार–विमर्श करने का निषेध किया गया है।[38]

सूत्रकृतांग सूत्र के चूर्णिकार ने स्त्री के साथ संवास के दोषों को स्पष्ट करते हुए इसके निषेध को समर्थन दिया है। उनके अनुसार काठ से बनी जड़ स्त्री के साथ भी ब्रह्मचारी का रहना उचित नहीं तो भला सचेतन स्त्री के साथ संवास कैसे उचित हो सकता है। उन्होंने इसके चार दोष बताए हैं। (1) परिचय बढ़ता है (2) आलाप–संलाप बढ़ता है (3) अशुभ भाव उत्पन्न होते हैं (4) संयम से विमुख होने वाली कथाएं होने लगती हैं।[39]

सूत्रकृतांग सूत्र में ब्रह्मचारी के लिए दासियों के साथ सम्पर्क से भी बचने का निर्देश है। दासियां घर के काम के क्लेश से उतप्त रहती हैं। सूत्रकार उनसे भी बचने का निर्देश देते हैं तो फिर स्वतंत्र और अत्यंत सुखमय जीवन बिताने वाली स्त्रियों के सम्पर्क का तो कहना ही क्या?[40] इस सूत्र में शंकनीय स्त्रियां ही नहीं अशंकनीय स्त्रियों के साथ भी संस्तव का वर्जन किया गया है।[41] इसकी व्याख्या में चूर्णिकार कहते हैं–

**मातृभिर्भगिनीभिश्च नरस्यासंभवो भवेत्।**
**बलवानिन्द्रिय ग्रामः पण्डितोऽप्यत्र मुह्यति।।**

अर्थात् यह सच है कि माता, भगिनी आदि के साथ मनुष्य का कुसंबंध नहीं होता फिर भी इन्द्रियां बलवान होती हैं। उनके समक्ष पंडित भी मूढ़ हो जाते हैं। [42]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में ऐसे समस्त स्थान जहां स्त्रियों का आवागमन हो और जहां रहने से दुर्ध्यान उत्पन्न हो उसे त्याग देने का निर्देश है।[43]

दसवैकालिक सूत्र में सामान्यतः सुन्दर एवं युवा स्त्री ही नहीं बल्कि जिसे देखकर भय और जुगुप्सा के भाव उत्पन्न हों वैसी विभत्स एवं वृद्धा स्त्री का भी वर्जन करने को कहा गया है –

**हत्थपायपडिच्छिन्नं कण्णनासविगप्पियं।**
**अवि वाससईं नारिं बंभयारी विवज्जए।।**

जिसके हाथ और पैर कटे हुए हों, जो कान–नाक से विकल हों, वैसी सौ वर्ष की वृद्धा नारी से भी ब्रह्मचारी दूर रहे।[44]

उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचारी के लिए स्त्री आदि से युक्त स्थान का वर्जन करते हुए ऐसे स्थानों में रहने का निर्देश है जो स्त्रियों के उपद्रव से रहित हो।[45]

ज्ञानार्णव के चौदहवें अध्याय तथा भगवती आराधना में भी ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए स्त्री संस्तव वर्जन का विस्तृत विवेचन किया गया है। भगवती आराधना में स्त्री संस्तव का वर्जन करते हुए स्त्री वाचक शब्दों की निरुक्ति का सुन्दर विवेचन किया गया है –

1. वधू – क्योंकि वह पुरुष का वध करती है।
2. स्त्री – क्योंकि वह मनुष्य में दोषों को एकत्र करती है।
3. नारी – मनुष्य का ऐसा 'अरि' – शत्रु दूसरा नहीं है, इसलिए उसे नारी कहते हैं।
4. प्रमदा – पुरुष को सदा प्रमत्त करती है इसलिए उसे प्रमदा कहा गया है।
5. विलया – पुरुष के गले में अनर्थ लाती है अथवा पुरुष को देखकर विलीन होती है इसलिए उसे विलया कहते हैं।
6. युवती या योषा – पुरुष को दुःख से योजित करती है, इसलिए उसे युवती या योषा कहते हैं।
7. अबला– उसके हृदय में धैर्यरूपी बल नहीं होता, अतः वह अबला कही जाती है।
8. कुमारी– कुमरण का कारण उत्पन्न करती है, इसलिए वह कुमारी है।
9. महिला – पुरुष पर आल–दोषारोपण करती है, इसलिए वह महिला है।[46]

इस सन्दर्भ में आचार्य तुलसी का यह मानना है कि एकान्तवासी मनुष्य भी स्वप्न में या मानसिक वृत्ति से दूसरों के साथ संपर्क जोड़ कर भ्रष्ट हो जाता है तो स्त्री के संसर्ग में रहना

तो खतरे से खाली नहीं हैं।[47]

**2.2.1 स्त्री संस्तव के दोष** – ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए स्त्रियों से सम्पर्क वर्जन अत्यावश्यक है क्योंकि यह एक बड़ा खतरा है। शास्त्रकारों ने स्त्रियों से अमर्यादित सम्पर्क के अनेक दोष दर्शाए हैं, जैसे–

**(1) शंका** – सूत्रकृतांग सूत्र के वृत्तिकार ने स्त्री संस्तव का एक व्यावहारिक दोष दर्शाया है। उनका कथन है यद्यपि पुत्री, पुत्रवधू आदि के प्रति ब्रह्मचारी का चित्त कलुषित नहीं होता, फिर भी उनसे बढ़ता हुआ सम्पर्क देखकर दूसरे व्यक्तियों के मन में ब्रह्मचारी के चरित्र के प्रति शंका उत्पन्न हो सकती है। इतना ही नहीं, लोग उस स्त्री के प्रति भी दोष की शंका करने लग जाते हैं।[48]

**(2) अप्रियता एवं कोप** – सूत्रकृतांग सूत्र के अनुसार स्त्री के साथ संपर्क करने से उसके रिश्तेदारों में अप्रिय भाव उत्पन्न होता है। वे कुपित भी हो जाते हैं।[49]

**(3) लोक निन्दा** – स्त्री के अति सम्पर्क से लोक में ब्रह्मचारी की निन्दा भी होने लगती है। सूत्रकृतांग सूत्र के वृत्तिकार ने इस संदर्भ में एक श्लोक उद्धृत किया है।

**मुण्डं शिरो वदन मेतदनिष्टगन्धं,**
**भिक्षाशनेन भरणं च हतोदरस्य।**
**गात्रं मलेन मलिनं गतसर्वं शोभं,**
**चित्रं तथापि मनसो मदनेऽस्ति वाञ्छा।।**

अर्थात् सिर मुंडा हुआ है। मुंह से दुर्गन्ध आ रही है। घर–घर में भिक्षा मांग कर यह अपना पेट भरता है, सारा शरीर मैल से मलिन और कुरूप हो रहा है। इतना होने पर भी आश्चर्य है कि इसके मन में काम भोग की अभिलाषा उठ रही है।[50]

**(4) स्त्री के वशीभूत होना** – सम्पर्क बढने से आसक्ति बढती है। आसक्ति से व्यक्ति स्त्री के वशीभूत हो जाता है। दसवैकालिक सूत्र की चूर्णि में स्त्री संसर्ग एवं उसके परिणाम का क्रमबद्ध निरूपण हुआ है। उनके अनुसार संसर्ग का प्रारंभ दर्शन से और उसकी परिसमाप्ति प्रणय से होती है। पूरा क्रम इस प्रकार है– दर्शन से प्रीति, प्रीति से रति, फिर विश्वास और प्रणय।[51]

सूत्रकृतांग सूत्र में स्त्री के वशीभूत हो जाने वाले पुरुष की दारुण दशा का विस्तृत वर्णन मिलता है। वृत्तिकार ने इसका सुन्दर चित्र खींचा है। वृत्तिकार के शब्दों में–

**ददाति प्रार्थितः प्राणान्, मातरं हंति तत्कृते।**
**किं न दद्यात् न किं कुर्यात्स्त्रीभिरभ्यर्थितो नरः।।**

याचना करने पर वह अपने प्राण को भी दे देता है। प्रिया के लिए मां की हत्या भी कर

डालता है। स्त्रियों के द्वारा मांगने पर वह क्या नहीं देता या क्या नहीं करता? (सब कुछ कर डालता है।) [52]

**ददाति शौचपानीयं, पादौ प्रक्षालयत्यपि।**
**श्लेष्माणमपि गृह्णाति, स्त्रीणां वशंगतो नरः।।**

वह प्रिया को शौच का पानी ला देता है। उसके पैर पखारता है, उसके श्लेष्म को भी हाथ में ले लेता है। (उसे हाथों में थुकाता है) [53]

सूत्रकार कहते हैं कि दास अपने स्वामी के आदेश का पालन उद्विग्नता से भय के कारण करता है किन्तु स्त्री का वशवर्ती मनुष्य स्त्री के आदेशों को अनुग्रह मानता है और उसके निष्पादन में प्रसन्नता का अनुभव करता है। वृत्तिकार कहते हैं–

**यदेव रोचते मह्यं, तदेव कुरुते प्रिया।**
**इति वेत्ति न जानाति, तत्प्रियं यत्कारोत्यसौ।।**

मेरी स्त्री मुझे जो रुचिकर है वही करती है, ऐसा वह मानता है किन्तु वह यह नहीं जानता कि वह स्वयं वही करता है जो अपनी प्रिया को रुचिकर हो। [54]

सूत्रकृतांग वृत्ति में स्त्रीवशवर्ती मनुष्य को पशु से भी उपमित किया गया है। पशु कर्तव्य और अकर्तव्य के विवेक से शून्य होता है। उसमें हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करने का विवेक नहीं होता। वैसे ही स्त्रीवशवर्ती मनुष्य भी विवेक शून्य होता है। जैसे पशु आहार, भय, मैथुन और परिग्रह की संज्ञा में ही रत रहता है, वैसे ही वह पुरुष भी कामभोग में ही रत रहता है इसलिए वह पशुतुल्य होता है। [55]

**(5) व्रतों को खतरा** – दसवैकालिक सूत्र एवं उत्तराध्ययन सूत्र दोनों सूत्रों में उदाहरण के साथ कहा गया है कि जैसे चूहों और मुर्गों के बच्चे को बिल्ली से भय होता है वैसे ही ब्रह्मचारी को स्त्रियों से भय है। ब्रह्मचर्य की साधना सर्वाधिक संवेदनशील है। स्त्री संस्तव एवं संवास से इन्द्रियों पर नियंत्रण करना दुष्कर होता है। इससे ब्रह्मचर्य को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इससे सभी व्रत खतरे में पड़ जाते हैं। [56]

कहा भी गया है –

**जउकुम्भे जोइसुवगुढ़े, आसुभितत्ते णासमुवयाइ।**
**एवित्थियाहिं अणगारा, संवासेण णासमुवयंति।।**

अर्थात् आग से लिपटा हुआ लाख का घड़ा शीघ्र ही तप्त होकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अनगार स्त्रियों के संवास से नष्ट हो जाते हैं। [57]

**(6) सर्वस्व हानि** – सूत्रकृतांग सूत्र में ब्रह्मचारी के लिए स्त्री संग को महान अनर्थकारी माना है। वृत्तिकार ने स्त्री संग को समस्त दोष का मूल कारण माना है। उनका मानना

है–

**तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं तत् तपः स च संयमः।**
**सर्वमेकपदे भ्रष्टं, सर्वथा किमपि स्त्रियः।।**

ज्ञान, विज्ञान, तप और संयम – ये सब स्त्री के सहवास से सहसा भ्रष्ट हो जाते हैं। [58]

**2.2.2 स्त्री चरित्र (स्वभाव) का चित्रण** – जैन आगमों में मुनि के बाईस प्रकार के परीषहों (कष्टों) का वर्णन मिलता है। उनमें एक है – स्त्री परीषह। यह एक अनुकूल परीषह है। इससे प्रभावित होकर साधक संयम रत्न को खो देता है। अध्ययन से ऐसा भी प्रतीत होता है कि स्त्री परीषह सर्वाधिक हानिकारक है इसीलिए स्त्री परीषह की भयंकरता तथा उससे बचने के उपाय का विस्तृत वर्णन जैन आगमों में स्थान–स्थान पर किया गया है। साधक की सावधानी के लिए स्त्री के स्वभाव का बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। स्त्रियों की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं –

**(1) कुटिल बुद्धि** – सूत्रकृतांग सूत्र में स्त्री चरित्र का विस्तृत वर्णन मिलता है। उसके अनुसार स्त्रियां पुरुष को फंसाने के सारे उपाय जानती हैं। [59] सर्व प्रथम वह मनुष्य को प्रलोभन देती है। भोजन, वस्त्र आदि के लिए आमंत्रित करती है।[60] वे भिक्षु के अत्यन्त निकट आकर बैठ जाती है तथा विभिन्न प्रकार की चेष्टाओं द्वारा उसके चित्त को आकर्षित करने का प्रयास करती है।[61]

जब कामासक्त व्यक्ति उसके चंगुल में अच्छी तरह फंस जाता है तब वह स्त्री उसके सिर पर पैर से प्रहार करती है। अर्थात् वह उस पुरुष से मनचाहा काम कराने लगती है। [62]

स्त्री स्वभाव का वर्णन करते हुए व्याख्या साहित्य में कहा गया है –

**दुर्ग्राह्यं हृदयं यथैव वदनं यद् दर्पणान्तर्गतं,**
**भावः पर्वमार्गदुर्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते।**
**चित्तं पुष्करपत्रतोयचपलं नैकत्र सन्तिष्ठते,**
**नार्यो नाम विषाङ्कुरैरिव लता दोषैः समं वर्द्धिताः।।**

दर्पण में प्रतिबिम्बित बिम्ब जिस प्रकार दुर्ग्राह्य होता है, उसी प्रकार स्त्री का हृदय भी दुर्ग्राह्य होता है। पर्वत मार्ग पर स्थित दुर्ग जिस प्रकार विषम होता है, वैसी ही विषम होती है स्त्री की भावना। उसका चित्त कमल पत्र पर स्थित पानी की बूंद की भांति चंचल होता है। वह कहीं एक स्थान पर स्थिर नहीं होता। जिस प्रकार विष लताएं विषांकुरों के साथ बढ़ती है, वैसे ही स्त्रियां दोषों के साथ बढ़ती हैं।[63]

ज्ञातासूत्र के वृत्तिकार ने स्त्रियों की विभिन्न काम चेष्टाओं का विभाजन इस प्रकार किया है–

**हावो मुखविकार : स्याद्, भावश्चित्त समुद्भवः ।**
**विलासो नेत्रजो ज्ञेयो, विभ्रमो भ्रूसमुद्भवः।।**

हाव – मुख से प्रकट होने वाला काम विकार – चेष्टा।
भाव – चित्त की भूमिका पर उभरने वाला काम विकार।
विलास – नेत्र से व्यक्त होने वाला विकार।
विभ्रम – भौहों से व्यक्त होने वाला विकार।
विब्बोक – दर्प वश प्रिय वस्तुओं के प्रति होने वाला अनादर का भाव।[64]

**(2) कामान्धता** – सूत्रकृतांग सूत्र में स्त्रियों में अतिकामुकता का संकेत किया गया है। इसके चूर्णिकार ने स्त्रियों की कामवासना का वर्णन इस प्रकार किया है–

**नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां, नापगानां महोदधिः।**
**नांतकृत्सर्व भूतानां, न पुंसा वामलोचना।।**

अर्थात् अग्नि लकड़ी से कभी तृप्त नहीं होती। समुद्र नदियों से तृप्त नहीं होता। मौत प्राणियों से तृप्त नहीं होती, इसी प्रकार स्त्रियां पुरुषों से तृप्त नहीं होती। [65]

कामवासना के आवेग में स्त्रियों को हेयोपादेय का भी भान नहीं रहता। सूत्रकार इनके स्वभाव के मनोवैज्ञानिक रहस्यों को उद्घाटित करते हुए कहते हैं ''स्त्रियां चाहे सधवा हो या विधवा, आसपास रहने वाले व्यक्ति फिर चाहे वह कुबड़ा हो या अन्धा, की कामना करने लग जाती हैं।''

**अंबं वा निंबं वा अब्भासागुणेण आरूहइ वल्ली।**
**एवं इत्थी तोवि य जं आसन्नं तभिच्छन्ति।।** [66]

**(3) वैमनस्य पैदा करने वाली** – यह लोक प्रसिद्ध है कि स्त्रियां वैमनस्य का मूलकारण हैं। चूर्णिकार कहते हैं –

**अह एताण पगतिया सव्वस्स करति वेमणस्साइं।**
**तस्स न करेज्ज मंतुअं जस्स अलं चेयं कामतंतएण।।**

अर्थात् स्त्रियों की यह प्रकृति है कि वे सभी में वैमनस्य पैदा कर देती हैं। उनकी कामना जिससे पूरी होती हैं, उससे वैमनस्य नहीं करती हैं। [67]

भगवती आराधना में महाभारत और रामायण का संदर्भ देकर महायुद्धों का कारण स्त्रियों को बताया गया हैं।[68]

**(4) दुःख की जननी** – सूत्रकृतांग सूत्र में स्त्री को दुःखों की जननी कहा गया है। चूर्णिकार

की मान्यता है कि स्त्रियों की कामना करना भी दुःख का कारण बनता है। वे कहते हैं –

**हक्खुवउ अंगुलिं ता पुरिसो सव्वम्मि जीवलोअम्मि।**
**कामेंतएण लोए जेण ण पत्तं तु वेमणसं।।**

अर्थात् संपूर्ण संसार में ऐसा कोई भी आदमी हो जो स्त्री की कामना करते हुए दुःखी ना हुआ हो, वह अपनी अंगुली ऊंची करे। [69]

**(5) अविश्वसनीय** – सूत्रकृतांग सूत्र में स्त्री को अविश्वसनीय कहा गया है। सूत्रकार कहते हैं कि स्त्री का यह स्वभाव होता है कि वह किसी बात को वाणी से स्वीकार करती है, किन्तु कर्म से उसका पालन नहीं करती। वह मन से कुछ और ही सोचती है, वचन से कुछ और ही कहती है तथा कर्म से कुछ और ही करती है, इसलिए स्त्रियों को बहुमायाविनी कह कर अविश्वसनीय कहा गया है। [70] चूर्णिकार ने इसका समर्थन इस प्रकार किया है–

**सुट्ठु वि जितासु सुट्ठु वि पियासु सुट्ठु वि य लद्धपसरासु ।**
**अडईसु य महिलासु य विसंभो भे ण कायव्वो ।।**

अर्थात् अच्छी तरह से परिचित, अच्छी तरह से प्रिय, अच्छी तरह से विस्तृत होने पर भी अटवी और महिला में कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। [71]

उत्तराध्ययन चूर्णि में भी स्त्रियों को अविश्वसनीय मानते हुए त्याज्य बताया गया है –

**एता हसंति च रूदंति च अर्थ हेतो,**
**विंश्वासयंति च परं न विश्वसंति।**
**तस्मान्नरेण कुलशील समन्वितेन,**
**नार्यः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः ।।**

स्त्रियां हंसती हैं, रोती हैं, धन के लिए। वे पुरुषों को अपने विश्वास में लेती हैं किन्तु उन पर विश्वास नहीं करती। कुल व शील सम्पन्न पुरुष उनको वैसे ही छोड़ देते हैं जैसे श्मशान में ले जाए जाने वाले पुष्प वहीं छोड़ दिए जाते हैं। [72]

**(6) स्वार्थ परायणता** – सूत्रकृतांग के चूर्णिकार ने स्त्रियों की स्वार्थ परायणता का सुन्दर चित्रण किया है –

**समुद्रवीचीचपलस्वभावाः सन्ध्याभ्ररेखा व मुहूर्त्तरागाः ।**
**स्त्रियः कृतार्थाः पुरुषं निरर्थकं, निपीडितालक्तकवत् त्यजंती ।।**

स्त्रियां समुद्र की लहरों की भांति चंचल स्वभाव वाली और सन्ध्या के मेघ की तरह अल्पकालीन अनुराग वाली होती हैं। अपना काम बन जाने पर स्त्रियां निरर्थक पुरुष को वैसे ही छोड़ देती हैं जैसे बिना पिसा हुआ अलक्तक छोड़ दिया जाता है।[73]

ज्ञानार्णव के बारहवें अध्याय में स्त्री के स्वभाव का विस्तृत चित्रण किया गया है। फिर

भी रचनाकार अपने को इसमें असक्षम ही मानते हैं। वे कहते हैं –

**यदि मूर्ताः प्रजायरेन् स्त्रीणां दोषाः कथंचन।**
**पूरयेयुस्तदा नूनं निःशेषं भुवनोदरम् ।।**

स्त्रियों में इतने अधिक दोष होते हैं कि यदि वे किसी प्रकार से मूर्त स्वरूप को धारण कर लें तो वे निश्चय से समस्त लोक को पूर्ण कर देंगे।[74]

**यद्वक्तुं न वृहस्पतिः शतमरवः श्रोतुं न साक्षात्क्षम।**
**स्तस्बत्रीणामगुणब्रजं निगदितुं मन्ये न कोऽपि प्रभुः ।।**

स्त्रियों के जिस दोष समूह का वर्णन करने के लिए साक्षात् वृहस्पति समर्थ नहीं है तथा जिसे सुनने के लिए साक्षात् इन्द्र भी समर्थ नहीं है, उसका वर्णन करने के लिए कोई भी समर्थ नहीं है। [75]

**स्त्री निन्दा की सापेक्षता –** यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर स्त्री की निन्दा की गई है। ज्ञानार्णव और भगवती आराधना आदि में तो यह कार्य बहुत ही विस्तार से किया गया है। फिर भी प्रायः सभी ग्रन्थकारों ने स्त्री को एकान्त निन्दनीय नहीं माना है।

भगवती आराधना में शीलवान स्त्रियों का अस्तित्व भी माना गया हैं और उनकी प्रशंसा भी मुक्त कण्ठ से की गई है। सूत्रकार कहते हैं कि जो गुण सहित स्त्रियां हैं, जिनका यश लोक में फैला हुआ हैं तथा वे मनुष्य लोक में देवता के समान हैं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और श्रेष्ठ गणधरों, सर्वगुण सम्पन्न साधुओं, चरम शरीरी साधकों को जन्म देने वाली होती हैं तथा ऐसी महिलाएं श्रेष्ठ देवों और उत्तम पुरुषों के द्वारा भी पूजनीय होती हैं। इन महान महिलाओं के अतिरिक्त भी कितनी ही महिलाएं एक पतिव्रत और कौमार ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती हैं। कितनी ही जीवन पर्यन्त वैधव्य का दुःख भोगती हैं। कुछ महिलाओं का शील व्रत इतना पवित्र होता है कि इसके प्रभाव से वे अभिशाप देने और अनुग्रह करने का सामर्थ्य रखती हैं। ऐसी स्त्रियों को महानदी के जल का प्रवाह डूबो नहीं सकता, प्रज्ज्वलित घोर अग्नि जला नहीं सकती, सर्प–व्याघ्र आदि भी कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं।[76]

यहां निन्दनीय वे स्त्रियां हैं जो पुरुष के शील को खतरा पैदा करती हैं। इसी प्रकार वे पुरुष जो स्त्रियों के शील को खतरा पैदा करते हैं वे भी इसी प्रकार निन्दनीय हैं।[77]

'करत–करत अभ्यास'[78] में प्राचीन साहित्य में की गई स्त्री निन्दा पर सापेक्ष टिप्पणी की गई है। लेखक के अनुसार स्त्री शब्द 'नारी' के लिए नहीं 'वासना' के लिए प्रयुक्त हुआ है। स्त्री को प्रतीक बनाकर उसमें वासना का आरोपण किया गया है। वासना का संबंध वेद से है वह स्त्री–पुरुष दोनों में हो सकता है। वासना साधना में विघ्न है। वासना की फिसलन भरी राह पर साधक फिसले नहीं, इसलिए उसे उससे दूर रहने का दिशा दर्शन दिया गया है। स्त्री

को वासना का प्रतीक मानने से यह प्रतिबोध स्त्री–पुरुष दोनों के लिए समान उपयोगी है।

**स्त्री संस्तव का प्रायश्चित्त –** निशीथ सूत्र में साधु के विभिन्न स्थलों पर अकेली स्त्री के साथ रहने, विहार आदि विभिन्न कार्य करने, उपाश्रय में उसे रहने देने का प्रायश्चित्त गुरुचौमासिक बताया गया है।[79]

### 2.3 स्त्री–कथा का वर्जन

कथा का अर्थ है – वचन पद्धति। स्थानांग वृत्ति में विकथा का अर्थ है ''जिस कथा से संयम में बाधा उत्पन्न होती है अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिहत होता है, स्वाद वृत्ति बढती है, हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है और राजनीतिक दृष्टिकोण का निर्माण होता है उसे विकथा कहते हैं।''[80] आवश्यक सूत्र में विकथा का अर्थ संयम को दूषित करने वाली एवं निरर्थक वार्तालाप से हैं। [81]

ठाणं सूत्र में विकथा के चार प्रकार बताए गए हैं– 1. स्त्री कथा 2. भक्त कथा 3. देश कथा और 4. राज कथा। [82]

**2.3.1 स्त्री कथा का अर्थ** – विभिन्न आगमों एवं उनकी व्याख्याओं में स्त्री कथा का अर्थ कुछ–कुछ भिन्नताओं के साथ किया गया है।

**ठाणं सूत्र** – केवल स्त्रियों में कथा करना अथवा स्त्री की कथा करना।[83]

**समवायांग** – स्त्री की कथा। [84]

**दसवैकालिक** – स्त्री संबंधी काम–राग बढ़ाने वाली बातें करना [85] तथा एकान्त स्थान में केवल स्त्रियों के बीच प्रवचन करना। [86]

**उत्तराध्ययन** – केवल स्त्रियों के बीच कथा करना तथा स्त्री संबंधी कथा करना [87]

**आवश्यक वृत्ति** – अकेली स्त्रियों में कथा करना। [88]

**2.3.2. स्त्री कथा के प्रकार** – ठाणं सूत्र में स्त्री कथा के चार प्रकार बताए गए हैं [89]

**(क) स्त्री जाति की कथा** – जैसे 'यह क्षत्रियाणी है', 'यह ब्राह्मणी है' आदि। वृत्तिकार ने इसके स्वरूप को सोदाहरण इस प्रकार कहा है–

**धिग् ब्राह्मणीर्धवाभावे: या जीवन्ति मृताइव।**
**धन्या मन्ये जने शूद्री, पतिलक्षेऽप्यनिन्दिता।।**

ब्राह्मणी को धिक्कार है, जो पति के मरने पर जीती हुई भी मृत के समान है। मैं शुद्री को धन्य मानता हूँ जो लाख पतियों का वरण करने पर भी निन्दित नहीं होती है।[90]

**(ख) कुल कथा** – जैसे यह 'उग्र कुल की है', 'द्रविड़ कुल की है' आदि। वृत्तिकार ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है–

**अहो चौलुक्य पुत्रीणां, साहसं जगतोऽधिकम्।**

**पत्युर्मृत्यौ विशन्त्यग्नौ, याः प्रेमरहिता अपि।।**

अर्थात् चौलुक्य पुत्रियों का साहस संसार में सबसे अधिक और विस्मयकारी है, जो पति की मृत्यु होने पर प्रेम के बिना भी अग्नि में प्रवेश कर जाती है।[91]

**(ग) रूप कथा** – स्त्रियों के रूप का वर्णन करना। वृत्तिकार के शब्दों में –

**चन्द्रवक्त्रा सरोजाक्षी, सद्गी पीन धनस्तनी।**
**किं लाटी नो मता साऽस्य, देवानामपि दुर्लभा।।**

चन्द्रमुखी, कमलनयना, मधुर स्वर वाली और पुष्ट स्तन वाली लाट देश की स्त्री क्या उसे सम्मत नहीं है? जो देवों के लिए भी दुर्लभ है।[92]

**(घ) नेपथ्य कथा** – स्त्रियों के वेशभूषा विषयक कथा।

**धिग नारी रौदीच्या, बहुवसनाच्छादितांगुलतिकत्वात्।**
**यद् यौवनं न युनां चक्षुर्मोदाय भवति सदा।।**

अर्थात् उत्तरांचल की नारी को धिक्कार है जो अपने शरीर को बहुत सारे वस्त्रों से ढक लेती है। उसका यौवन युवकों के चक्षुओं को आनंद नहीं देता।[93]

**2.3.3 स्त्री कथा के दोष** – ठाणं सूत्र के अनुसार बार–बार स्त्री कथा आदि विकथा करने से अतिशायी ज्ञान और दर्शन उत्पन्न होते–होते रुक जाते हैं।[94] निशीथ सूत्र के भाष्यकार ने स्त्री कथा विशेष से होने वाले दोष का निर्देश इस प्रकार किया है।

(क) स्वयं के मोह की उदीरणा
(ख) दूसरों के मोह की उदीरणा
(ग) जनता में अपवाद
(घ) सूत्र और अर्थ के अध्ययन की हानि
(ड) ब्रह्मचर्य की अगुप्ति
(च) स्त्री प्रसंग की संभावना।[95]

ज्ञाता धर्म कथा सूत्र में इसका उदाहरण भी मिलता है कि द्रौपदी के रूप की कथा सुनकर ही उसका अपहरण हुआ।[96]

इन्हीं दृष्टियों से आचारांग सूत्र,[97] सूत्रकृतांग,[98] प्रश्नव्याकरण,[99] दसवैकालिक,[100] उत्तराध्ययन,[101] आवश्यक सूत्र[102] आदि ग्रंथों में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए स्त्री कथा का वर्जन किया गया है।

निशीथ सूत्र में साधु के न कहने योग्य कामकथा कहने तथा रात्रि के समय स्त्री परिषद् में या स्त्रीयुक्त परिषद् में अपरिमित कथा करने का गुरुचौमासिक प्रायश्चित्त बताया गया है।[103]

## 2.4. स्त्रियों के स्थानों का सेवन वर्जन

सूत्रकृतांग सूत्र में इसका अर्थ गृहस्थ की शय्या पर बैठना किया गया है।[104] ठाणं, समवायांग, उत्तराध्ययन एवं आवश्यक वृत्ति में इसका अर्थ है स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठना तथा जहां स्त्रियां पहले से बैठी हों उस स्थान पर न बैठना।[105] सूत्रकृतांग सूत्र की वृत्ति में इस संबंध में एक गाथा प्रयुक्त की गई है–

**मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।**
**बलवानिन्द्रिय ग्रामः पण्डितोऽप्यत्र मुह्यति।।**

अर्थात् ब्रह्मचारी मां, बहिन या पुत्री के साथ भी एक आसन पर न बैठे। इन्द्रिय समूह बहुत बलवान होता है। पण्डित व्यक्ति भी यहाँ मूढ़ हो जाते हैं।[106] स्थानांग वृत्ति के अनुसार स्त्रियों के उठ जाने पर एक मुहूर्त्त के बाद वहाँ बैठा जा सकता है।[107]

समयावांग सूत्र में श्रमण भगवान महावीर ने क्षुल्लक – अवस्था और श्रुत में अपरिपक्व के लिए ही नहीं, व्यक्त–अवस्था और श्रुत में परिपक्व श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए निषिध आचरणों में एक आचरण गृहान्तर निषद्या कहा है।[108] इसका अर्थ गृहस्थों के घर न बैठना है। गृहस्थों के घरों में स्त्रियों की प्रधानता होती है। इसलिए ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए गृहान्तर निषद्या निषेध एक प्रमुख उपाय है।[109]

दसवैकालिक सूत्र में ब्रह्मचारी को गृहस्थों के घर बैठने को अनाचार माना गया है। प्रयोजन वश कहीं जाना भी पड़े तो कार्य सम्पन्न होते ही स्व–स्थान पर लौट आने का विधान है। यहां गृहान्तर निषद्या (गृहस्थ के घर बैठने) में अनेक दोषों का उल्लेख किया गया है –

1. आचार – ब्रह्मचर्य के विनाश की संभावना रहती है।
2. प्राणियों का अवध काल में वध हो जाता है।
3. अन्य भिक्षाचरों के अन्तराय लगती है।
4. जिस स्त्री के घर वह बैठता है उसके तथा ब्रह्मचारी के चरित्र के प्रति लोक में संदेह होने लगता है।[110]

## 2.5. स्त्रियों की मनोरम इन्द्रियों को न देखना, न चिन्तन करना

यह उपाय दृष्टि संयम और मनःसंयम दोनों पक्षों को उजागर करता है। आचारांग सूत्र के अनुसार काम के संस्कार सर्वप्रथम मन में उभरते हैं। मन को अशुभ विचारों से निवृत्त कर लेने, मन का संवरण कर लेने से काम का संकल्प ही उत्पन्न नहीं होता।[111] इस सूत्र में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए न केवल स्त्री के कामुक अंगों को बल्कि उनके चित्रों को भी वासनापूर्ण दृष्टि से देखने का निषेध है।[112]

सूत्रकृतांग सूत्र में दृष्टि संयम का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है– स्त्रियों से आंख नहीं मिलाना।[113] सूत्रकृतांग के वृत्तिकार इसकी व्याख्या में कहते हैं कि ब्रह्मचारी स्त्री के साथ चक्षु संधान–दृष्टि का दृष्टि के साथ समागम न करें। यदि स्त्री के साथ बात करने का अवसर आए तो मुनि उसे अस्निग्ध, रूखी और अस्थिर दृष्टि से देखें। अवज्ञा भाव से कुछ समय तक एक बार देखकर निवृत्त हो जाए।

**कार्येऽपिषन्मतिमान्निरीक्षते, योषिदंगमस्थिरया।**
**अस्निग्धया दृशाऽवज्ञया, हृकुपितोऽपि कुपितइव।।**[114]

स्थानांग एवं समवायांग सूत्र में 'ब्रह्मचर्य गुप्ति' की शृंखला में स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को एकाग्रचित होकर–दृष्टि गढ़ा कर देखने का निषेध है।[115] प्रश्नव्याकरण सूत्र में दृष्टि संयम के विस्तृत क्षेत्र का वर्णन किया गया है। वहाँ नारियों के हास्य, विकारमय भाषण, हाथ आदि की चेष्टाएं– इशारे, कटाक्षयुक्त निरीक्षण, गति–चाल, विलास–क्रीड़ा, कामोत्पादक संभाषण, नाट्य, नृत्य, गीत, वीणादि वादन, शरीर की आकृति, गौर, श्याम आदि वर्ण, हाथ पैर–नेत्र आदि अंगों का लावण्य, रूप, यौवन, स्तन, ओष्ठ, वस्त्र अलंकार और भूषण–ललाट की बिन्दी आदि को तथा उसके गोपनीय अंगों को तथा इसी प्रकार की अन्य चेष्टाओं को जिनसे ब्रह्मचर्य का घात–उपघात होता हो, को न केवल देखने का बल्कि वचन से उनके संबंध में बोलने तथा उनकी अभिलाषा करने तक का निषेध है।[116]

दसवैकालिक सूत्र में विविध स्थल पर दृष्टि संयम के निर्देश हैं। वहाँ स्त्रियों के अंग–प्रत्यंग तथा उनकी मधुर बोली और कटाक्ष को देखने का निषेध किया गया है। इसके दुष्परिणामों को बताते हुए सूत्रकार कहते हैं कि ये काम–राग को बढ़ाने वाले हैं इसलिए इन पर ध्यान ही न दें।[117] यहाँ न केवल स्त्रियों को बल्कि स्त्रियों के चित्रों को भी टकटकी लगाकर देखने का निषेध है। यदि प्रमादवश नजर पड़ भी जाए तो इसका समाधान देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि अपनी दृष्टि को वैसे ही खींच लेना चाहिए जैसे मध्यान्ह के सूर्य पर पड़ी हुई दृष्टि स्वयं खिंच जाती है।[118] लोक व्यवहार में शंका की संभावना को देखते हुए सूत्रकार ने ब्रह्मचारी को रास्ते में गमनागमन करते समय घर के दरवाजे, खिड़कियां, पानीघर, आदि की तरफ उत्सुकतापूर्वक टकटकी लगाकर देखने का निषेध किया है।[119]

इस सूत्र में दृष्टि संयम का क्षेत्र दूसरों तक ही सीमित नहीं है। सूत्रकार ब्रह्मचारी को निष्कारण आइने आदि में स्वयं की परछाई देखने का भी निषेध करते हैं। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि इससे साधक बहिरात्मा बन जाता है। वह स्वयं के ही रूप में मुग्ध हो जाता है। स्वयं को संवारने में लगा रहने से वह स्त्रियों का काम्य बन जाता है। इससे ब्रह्मचर्य असुरक्षित हो जाता है।[120]

दृष्टि संयम की उपेक्षा के परिणाम को राजीमती के मुख से सूत्रकार कहते हैं कि राग–भाव से स्त्रियों को देखने से साधक 'अस्थितात्मा' हो जाता है।[121]

उत्तराध्ययन सूत्र में भी दृष्टि संयम के उपरोक्त निर्देश का उल्लेख प्राप्त होता है।[122] वहाँ मुनि रथनेमि का उदाहरण देते हुए दृष्टि असंयम से 'चित्त भग्नता' होना बताया गया है।[123]

### 2.6. प्रणीत रस वर्जन

उत्तराध्ययन के व्याख्या ग्रंथ में प्रणीत का अर्थ इस प्रकार किया है – जिससे घृत, तेल आदि की बूंदें टपकती हो अथवा जो धातु वृद्धिकारक हो, उसे 'प्रणीत' आहार कहा जाता है।[124] 'विकृति' इसका समानार्थक शब्द है। ठाणं सूत्र में विकृतियां नौ बताई गई हैं – 1. दूध 2. दही 3. नवनीत 4. घृत 5. तेल 6. गुड़ 7. मधु 8. मद्य 9. मांस।[125]

प्रवचन सारोद्धार वृत्ति में इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है – **विकृतयो मनसो विकृतिहेतुत्वादिति।** अर्थात् जो पदार्थ मानसिक विकार पैदा करते हैं उन्हें विकृति कहा गया है।[126]

ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए आचारांग सूत्र में निर्बल आहार का निर्देश है।[127] सूत्रकृतांग सूत्र केवल संयम भार वहन करने के लिए भोजन का पक्षधर है।[128] ठाणं एवं समवायांग की ब्रह्मचर्य गुप्तियों में प्रणीत रस वर्जन चौथे स्थान पर है तथा उत्तराध्ययन एवं आवश्यक वृत्ति में इसे सातवें स्थान पर रखा गया है।[129]

ज्ञाताधर्मकथा में इसका निर्देश प्रकारान्तर से कथानक के माध्यम से दिया गया है। यहां ब्रह्मचारी को यात्रामात्राशन होना आवश्यक बताया गया है। अर्थात् वह केवल जीवन यात्रा चलाने के लिए आहार करे। वर्ण, रूप, बल और विषय के लिए आहार न करे। सरस आहार के साथ आसक्ति भी बढ़ सकती है। आसक्ति और अनासक्ति के बीच बहुत सूक्ष्म भेद रेखा है। सूत्रकार ने इसे स्पष्ट करने के लिए एक दारुण घटना का प्रयोग किया है।[130]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य की पांच भावनाओं में विकारवर्द्धक आहार का वर्णन कुछ विस्तार से किया गया है। स्वादिष्ट, गरिष्ठ एवं स्निग्ध (चिकनाई वाले) भोजन जैसे दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खाण्ड, मिश्री, मधु, मद्य, मांस, खाद्य–पकवान आदि विगय धातु की वृद्धि करते हैं, इससे मानसिक उन्माद उत्पन्न होता है, इसलिए इनका संयम करना चाहिए। कुछ पदार्थ प्रणीत तो नहीं होते किन्तु उनके सेवन से इन्द्रियों में उत्तेजना बढ़ती है। ऐसे कामोद्दीपक पदार्थों का सेवन न करना। इनके अतिरिक्त वहां दाल और व्यंजन की अधिकता वाले भोजन का भी निषेध किया गया है।[131] दसवैकालिक सूत्र में भी विकार वर्द्धक आहार का निषेध है।[132]

उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए प्रणीत आहार का निषेध किया गया है।[133] किन्तु यहाँ स्वाद के लिए न खाकर केवल जीवन निर्वाह के लिए खाने का निर्देश है।[134] यहाँ रस सेवन का आत्यन्तिक निषेध नहीं है किन्तु अति मात्रा में उसका सेवन करने का निषेध है। [135]

दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र की व्याख्या में कहा है कि – 'जिस प्रकार सांप बांबी में प्रविष्ट होता है, उसी प्रकार एक श्रमण जरा भी आस्वाद लिए बिना भोजन के कौर–ग्रास नीचे उतारे।' [136]

धर्मामृत अनगार में रसनेन्द्रिय को जीतना शेष सभी इन्द्रियों को जीतने से कठिन बताया है। किन्तु ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए इसे जीतना परमावश्यक बताया गया है।[137]

अकलंक देव ने तत्त्वार्थवार्त्तिक में कहा है कि जो स्पर्श जन्य सुख का त्याग कर देते हैं, वे भी रसना को वश में नहीं रख सकते हैं।[138]

महात्मा गांधी ने ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए अस्वाद व्रत पर बहुत बल दिया। उन्होंने कहा – ब्रह्मचर्य का अस्वाद व्रत से घनिष्ठ संबंध है। जो अपनी जिव्हा को कब्जे में रख सकता है, उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। जिसने जीभ को नहीं जीता, वह विषय वासना को नहीं जीत सकता है।[139]

आचार्य महाप्रज्ञ ने संबोधि में स्वाद विजय की साधना को सफल बनाने के तीन सूत्र दिए हैं –

1. पदार्थ में रस से विरक्ति के लिए आत्मा में रस की अनुभूति करना। जिसे यह हो गई, वही पुरुष रस (स्वाद) को जीत सकता है। आत्मा में रस लेने के दो उपाय हैं – (अ) भोजन करने के लक्ष्य का स्पष्ट अनुचिन्तन करना (ब) समता का अभ्यास।[140]
2. ब्रह्मचारी को भोजन करते समय स्वाद लेने के लिए दाएं जबड़े से बाईं ओर तथा बाएं जबड़े से दाईं ओर भोजन का संचार नहीं करना चाहिए।[141]
3. स्वाद के लिए खाद्य पदार्थों में विविध प्रकार के संयोग न मिलाना चाहिए।[142]

## 2.7. अतिमात्रा में आहार निषेध

ब्रह्मचर्य साधना का आहार की मात्रा के साथ गहरा संबंध है। स्वास्थ्य शास्त्रियों के अनुसार शरीर की भोजन पचाने की एक क्षमता होती है। इसलिए भोजन की एक निश्चित मात्रा होती है। मात्रा से अधिक किया गया आहार पचता नहीं, बल्कि पेट में सड़ता रहता है। इतना ही नहीं, यह सड़ा हुआ आहार अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक विकार उत्पन्न करते हैं। आचारांग सूत्र में इसका समाधान ऊनोदरिका बताया गया है।[143] सूत्रकृतांग सूत्र में ब्रह्मचर्य साधक को अवश्य रूप से मात्रा वृत्तिक होना बताया गया है। इसका अर्थ है केवल उतना ही

आहार करना जितना साधना के लिए आवश्यक हो। चूर्णिकार उसकी विशेषता बतलाते हुए कहते हैं– [144]

**यात्रामात्राशनो भिक्षुः परिशुद्ध मलाशयः।**
**विविक्तनियताचारः, स्मृतिदौर्षैर्न बाध्यते।।**

ठाणं, समवायांग, उत्तराध्ययन, आवश्यक आदि सूत्र की ब्रह्मचर्य गुप्तियों में भी इसे स्थान दिया गया है। ब्रह्मचर्य गुप्तियों के अतिरिक्त भी ठाणं सूत्र में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए आहार का परित्याग करने को आज्ञा का अतिक्रमण नहीं माना गया है।[145]

उत्तराध्ययन सूत्र में उदाहरण देते हुए कहा गया है –

**जहा दवग्गो पउरिंधणे वणे, समारूओ नोवसमं उवेइ।**
**एविंदियग्गो वि पगामभोइणो, न बंभयारिस्स, हियाय किस्सई।।**

जैसे पवन के झोंकों के साथ प्रचुर ईंधन वाले वन में लगा हुआ दावानल उपशान्त नहीं होता, उसी प्रकार अतिमात्रा में खाने वाले की इन्द्रियाग्नि – कामाग्नि शान्त नहीं होती। इसलिए अतिमात्रा में भोजन किसी भी ब्रह्मचारी के लिए हितकर नहीं होता है। [146]

संबोधि में आचार्य महाप्रज्ञ ने इसे मितभोजन के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने मितभोजन का प्रयोग ब्रह्मचर्य साधना एवं शारीरिक स्वास्थ्य दोनों ही पहलुओं से बताया है। मितभोजी की परिभाषा करते हुए आप कहते हैं –

**अल्पवारञ्च भुञ्जानो, वस्तून्यल्पानि संख्यया।**
**मात्रामल्पाञ्च भुञ्जानो, मिताहारो भवेद् यतिः।।**

अर्थात् जो मुनि एक या दो बार खाता है, संख्या में अल्प वस्तुएं और मात्रा में अल्प खाता है, वह मितभोजी है।[147]

### 2.8. पूर्व भुक्त भोगों का स्मरण न करना

सम्भव है साधक ने ब्रह्मचर्य ग्रहण करने से पहले मनोज्ञ विषयों के भोग भोगे हों। साधना काल से पूर्व भोगे गए भोगों का अनुस्मरण ब्रह्मचर्य साधना के लिए घातक होता है। इससे मोहकर्म के उद्दीप्त होने की सम्भावना रहती है जिससे विकारों की वृद्धि होती है।

आचारांग सूत्र में अतीत की स्मृति करने वाले मन का संवरण करने का निर्देश इसी दृष्टिकोण से किया गया प्रतीत होता है।[148] इसी क्रम में सूत्रकृतांग सूत्र में भुक्त भोगों के स्मरण को विद्वान व्यक्ति के लिए त्याज्य कहा गया है।[149] ठाणं, समवायांग, उत्तराध्ययन, आवश्यक आदि सूत्र की ब्रह्मचर्य गुप्तियों में इसे समान स्थान मिला है।

ठाणं सूत्र में ब्रह्मचर्य के स्वीकरण के पश्चात् काम–भोगों की अभिलाषा करने मात्र को दुःखशय्या कहा गया है। वहाँ इसका परिणाम मानसिक उतार–चढाव और विनिघात बताया

है।[150] इस स्थिति को इसी ग्रन्थ में 'सियार वृत्ति' से उपमित किया गया है।[151]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में पूर्व भुक्त भोगों का विस्तृत वर्णन करते हुए अन्य सभी प्रकार के विषय जो तप, संयम और ब्रह्मचर्य का घात–उपघात करने वाले हैं का स्मरण निषेध किया है।[152] दसवैकालिक सूत्र में भी भुक्त भोग का स्मरण निषेध है।[153]

**2.9. शब्दादि इन्द्रिय विषय एवं श्लाघा का अनुपाती (आसक्त) न होना–**

यद्यपि प्रत्येक ब्रह्मचर्य गुप्ति का लगभग प्रत्यक्ष संबंध इन्द्रिय विषयों एवं मन से ही है। फिर भी इन्द्रिय विषयों एवं मन का ब्रह्मचर्य के साथ सीधा संबंध होने से इसे एक पृथक गुप्ति के रूप में भी रखा गया है।

स्थानांग सूत्र में केवल दो इन्द्रिय विषयों के नाम मिलते हैं – शब्द और रूप।[154] समवायांग एवं उत्तराध्ययन की गुप्तियों में पांचों विषयों का पृथक–पृथक नाम है।[155] ब्रह्मचर्य साधक के लिए श्लोक– कीर्ति, प्रशंसा, यश, श्लाघा की आसक्ति पतन कारक होती है। यह एक अनुकूल परीषह है। अनुकूलता को सहना प्रतिकूलता से अधिक कठिन होता है। इसकी स्निग्धता में फिसलने से विरले ही बच पाते हैं। ठाणं एवं समवायांग सूत्र में इन्द्रिय विषयों की आसक्ति के साथ–साथ श्लाघा की आसक्ति का भी निषेध है।[156]

इन गुप्ति पदों के अतिरिक्त भी इन्द्रिय विषयों की आसक्ति का निषेध जैन आगमों में स्थान–स्थान पर मिलता है।

आचारांग के भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ इन्द्रिय संयम का अर्थ आत्मानुशासन और लज्जा करते हैं। स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं – आत्मानुशासित और लज्जावान व्यक्ति एकान्त में भी अनाचरणीय का सेवन नहीं करता, इन्द्रियों का उच्छृंखल व्यवहार नहीं करता है।[157] इस ग्रन्थ में इन्द्रिय संयम के और भी सूत्र मिलते हैं, जैसे–

**विराग रूवेहिं गच्छेज्ञा, महया खुड्डुएहि वा।**[158] पुरुष क्षुद्र या महान– सभी प्रकार के रूपों के प्रति वैराग्य धारण करे। **उदाहु वीरे – अप्पमादो महामोहे** [159] महावीर ने कहा– साधक विषय – विकार में प्रमत्त न हो।

**मा तेसु तिरिच्छमप्पाणमावातए।** [160]

सूत्रकृतांग सूत्र में भी इन्द्रिय विषयों की आसक्ति का वर्जन करते हुए इनकी इच्छा करने का भी निषेध किया गया है।[161] इस सूत्र में काम भोगों (इन्द्रिय विषयों) को अकल्याणकारी एवं भय उत्पन्न करने वाले बताते हुए इनसे बचने का निर्देश है। यहाँ स्पर्शनेन्द्रिय संयम पर विशेष जोर दिया गया है। इसके अनुसार ब्रह्मचारी स्त्री एवं पशु को अपने हाथ से न छुए तथा स्त्री के पैर आदि न दबाए, इतना ही नहीं, स्वयं के शरीर के गुह्य प्रदेशों के स्पर्श का भी निषेध

है।[162]

निशीथ सूत्र में अपने गुह्य प्रदेशों को विविध प्रकार के स्पर्श करने या उसका अनुमोदन करने वाले का गुरुमासिक प्रायश्चित्त बताया गया है।[163] तथा मैथुन सेवन के संकल्प से स्त्री, पशु–पक्षी आदि के अंगोपांग का संचालन करने पर या स्वयं के अंगों से काम चेष्टा करने पर चौमासिक प्रायश्चित्त आता है।[164]

इस सूत्र के वृत्तिकार ने स्त्रियों के साथ मात्र स्पर्शनेन्द्रिय का संबंध ही नहीं पांचों इन्द्रियों के पांच विषयों का संबंध बताया है। उन्होंने इससे संबंधित एक श्लोक उद्धृत किया है –

**कलानि वाक्यानि विलासिनीनां गतानि रम्याण्यवलोकितानि।**
**रताणि चित्राणि च सुन्दरीणां, रसोपि गन्धोऽपि च चुम्बनानि।।**[165]

चूर्णिकार ने इस संदर्भ में पांच विषय को विस्तार से इस प्रकार समझाया है–

शब्द – स्त्रियों के कलात्मक वाक्य।

रूप – रमणीय गति अवलोकन आदि।

रस – चुम्बन आदि।

गंध – जहां रस है वहाँ गंध अवश्यंभावी है।

स्पर्श – संबाधन, स्तन उरु, बदन आदि का संघर्षण।[166]

दसवैकालिक सूत्र में रूप में मन नहीं लगाने का उपदेश देते हुए कहा गया है – **ण य रूवेसु मणं करे** – रूप में मन न करें।[167] जिनदास गणि महत्तर चूर्णि में इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं – भिक्षाकाल में दान देने वाली या दूसरी स्त्रियों का रूप देखकर यह चिन्तन न करें – 'इसका आश्चर्यकारी रूप है, इसके साथ मेरा संयोग हो, आदि।' रूप की तरह शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श में भी मन न लगाए – आसक्त न हों।[168]

उत्तराध्ययन सूत्र में इन्द्रिय विषयों के वर्जन का विस्तृत वर्णन मिलता है। ब्रह्मचर्य समाधि स्थान में इसका उल्लेख है ही। [169] अन्यत्र भी कोमल व अनुकूल विषयों को बहुत लुभावना बताते हुए इन पर आसक्ति का वर्जन किया गया है।[170] परन्तु इस सूत्र की विशेषता यह है कि इसमें न केवल अनुकूल मनोज्ञ विषयों के प्रति राग का निषेध है बल्कि प्रतिकूल विषयों के प्रति द्वेष का भी निषेध है ।[171] इसका कारण यह हो सकता है कि राग और द्वेष पृथक–पृथक नहीं होते, दोनों समानान्तर चलते हैं। जब किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष के साथ द्वेष होता है तो किसी दूसरे के साथ राग अवश्य होता है।

## 2.10. सात और सुख में प्रतिबद्ध न होना

ठाणं एवं समवायांग सूत्र की ब्रह्मचर्य गुप्तियों में यह गुप्ति समान रूप से है।[172] किन्तु उत्तराध्ययन आदि उत्तरवर्ती ग्रंथों में इस संबंध में स्पष्ट कुछ नहीं है। कथा–साहित्य में ऐसे अनेक उद्धरण मिलते हैं जिनसे भी यह सिद्ध होता है कि सात एवं सुख की प्रतिबद्धता से अनेक का ब्रह्मचर्य खण्डित हुआ है।

सात और सुख के प्रति प्रतिबद्ध साधक भविष्य में उनकी प्राप्ति के लिए 'निदान' कर सकता है।

'निदान' जैन परम्परा का पारिभाषिक शब्द है। जब कोई साधक विषय भोगों के प्रति अत्यन्त आसक्त होकर प्रतिबद्ध हो जाता है और वर्तमान की तपस्या आदि साधना के प्रतिफल में भोगों को पाने का संकल्प करता है, इसे 'निदान' कहा जाता है।

**निदान के दोष**

निदान करने से अनुष्ठित तप व चारित्र का खण्डन हो जाता है। इससे होने वाली हानियां बहुत विस्तृत है इसलिए निदान को 'शल्य', 'आर्त्तध्यान' तथा 'संलेखना के अतिचारों' के अंतर्गत रखा गया है।[173] दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र के दशम दशा में निदान के संदर्भ में विस्तृत वर्णन मिलता है। किसी देव, देवी, चक्रवर्ती आदि ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति को देखकर मोहाविष्ट होकर उनके विपुल भोगों को पाने के लिए निदान कर बैठने वाले साधक, हो सकता है एक बार उन भोगों को पा ले किन्तु उसके बाद निदान के दुष्परिणाम स्वरूप वे केवली प्ररूपित धर्म में न श्रद्धा रख सकते हैं न प्रतीति कर सकते हैं और न रुचि ही रख सकते हैं। वह धर्म श्रवण के योग्य नहीं रहता क्योंकि वह महातृष्णा, महारंभ एवं महापरिग्रह से युक्त होता है, अधर्म में आसक्त होता है। इसके फलस्वरूप नरक गति में जाता है और उसके पश्चात् भी आगामी भव में दुर्लभ बोधि होता है – सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता।[174]

उत्तराध्ययन सूत्र में चित्र चक्रवर्ती भोगों के दुष्परिणामों को जानते हुए भी उनसे निवृत्त नहीं हो सका क्योंकि उसके पूर्व भव में उसने चक्रवर्ती की ऋद्धि को देखकर चक्रवर्ती होने का निदान कर लिया था और उसका प्रायश्चित्त नहीं किया था। इसके फलस्वरूप उसे सातवीं नरक में जाना पड़ा।[175]

भगवती आराधना में निदान के स्वरूप को विस्तार से बताया गया है। सूत्रकार कहते हैं –

**आवऽणत्थं जह ओसरणं मेसस्स होइ मेसादो।**
**सणिदाण बंभचेरं अब्बंभत्थ तहा होई।।**

जैसे एक मेढ़ा दूसरे मेढ़े पर अभिघात करने के लिए पीछे हटता है वैसे ही भोगों का

निदान करने वाले का ब्रह्मचर्य भी अब्रह्म के लिए ही होता है।[176]

### 2.11. श्रोतेन्द्रिय संयम

ब्रह्मचर्य की आठवीं गुप्ति स्थान में पांचों इन्द्रिय विषयों के संयम में श्रोतेन्द्रिय समाहित है। फिर भी आगमों में ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए श्रोतेन्द्रिय संयम को पृथक रूप से भी रखा गया है। मानसिक अध्यवसायों की शुद्धि–अशुद्धि पर शब्दों का गहरा प्रभाव पड़ता है। सूत्रकृतांग सूत्र के अनुसार गीत आदि तो वर्जनीय है ही, निमंत्रण रूप शब्दों का भी वर्जन करने को कहा गया है। इस सूत्र के चूर्णिकार ने शब्दों को दुस्तर बताते हुए निमंत्रण रूप शब्द के अनेक प्रकार बताए हैं –

**णाह! प्रिय! कंत! समिय! दयित! वसुला! होल गोल! गुललेहि!**
**जेणं जियमि तुब्भं पभवसि तं मे सरीरम।।**

हे नाथ! प्रिय, कान्त, स्वामिन्, दपित, वसुल, होलगोल, गुलल मैं आपके लिए ही जी रही हूँ। आप ही मेरे शरीर के स्वामी हैं।[177]

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में राजा पद्मनाभ द्रौपदी के रूप का वर्णन सुनकर कामान्ध हो कर उसका अपहरण कर लेता है। फलतः युद्ध होता है और उसकी हार होती है। इस प्रकरण का मूल श्रोतेन्द्रिय असंयम ही है।[178]

उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए न केवल प्रत्यक्ष रूप से स्त्रियों के शब्द सुनने का निषेध है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से जैसे मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रंदन या विलाप के शब्द को सुनने का भी निषेध है। [179]

आवश्यक सूत्र की वृत्ति में विशेष रूप से भींत आदि के छिद्र से मैथुन– संसक्त स्त्रियों की क्वणित–ध्वनि को सुनने का निषेध है।[180]

### 2.12. विभूषा वर्जन

स्नान, उबटन आदि विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री का प्रयोग कर शरीर को सुन्दर और आकर्षक बनाने को ''विभूषा'' करना कहते हैं। अन्तरात्मा भाव में रहने वाला ब्रह्मचारी शरीर को साधना का साधन मात्र मानता है वह शरीर में आसक्त नहीं होता है। विभूषा से व्यक्ति बहिरात्मभावी बनता है। दूसरी तरफ जो ब्रह्मचारी सज–धज कर रहता है वह स्त्रियों का काम्य बन जाता है। उसकी शरीर के प्रति आसक्ति बढ जाती है। इसलिए जैन आगमों में स्थान–स्थान पर ब्रह्मचारी के लिए विभूषा का निषेध किया गया है।

आचारांग सूत्र में शरीर की साज–सज्जा का निषेध है।[181] सूत्रकृतांग में गंध, माल्य, स्नान, दांत पखालना आदि विभूषा के विभिन्न अंगों का नामोल्लेख करते हुए उन्हें त्यागने की

बात कही गई है ।[182] स्थानांग एवं समवायांग की ब्रह्मचर्य गुप्ति स्थान में तो इसका कोई वर्णन नहीं मिलता है परन्तु समयावांग में क्षुल्लक और व्यक्त श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए प्रज्ञप्त अठारह स्थानों में स्नान वर्जन और विभूषा वर्जन को स्थान दिया गया है।[183] प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य के विघातक तत्त्वों की विस्तृत शृंखला का उल्लेख है जिसमें अनेक तत्त्व विभूषा से संबंधित हैं, जैसे– घृतादि की मालिश, तेल लगाकर स्नान, बार–बार बगल, सिर, हाथ, पैर और मुंह धोना, मर्दन करना, विलेपन करना, चूर्णवास–सुगन्धित चूर्ण– पाउडर से शरीर को सुवासित करना, अगर आदि का धूप देना, शरीर को मण्डित करना, सुशोभित बनाना, नखों, केशों एवं वस्त्रों को संवारना आदि। यहाँ स्वयं के शरीर के शृंगार का निषेध तो है ही शृंगार के केन्द्र माने जाने वाले नाटक, गीत, वाद्ययंत्र, नटों, नृत्यकारों और जल्लो–रस्से पर खेल दिखलाने वालों और मल्ल–कुश्तीबाजों का तमाशा आदि देखने का भी निषेध है।[184] इसी ग्रंथ में स्नान एवं दंत धोवन का भी निषेध है।[185]

दसवैकालिक के सूत्रकार मैथुन से निवृत्त ब्रह्मचारी का विभूषा से कोई प्रयोजन नहीं मानते हुए विभूषा का निषेध करते हैं।[186] इस सूत्र में विभूषा के परिणाम को बताते हुए कहा गया है कि इससे चिकने (निकाचित) कर्म का बंधन होता है जिससे व्यक्ति दुरुत्तर संसार–सागर में गिरता रहता है।[187] यहाँ विभूषा को इतना घातक माना गया है कि इसे तालपुट विष से उपमित किया गया है।[188] तीर्थंकरों का संदर्भ देते हुए सूत्रकार कहते हैं विभूषा करने की मानसिक प्रवृत्ति भी विभूषा के समान प्रचुर पापयुक्त है।[189]

उत्तराध्ययन सूत्र में भी ब्रह्मचर्य समाधि स्थान के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य में रत रहने वाले के लिए विभूषा वर्जन का निर्देश है। इसका कारण स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं– जिसका स्वभाव विभूषा करने का होता है, जो शरीर को विभूषित किए रहता है, उसे स्त्रियां चाहने लगती हैं, इससे ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है।[190] यहाँ शरीर की शोभा बढाने वाले केश, दाढी आदि का निषेध करते हुए सम्पूर्ण देहाध्यास से मुक्त रहने का निर्देश है।[191]

आवश्यक सूत्र की वृत्ति, मूलाचार, अणगार धर्मामृत आदि ग्रंथ में भी विभूषा को ब्रह्मचर्य की विराधना के कारणों में एक मानते हुए ब्रह्मचारी को इसका वर्जन करने को कहा गया है।[192]

निशीथ सूत्र में एक बार या बार–बार विभूषा (काय परिकर्म) करने या उसका अनुमोदन करने वाले के लिए लघुमासिक प्रायश्चित्त बताया है। (निशीथ 15/99–124, 3/16–69)। यदि यह विभूषा अब्रह्म सेवन के संकल्प से की गई है तो इसका प्रायश्चित्त गुरु चौमासिक आता है।[193]

विभूषा करने से कामोत्तेजना में वृद्धि होती है, इसका आधार आयुर्वेद साहित्य में भी मिलता है। चरक संहिता के अनुसार स्नान करने के बाद केशर आदि सुगन्धित द्रव्यों से युक्त चन्दन लगाने तथा सुगन्धित पुष्प मालाओं के धारण करने से शरीर में वृष्यता (कामोद्दीपन) आती है।[194]

### 2.13. वाणी संयम

आचारांग सूत्र में ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए एक उपाय वचन गुप्ति बताया गया है। भाष्यकार इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि काम के विषय में कुछ पूछने पर वाङ्गुप्ति करनी चाहिए।[195] सूत्रकृतांग सूत्र में संयम को नष्ट करने वाली कथा को 'भिन्न कथा' कहा गया है। व्याख्याकार ने विस्तृत व्याख्या के साथ यह बताया है कि किस प्रकार कामुक स्त्रियां मुनि के पास आकर विभिन्न प्रश्न पूछती हैं। ऐसी स्थिति में मौन का निर्देश मिलता है।[196] प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य सुरक्षा के उपायों में विकारयुक्त भाषण का निषेध किया गया है।[197] वहां सम्पूर्ण रूप से मौनव्रत धारण कर अन्तरात्मा को भावित करने का निर्देश भी है।[198]

उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार ब्रह्मचारी को किसी संदेहास्पद स्थानों में, घरों में, दो घरों के बीच की संधियों में और राजमार्ग में, अकेले ही किसी अकेली स्त्री के साथ न खड़ा रहना चाहिए और न बातचीत करनी चाहिए।[199]

### 2.14. ग्रामानुग्राम विहार

आचारांग सूत्र में ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए एक सूत्र है – ग्रामानुग्राम विहार।[200] इसकी व्याख्या में भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि जैसे द्वेषात्मक प्रवृत्ति वाले मनुष्य का बैठे रहना हितकारी होता है वैसे ही रागात्मक प्रवृत्ति वाले मनुष्य का खड़े रहना या गमन करना हितावह होता है। अकारण एक ही स्थान पर रहने से संसर्ग की वृद्धि होती है और काम की अभिलाषा को प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए ग्रामानुग्राम विहरण करना ब्रह्मचर्य का उपाय बताया गया है।

ज्ञाताधर्मकथा में कुण्डरिक और पुण्डरिक की कथा में अशन आदि मनोज्ञ विषयों की मूर्च्छा में जनपद विहार न कर एक ही स्थान पर रहने को श्रामण्य से पतन बताया गया है।[201]

व्यवहार भाष्य में काम चिकित्सा की क्रमबद्ध विधि का उल्लेख है – वहां भी एक उपाय जनपद विहार है।[202]

निशीथ सूत्र के अनुसार निरन्तर नित्यवास से अतिपरिचय होता है, इससे अवज्ञा या अनुराग दोनों ही हो सकते हैं। इसलिए मुनि के लिए नौ कल्प विहार का विधान है। इसके अनुसार चातुर्मास के अतिरिक्त एक स्थान पर एक मास से अधिक रहना नहीं कल्पता। ऐसे स्थानों पर दुबारा रहने के लिए मासकल्प या चातुर्मासकल्प से दोगुना काल अन्यत्र विचरना

आवश्यक है। इस कल्प का उल्लंघन होने पर लघुमासिक प्रायश्चित्त का विधान है।[203]

## 2.15. प्राण विसर्जन

आचारांग सूत्र में ब्रह्मचर्य सुरक्षा के अनेक उपायों का निदर्शन हैं। काम वासना को नियंत्रित करने के अनेक उपाय कर लेने पर भी यदि काम शांत न हो तो संलेखना कर भक्त प्रत्याख्यान (अनशन) करने का निर्देश है। [204]

ब्रह्मचर्य साधक के सामने अनायास ही स्त्री परीषह उपस्थित हो सकता है। ऐसी स्थिति में भी ब्रह्मचर्य साधक के लिए शरीर की अपेक्षा ब्रह्मचर्य अधिक मूल्यवान है। इसलिए ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए शरीर का त्याग कर देना तुच्छ वस्तु को छोड़कर मूल्यवान वस्तु को बचाने के समान है। इसे स्पष्ट करते हुए भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि यदि कोई कामुक स्त्री ब्रह्मचारी को बल पूर्वक रोक ले तथा भोग का प्रयास करे और उससे बचने का उपाय न हो तो ब्रह्मचारी के लिए गले में फांसी लगाकर शरीर का विसर्जन करना श्रेयस्कर है। [205]

इस प्रसंग की प्राचीन परम्परा का उल्लेख करते हुए भाष्यकार लिखते हैं – कोई भिक्षु भिक्षा के लिए जाए। पारिवारिक लोग उसकी पूर्व पत्नी सहित उसे कमरे में बंद कर दे। वह कमरे से बाहर निकल न सके और पत्नी उसे विचलित करने का प्रयत्न करे, तब वह श्वास बंद कर मृतक जैसा हो जाए और अवसर पाकर गले में दिखावटी फांसी लगाने का प्रयत्न करे। उस समय वह स्त्री कहे आप चले जाएं किन्तु प्राण त्याग न करें तब वह भिक्षु आ जाए और यदि वह स्त्री उसे ऐसा न कहे तो वह गले में फांसी लगाकर प्राण त्याग कर दे।

शील रक्षा का प्रयोजन होने पर मुनि के लिए दो प्रकार की मृत्यु का विधान हैं –

1. वैहायस मरण – फांसी लगाकर मरना।

2. गृद्धस्पृष्ट मरण – बृहत्काय वाले जानवर के मृत शरीर में प्रवेश कर अपने शरीर का व्युत्सर्ग करना।

सामान्यतः वैहायस मृत्यु की स्वीकृति दी गई है। आचारांग के अनुसार उपसर्ग की अवस्था में अथवा असहनीय मोहनीय कर्म की स्थिति में फंसे हुए साधक के लिए कालपर्याय है। ऐसा करना बाल मरण नहीं है। भगवान द्वारा अनुज्ञात है। क्योंकि उस मृत्यु से वह अन्तक्रिया करने वाला अर्थात् पूर्ण कर्म क्षय करने वाला भी हो सकता है। यह मरण प्राण विमोह की साधना का आयतन, हितकर, सुखकर, कालोचित्त, कल्याणकारी और भविष्य में साथ देने वाला होता है।[206]

ठाणं सूत्र में भगवान महावीर ने ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए प्राण विसर्जन अनुचित नहीं माना है। [207] आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए प्राणों का नाश करना प्रशस्त मरण है क्योंकि वहां राग–द्वेष की प्रवृत्ति नहीं होती है।[208]

## 2.16 संघबद्ध साधना

जैन परम्परा में साधना के दो माध्यम होते थे – 1. एकाकी साधना और 2. संघबद्ध साधना। जो साधक बहुश्रुत, दृढ़ मनोबली और विशिष्ट शारीरिक संघनन वाले होते थे, वे एकाकी साधना स्वीकार करते थे। सामान्य साधक के लिए संघबद्ध साधना ही निरापद होती थी। वर्तमान में एकाकी साधना का विच्छेद हो चुका है इसलिए दूसरा विकल्प ही साधना का एकमात्र माध्यम है।

सूत्रकृतांग सूत्र की टीका में इस तथ्य को रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है। टीकाकार कहते हैं कि अकेला सिंह हजारों योद्धा के शिविर को नष्ट कर देता है, वह सदा अकेला रहता है। उसका कोई सहायक नहीं होता। उसे पकड़ना बहुत कठिन है, फिर भी सिंह को पकड़ने के विशेषज्ञ पुरुष उसे जीवित ही पकड़ लेने के अनेक उपाय जानते हैं।[209] इसी प्रकार कोई साधक भले ही कितना ही तेजस्वी और पराक्रमी हो, कुछ स्त्रियां उसे कैसे फंसाया जाए, इसके उपाय जानती हैं।

स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक शक्ति पुरुषों की अपेक्षा कमजोर मानी जाती है। इसलिए स्त्री साधक के लिए तो संघबद्ध साधना ही अनिवार्य होती है। व्यवहार भाष्य में कहा गया है –

**जातं पिय रक्खंती, माता-पिति-सासु-देवरादिण्णं।**
**पिति-भाति-पुत्र-विध्वं, गुरु-गणि-गणिणी म अज्जं पि।।**

जन्मते ही नारी की रक्षा माता–पिता करते हैं। विवाह के पश्चात् सास, ससुर, देवर, पति आदि रक्षा करते हैं। विधवा होने पर पिता, भ्राता, पुत्र आदि उसकी रक्षा करते हैं। इसी प्रकार आर्यिका की रक्षा आचार्य, गणी, उपाध्याय तथा प्रवर्तिनी – ये करते हैं।[210]

## 2.17 सम्यक् प्रवृत्तियों में व्यस्तता

प्रसिद्ध लोकोक्ति है – 'खाली मन शैतान का घर।' मन जब किसी कार्य में व्यस्त नहीं रहता तब वह कामभोगों की तरफ भागता है। आचारांग में काम के प्रति आकर्षण हटाने के लिए मन को स्वाध्याय, ध्यान, सेवा आदि सम्यक् प्रवृत्तियों में नियोजित करना बताया गया है।[211]

व्यवहार भाष्य में वेदोदीर्ण शिष्य की काम चिकित्सा की अनेक विधियां बताई गई है। वहां अबहुश्रुत शिष्य को वैयावृत्य आदि में और बहुश्रुत शिष्य को सूत्रमंडली, अर्थमंडली में नियुक्त करने का निर्देश है। टीका में इसकी पुष्टी के लिए एक सुन्दर दृष्टान्त भी दिया गया है।[212]

## 2.18 हास्यवर्जन

प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचारी के लिए हंसी ठट्टा आदि को त्याज्य आचरण कहा है।[213] दसवैकालिक सूत्र में संप्रहास वर्जन का निर्देश है।[214] यहां संप्रहास का अर्थ समुदित रूप

से होने वाला सशब्द हास्य किया गया है। जिनदास गणि ने इसका अर्थ अट्टहास किया है।

आयुर्वेद के संदर्भ में इसे देखने पर इसका ब्रह्मचर्य सुरक्षा से गहरा संबंध प्रतीत होता है। सुश्रुत संहिता में अति प्रसन्नता – अट्टहास पूर्ण हंसी को शुक्र की प्रवृत्ति का एक कारण माना गया है।[215]

## 2.19 निमित्तों से बचाव

ब्रह्मचर्य साधना पर बाहरी निमित्तों का अनुकूल व प्रतिकूल दोनों ही प्रभाव पड़ता है। इसी दृष्टि से जैन आगमों में अनेक स्थलों पर ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए नवबाड़ और एक कोट का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मचर्य के परिरक्षण हेतु विकारोत्पादक निमित्तों से, चाहे वे कितने ही छोटे क्यों न हों, बचाव करना परमावश्यक है।

बृहत्कल्प सूत्र, जो कि मुनि के लिए विधि एवं निषेधों की आचार संहिता हैं, में विकारोत्पादक निमित्तों से बचाव करने के लिए अति सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया गया है –

- कुछ खाद्य पदार्थों का आकार विशेष स्त्रियों के लिए विकारोत्पादक हो सकता हैं, जैसे – भिंडी, मिर्ची, बैंगन, भुट्टे, शकरकंद, करेला, केला आदि। इसलिए साध्वियों को ये अखण्ड रूप में लेना नहीं कल्पता हैं। यदि इनके छोटे–छोटे टुकड़े किए गए हों तो वे ले सकते हैं।[216]
- ब्रह्मचर्य सुरक्षा में साधकों के प्रवास स्थल का बहुत बड़ा महत्त्व है। जहां परस्पर मिलने आदि के प्रसंग की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है, वहां रागात्मक स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसलिए निवास संबंधी निर्देश इस प्रकार हैं – किसी ऐसे गांव यावत् राजधानी में, जो एक ही प्राकार से घिरा हो या विभाजित हो या जिसके एक ही द्वार हो या निर्गमन या आगमन का एक ही मार्ग हो, साधु–साध्वियों को एक समय में – एक साथ वहां प्रवास करना नहीं कल्पता हैं।[217]
- किसी ऐसे ग्राम यावत् राजधानी में, जो अनेक प्राकारों, अनेक द्वारों या अनेक निर्गमन–आगमन मार्गों से युक्त हो, साधु–साध्वियों को वहां एक समय में प्रवास करना कल्पता है।[218]
- इसके अतिरिक्त ऐसे स्थान जहां अनेक अपरिचित लोगों का आवागमन हो वहां[219] तथा खुले (कपाट रहित) स्थान में[220] साध्वियों का प्रवास करना नहीं कल्पता हैं।
- साधु–साध्वियों को परस्पर एक दूसरे के स्थान पर भी जाने तथा वहां विविध कार्य करने के संदर्भ में भी बृहत्कल्प सूत्र यह कहता है कि वहां जाना और रहना नहीं कल्पता है।[221] निशीथ एवं बृहत्कल्प दोनों में इसका प्रायश्चित्त गुरु चौमासी बताया गया है।[222]

स्वाध्याय, सेवा आदि के लिए एक दूसरे के उपाश्रय में जाने का उल्लेख ठाणं एवं व्यवहार सूत्र में मिलता है। 'परम्परा की जोड़' में श्रीमद् जयाचार्य ने इस पर विशद विवेचन किया है। उनके अनुसार आवश्यक कार्य के लिए भी साधु–साध्वियों को एक दूसरे के स्थान में अकाल का वर्जन कर जाना चाहिए।

· कुछ पात्र विशेष भी विकारोत्पादक हो सकते हैं। जैसे बृहत्कल्प सूत्र में एक 'मात्रक' नामक पात्र विशेष का उल्लेख मिलता है जो भीतर से लीपा हुआ – चिकना किया हुआ, छोटे घड़े के आकार का होता था। जिसका उपयोग उच्चार–प्रस्रवण एवं कफ आदि के लिए लिया जाता था। ऐसे पात्र साध्वियों के लिए विकारोत्पादक नहीं होते। साधुओं में इससे विकार की संभावना रहती है इसलिए इसका उपयोग साधुओं के लिए निषिद्ध था।[223]

· ऐसे प्रवास स्थान या उपाश्रय जो कामक्रीड़ा, नारी सौन्दर्य आदि विकारोत्पादक चित्रों से युक्त हो, वहां साधु–साध्वियों को रहना नहीं कल्पता हैं।[224]

· साध्वियों के लिए किसी गृहस्थ के नैश्राय में रहना ही कल्पता है।[225]

· विचार भूमि एवं विहार में रात्रि में अकेले गमनागमन से ब्रह्मचर्य को खतरा एवं स्त्री परीषह की संभावना बन सकती है। इसलिए बृहत्कल्प सूत्र में इसका भी निषेध है।[226]

### 3.0. सुरक्षा उपायों की उपेक्षा का परिणाम

ब्रह्मचर्य व्रत का स्थान सभी व्रत में सर्वोपरि है। यह बहुत ही संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए इसकी सुरक्षा के लिए इतने कड़े प्रबन्ध किए गए। ब्रह्मचारी के लिए यह अति आवश्यक है कि इसकी सुरक्षा के उपाय का वह सजगता से पालन करे। ये सुरक्षा–उपाय ब्रह्मचर्य की सिद्धि के उत्कृष्ट सहायक भी हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार इन उपायों की उपेक्षा करने से ब्रह्मचर्य के नष्ट होने की संभावनाएं इस प्रकार रहती हैं।[227]

**(1) शंका** – 'ब्रह्मचर्य का पालन करने में कोई लाभ है या नहीं', 'तीर्थंकरों ने अब्रह्मचर्य का निषेध किया है या नहीं?' 'अब्रह्मचर्य के सेवन में जो दोष बतलाए गए हैं, वे यथार्थ है या नहीं?' इस प्रकार की अनेक प्रकार की शंका ब्रह्मचारी के मन में उत्पन्न हो सकती है। ये शंकाएं ब्रह्मचर्य के प्रति साधक की श्रद्धा को कमजोर करती हैं। इससे मानसिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

**(2) कांक्षा** – शंका के प्रगाढ होने के पश्चात् साधक के मन में अब्रह्मचर्य सेवन की अभिलाषा उत्पन्न होने लगती है। इससे साधक साधना के मार्ग से एक कदम और पीछे हो जाता है।

**(3) विचिकित्सा** – इसका अर्थ है चित्त का विप्लव। जब अभिलाषा तीव्र हो जाती है तब मन समूचे धर्माचरण के प्रति विक्षुब्ध हो जाता है। इस अवस्था में मानसिक संकल्पों–विकल्पों के ज्वार उठने लग जाते हैं।

**(4) भेद** – जब विचिकित्सा का भाव पुष्ट हो जाता है तब चारित्र का भेद–विनाश हो जाता है।

**(5) उन्माद** – कोई मनुष्य ब्रह्मचारी तभी रह सकता है जब वह ब्रह्मचर्य में अब्रह्मचर्य की अपेक्षा अधिक आनंद माने। यदि कोई इन्द्रिय और मन पर नियंत्रण तो नहीं रख पाता लेकिन हठ पूर्वक या संकोचवश ब्रह्मचर्य का पालन करता है तो वह मानसिक उन्माद ग्रस्त हो सकता है।

**(6) दीर्घकालीन रोग और आतंक** – ब्रह्मचर्य का पालन चेतना के ऊर्ध्वारोहण से सहज होता है। यदि चेतना कामवासना से ऊपर न उठे तो बाहरी दबाव या हठपूर्वक अपनाया गया ब्रह्मचर्य मात्र दमन होता है। ऐसी स्थिति में साधक विक्षिप्त हो जाता है। फलस्वरूप वह अनेक दीर्घकालीन रोगों से ग्रस्त हो जाता है तथा उसे आकस्मिक उत्पन्न होने वाले रोग (आतंक) का भी खतरा रहता है।

**(7) धर्म–भ्रंश** – इन पूर्व अवस्थाओं में जो अपना बचाव नहीं कर सकता वह अन्ततः धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अर्थात् वह ब्रह्मचर्य भंग कर बैठता है और साधना का मार्ग छोड़ देता है।

## 4.0. निष्कर्ष

ब्रह्मचर्य साधना महासंग्राम की तरह होती है। संग्राम की रणनीति के अन्तर्गत शत्रु पर आक्रमण व रसद की आपूर्ति को रोकना एक आवश्यक अंग होता है। अध्यात्म संग्राम में मोहनीय कर्म पर आक्रमण एवं उसको बढाने वाले निमित्तों से बचाव मुख्य रणनीति का भाग होता है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य संग्राम में भी अन्दर के वासना–विकारों पर अध्यात्म साधनों द्वारा आक्रमण एवं वासना–विकारों को बढाने वाले निमित्तों से स्वयं की सुरक्षा इस रणनीति का मुख्य हिस्सा है। अतः इस संग्राम में साधक संभावित खतरों से सावधान रहता है। जैन आगमों के रचनाकारों एवं व्याख्याकारों ने यह अनुभव किया कि ब्रह्मचर्य साधना में निमित्तों से स्वयं की सुरक्षा का बहुत बड़ा महत्त्व है। साधना के अनुकूल निमित्त जहां विकास में सहयोगी बनते हैं, वहीं प्रतिकूल निमित्त साधना का विघात करने वाले प्रबल हेतु भी होते हैं। साधक की ब्रह्मचर्य साधना निर्बाध रूप से बढती रहे इसलिए जैन आगमों में ब्रह्मचर्य सुरक्षा के उपायों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

ठाणं, समवायांग एवं आवश्यक आदि सूत्रों में ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों का वर्णन है वहीं प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य एवं अब्रह्मचर्य पर विस्तृत मार्गदर्शन है तथा उत्तराध्ययन सूत्र में

''ब्रह्मचर्य समाधि स्थान'' के नाम से स्वतंत्र अध्याय है जिसमें ब्रह्मचर्य सुरक्षा के लिए दस स्थानों का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक आगमों में 'ब्रह्मचर्य की पांच भावनाएं' के रूप में सुरक्षा उपाय प्राप्त होते हैं। व्यवस्थित एवं विस्तृत इन सुरक्षा साधनों के अलावा जैन आगमों में अनेक ऐसे सूत्र विकीर्ण रूप से भी मिलते हैं जो ब्रह्मचर्य साधक के लिए सुरक्षा कवच का कार्य करते हैं। इन समस्त सुरक्षा साधनों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रथम सुरक्षा चक्र – संसर्ग संयम
द्वितीय सुरक्षा चक्र – पंचेन्द्रिय संयम और
तृतीय सुरक्षा चक्र – मन संयम।

प्रथम सुरक्षा चक्र वासना को उद्दीप्त करने वाले बाह्य वातावरण से रक्षा करता है। इसके अन्तर्गत वेश्याओं, कामुक स्त्री–पुरुषों तथा कामुक वातावरण से ब्रह्मचारी की रक्षा होती है। आगमों में इसे विविक्तशयनासन के रूप में लिया गया है।

दूसरा सुरक्षा चक्र पंचेन्द्रिय संयम है। इन्द्रियां बाह्य वातावरण एवं आत्मा की सेतु होती हैं। इन्द्रिय संयम के अभाव में ब्रह्मचारी विषयासक्त होकर विचलित हो सकता है। आगमों में वर्णित ब्रह्मचर्य गुप्ति स्थानों एवं समाधि स्थानों में इस सुरक्षा चक्र का इतना महत्त्व है कि वहाँ पृथक्–पृथक् इन्द्रिय विषयासक्ति के वर्जन का निर्देश है तो समुच्चय रूप में पांचों विषयों को एक साथ भी उल्लेख कर इनकी आसक्ति से बचने का निर्देश है। जैन आगमों में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए एक–एक इन्द्रिय विषयों के संयम का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

(i) **श्रोतेन्द्रिय संयम** – श्रोतेन्द्रिय का विषय है– शब्द। आचार्य महाप्रज्ञ शब्द को अनन्त शक्ति का पुंज मानते हैं। एक छोटा सा शब्द हमारी चेतना में भारी विप्लव उत्पन्न कर सकता है। अश्लील गीत, वार्तालाप, स्त्रियों का कामोत्तेजक वर्णन आदि सुनने से व्यक्ति कामान्ध हो सकता है। जैन कथा साहित्य में स्त्रियों के चित्रण को सुनकर अनेक युद्ध होने का वर्णन आता है– द्रौपदी, सीता, मल्ली कुमारी आदि के रूप का वर्णन युद्ध का निमित्त बना था। वर्तमान में भी श्रव्य संसाधनों का अश्लील प्रयोग अनेक समस्याएं उत्पन्न कर रहा है।

(ii) **चक्षु संयम** – व्यक्ति के मन में वासना का प्रवेश द्वार है– दृष्टि। इसलिए जैन आगमों में स्त्रियों के अंग–प्रत्यंगों को दृष्टि गढ़ाकर, राग–भाव से देखने तथा विशेष रूप से आंख से आंख मिला कर देखने का निषेध है । न केवल स्त्री बल्कि स्त्री के चित्रों को तथा स्वयं की परछाई को भी देखना वर्जित है। इस निषेध का कारण बताते हुए सूत्रकार कहते हैं कि इससे साधक बहिरात्मा बन जाता है। मुनि रथनेमि आदि का उदाहरण भी इसकी पुष्टि में दिया गया है। आवश्यकतावश स्त्रियों को देखना ही पड़े तो उपेक्षाभाव से व क्षणिक देखकर फिर दृष्टि हटा लेने का समाधान भी दिया गया है।

(iii) **घ्राणेन्द्रिय संयम** – रसनेन्द्रिय के विषयों के साथ घ्राणेन्द्रिय के विषय रहते हैं। फिर भी पृथक रूप से भी केवल सुगन्ध के लिए अनेक द्रव्यों का उपयोग किया जाता है। कुछ गंध विशेष का मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए जैन आगमों में ब्रह्मचर्य साधक के लिए इत्र, चंदन, केसर आदि सुगन्धित पदार्थों का उबटन, विलेपन, आदि का प्रयोग निषिद्ध हैं। इन पदार्थों से कामुकता की वृद्धि का समर्थन आयुर्वेद शास्त्र भी करता है।

(iv) **रसनेन्द्रिय संयम** – स्वास्थ्य शास्त्र के अनुसार व्यक्ति की कामुकता एवं भोजन का गहरा संबंध है। मनुष्य द्वारा किया गया भोजन रस, रक्त, मांस आदि सात धातुओं में क्रमशः परिवर्तित होता है। इसकी अन्तिम परिणति वीर्य होती है।

आहार के मुख्यतः दो कार्य होते हैं – (i) शरीर को धारण करने की शक्ति देना तथा (ii) काम संज्ञा को उत्पन्न करना । अतः जैन आगमों में आहार का सर्वथा निषेध नहीं है। वहाँ आहार–विवेक का निर्देश है ताकि धर्म का आधारभूत शरीर भी पलता रहे और काम संज्ञा का उद्दीपन भी न हो। जैन आगमों में ब्रह्मचारी के लिए आहार संबंधी निर्देशों को निष्कर्षतः दो रूप में देखा जा सकता हैं –

(अ) प्रणीत रस का विवेक – दूध, घी आदि के सर्वथा वर्जन से शरीर में शुष्कता एवं निर्बलता बढ जाती है इससे ज्ञान, ध्यान, सेवा आदि यथेष्ट प्रवृत्तियों में बाधा आती है। परन्तु इनका प्रतिदिन एवं अतिमात्रा में सेवन करने से कामोत्तेजना बढती है। इसलिए जैन आगमों में ब्रह्मचारी को यह निर्देश है कि ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए वह अति मात्रा में प्रतिदिन प्रणीत रसों का सेवन न करे।

(ब) मात्रा का विवेक – अरस, अप्रणीत अर्थात् सामान्य आहार भी यदि मात्रा से अधिक लिया जाता है तो यह ब्रह्मचर्य की दृष्टि से उचित नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक क्षमता भिन्न–भिन्न होती है ऐसी स्थिति में उचित मात्रा का निर्धारण करना कठिन होता है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार आहार की मात्रा उतनी ही पर्याप्त है जितनी व्यक्ति आसानी से पचा सके। आहार करने के बाद पेट में तनाव, भारीपन का अनुभव हो रहा हो तो समझना चाहिए आहार की मात्रा ज्यादा है और आहार के बाद तन–मन में हल्कापन व प्रसन्नता हो तो समझें मात्रा अधिक नहीं है। आगम मनीषियों ने ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए आहार की मात्रा के विवेक पर बहुत बल दिया है।

ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए आहार की अतिमात्रा का वर्जन शरीर शास्त्रीय कारणों से भी किया गया लगता है। मनुष्य की बड़ी आँत वीर्याशय के पास से गुजरती है। जब बड़ी आंत में अतिशय मल और वायु जमा हो जाती है तो वीर्याशय पर दबाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप बिना निमित्त के भी कामोत्तेजना एवं वीर्य स्खलन हो सकता है।

(v) **स्पर्शनेन्द्रिय संयम** – अब्रह्मचर्य का स्पर्शनेन्द्रिय से सीधा संबंध है। जैन आगमों में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए स्पर्शनेन्द्रिय संयम पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इसके अन्तर्गत ब्रह्मचारी का स्त्री, पशु आदि के शरीर का स्पर्श, संघर्षण आदि निषेध तो हैं ही स्वयं के गुह्य अंगों का भी अकारण स्पर्श वर्जित है।

**ब्रह्मचर्य का तीसरा सुरक्षा चक्र है** – मन संयम। अब्रह्मचर्य के संस्कार सर्व प्रथम मन में अकुंरित होते हैं। मानसिक संकल्प अब्रह्मचर्य का सूक्ष्म अर्थात् अदृश्य निमित्त होता है। यही संकल्प बाह्य निमित्त के मिलने पर विकसित हो जाता है। मानसिक प्रवृत्ति तीन प्रकार की होती हैं – (i) स्मृति (ii) चिंतन (iii) कल्पना।

(i) **स्मृति** – अतीत काल में भोगे गए काम भोगों को याद करना 'स्मृति' है। इसलिए ब्रह्मचर्य की सुरक्षा की दृष्टि से जैन आगमों में पूर्व भुक्त भोगों के स्मरण का निषेध किया गया है।

(ii) **चिंतन** – वर्तमान में काम भोग के विषय का चिंतन करना भी ब्रह्मचर्य के लिए खतरनाक होता है। काम–चिंतन से व्यक्ति दिङ्मूढ बन जाता है उसमें कर्तव्य–अकर्तव्य का बोध नहीं रहता है।

(iii) **कल्पना** – भविष्य में काम–भोगों का संकल्प–विकल्प करना कल्पना है। भविष्य में काम भोग के लिए ताने बाने बुनते रहने से साधक साधना–पथ से पतित हो जाता है।

इन तीनों सुरक्षा चक्रों में मन संयम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि इसके सुरक्षित न रहने पर प्रथम दो सुरक्षा चक्रों का कोई विशेष उपयोग नहीं रहता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मचर्य मात्र ऊपरी उपचार रहता है जो अधिक देर तक स्थायी नहीं रहता। प्रथम दो सुरक्षा चक्रों का महत्त्व तभी तक है जब तक साधना परिपक्व नहीं होती। मन के मजबूत हो जाने के बाद इसका कोई विशेष मूल्य नहीं रहता। इस तथ्य के समर्थन में स्थूलिभद्र का उदाहरण लिया जा सकता है। कोशा वेश्या की काम शाला में रहकर, अत्यन्त गरिष्ठ व उत्तेजक पदार्थों का सेवन कर, कोशा वेश्या के कामुक हाव भाव युक्त निमंत्रण को देखते–सुनते हुए भी उनके मन में विकार की एक तरंग भी नहीं उठी।

फिर भी, ब्रह्मचर्य के बाह्य सुरक्षा चक्रों का भी अपना महत्त्व है। स्थूलिभद्र का दृष्टान्त एक अपवाद है। सभी साधक प्राथमिक स्तर पर उतने मजबूत नहीं होते। बाह्य सुरक्षा के अभाव में ब्रह्मचर्य की सुरक्षा संदेहास्पद ही रहती है। वैदिक परम्परा में भी इन सुरक्षा चक्रों को ब्रह्मचर्य का ही अंग माना गया हैं।

ब्रह्मचर्य सुरक्षा के साथ–साथ इसका निरन्तर विकास भी आवश्यक है। जैन आगमों में इसके क्रमिक विकास के अनेक सूत्र प्रतिपादित हैं। आगामी अध्ययन में प्रस्तुत है उन विकास के साधनों का विवेचन।

## 5.0 संदर्भ


1. ठाणं 9/3
2. समवायांग 9/1:
3. समवाओ 9/1 के टिप्पण में उद्धृत
   आवश्यक वृत्ति (आचार्य हरिभद्र) भाग –2 पृष्ठ पृ. 104
4. उत्तराध्ययन 16/ आमुख पृष्ठ 364 में उद्धृत – मूलाचार 11/13,14
5. उत्तरज्झयणाणि 16/आमुख पृ. 364 म उद्धृत अणगार धर्मामृत 4/61
6. सूयगडो (1) 10/15
7. (अ) ठाणं 9/3
   (ब) समवायांग 9/1
   (स) दसवेआलियं 8/51
   (द) उत्तरज्झयणाणि 16/3
   (च) आवश्यक वृत्ति भाग–2, पृ. 104 (समवाओ 9/1 के टिप्पण में उद्धृत)
8. उत्तरज्झयणाणि 35/3,4
9. (अ) उत्तरज्झयणाणि 32/16
   (ब) वही 35/5
10. उत्तरज्झयणाणि 32/12
11. बृहत्कल्प सूत्र 1/25
12. वही 1/26
13. वही 1/27
14. वही 1/28
15. वही 1/29
16. वही 1/30
17. बृहत्कल्प सूत्र 1/30 के विवेचन से उद्धृत
18. बृहत्कल्प सूत्र 1/32
19. प्रश्नव्याकरण सूत्र (2)4/12
20. दसवेआलियं 5(1)/ 9,10,11
21. आचारांग भाष्यम् 4 (2)/ 17
22. सूयगडो (1) 3/70
23. वही (1) 3/71
24. वही (1) 3/72

25. वही (1) 3/28
26. वही (1) 9/28 का टिप्पण संख्या 92 में उद्धृत– सू/ निर्युक्ति।
27. उत्तरज्झयणाणि 4/13
28. ज्ञानार्णव 14/43
29. वही 14/44
30. भगवती आराधना 344
31. वही 347
32. वही 348
33. सूयगडो (1) /4/ टिप्पण संख्या 130 में उद्धृत सू/ चूर्णि : पृ. 120
34. वही (1) /4/ टिप्पण संख्या 40 में उद्धृत सू/ चूर्णि : पृ. 109
35. वही (1) /4/ टिप्पण संख्या 40 में उद्धृत सू/ चूर्णि : पृ. 107
36. वही (1) /4/ टिप्पण संख्या 47 में उद्धृत
    (अ) चूर्णि : पृ. 109
    (ब) वृत्ति पत्र 110
37. सूयगडो (1)/41 टिप्पण संख्या 131 में उद्धृत चूर्णि पृ. 120
38. आचारांग भाष्यम् 5 (4)/87
39. सूयगडो (1) /4/ टिप्पण संख्या 30 में उद्धृत सू/ चूर्णि : पृ. 106
40. वही (1) /4/ टिप्पण संख्या 38 में उद्धृत सू/ चूर्णि : पृ. 107
41. वही (1) /4/13
42. वही (1) /4/13/ का टिप्पण संख्या 40 में उद्धृत चूर्णि : पृ. 107
43. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/12
44. दसवेआलियं 8/55
45. उत्तराध्ययन 35/7
46. भगवती आराधना 971–975
47. पथ और पाथेय, पृ. 40–41
48. सूयगडो (1) /4/15 का टिप्पण संख्या 45 में उद्धृत वृत्ति, पत्र 109
49. वही (1) /4/14,15
50. वही (1) /4/14 के टिप्पण संख्या 43 में उद्धृत वृत्ति, पत्र
51. दसवेआलियं 5(1)/ 10: टिप्पण संख्या 43 में उद्धृत (अ) अ.चू.पृ. 101
    (ब) जि. चू. पृ. 171
52. सूयगडो (1) /4/ का टिप्पण संख्या 124 में उद्धृत वृत्ति, पत्र 118

53. वही (1) /4/ का टिप्पण संख्या 124 में उद्धृत वृत्ति, पत्र 118
54. वही (1) /4/ का टिप्पण संख्या 124 में उद्धृत वृत्ति, पत्र 118
55. वही (1) /4/ का टिप्पण संख्या 128 में उद्धृत वृत्ति, पत्र 119
56. (अ) दसवेआलियं 8/53
    (ब) उत्तरज्झयणाणि 32/13, 17
57. जैन आचार मीमांसा / पृ. 126
58. सूयगडो (1) /4 टिप्पण संख्या 19 में उद्धृत
    (अ) वृत्ति पत्र 106
    (ब) वृत्ति पत्र 113
59. सूयगडो (1)/4/2
60. वही (1)/4/4 टिप्पण संख्या 71
61. वही (1)/4/3
62. वही (1) /4/33
63. वही (1)/4, टिप्पण संख्या 63 में उद्धृत
64. ज्ञाताधर्मकथा 8/117 के टिप्पण संख्या 22 में उद्धृत ज्ञातावृत्ति, पत्र 146
65. सूयगडो (1) /4 का टिप्पण संख्या 58 में उद्धृत – चूर्णि, पृ. 110
66. वही (1) /4/ टिप्पण संख्या 14 में उद्धृत –
    (क) चूर्णि : पृ. 104 (ख) वृत्ति, पत्र 106
67. सूयगडो (1) /4/ का टिप्पण संख्या 63 में उद्धृत चूर्णि, पृ. 112
68. भगवती आराधना / 936
69. सूयगडो (1) /4/ का टिप्पण संख्या 63 में उद्धृत चूर्णि, पृ. 112
70. वही (1) /4/23,24
71. वही (1) /4/ टिप्पण संख्या 63 में उद्धृत – चूर्णि पृ. 112
72. उत्तरज्झयणाणि 2/16 के टिप्पण से उद्धृत – उत्तरा. चूर्णि, पृ.65
73. वही 2/16 के टिप्पण से उद्धृत – सू. चूर्णि, पृ. 110
74. ज्ञानार्णव 50
75. वही 54
76. भगवती आराधना 989–996
77. वही 988
78. करत करत अभ्यास / 31
79. निशीथ 8/1–9,11–13

80. ठाणं 4/241– 245 का टिप्पण संख्या 43–47 में उद्धृत– स्थानांग, वृत्ति पत्र 199
81. आवश्यक सूत्र/ विकथा सूत्र
82. ठाणं 4/241
83. ठाणं 9/3
84. समवाओ 9/1
85. दसवेआलियं 8/49
86. वही 8/52
87. उत्तरज्झयणाणि 16/4: टिप्पण संख्या 6 में उद्धृत–
    (अ) चूर्णि, पृ. 242
    (ब) वृहद् वृत्ति, पत्र 424
88. समवाओ 9/1 के टिप्पण में उद्धृत– आव. वृत्ति (आ. हरिभद्र) भाग– 2: पृ. 104
89. ठाणं 4/ 242
90. ठाणं 4/241–245 का टिप्पण संख्या 43–47 में उद्धृत स्थानांग वृत्ति, पत्र 199
91. ठाणं 4/241–245 का टिप्पण संख्या 43–47 में उद्धृत स्थानांग वृत्ति, पत्र 199
92. ठाणं 4/241–245 का टिप्पण संख्या 43–47 में उद्धृत स्थानांग वृत्ति, पत्र 199
93. ठाणं 4/241–245 का टिप्पण संख्या 43–47 में उद्धृत स्थानांग वृत्ति, पत्र 199
94. ठाणं 4/254
95. ठाणं 4/241–245 का टिप्पण संख्या 43–47 में उद्धृत स्थानांग वृत्ति, पत्र 121
96. ज्ञाताधर्मकथा सूत्र 16/201–206
97. आचारांग भाष्यम् 5 (4)/ 87
98. सूत्रकृतांग (1)/4/11 के टिप्पण संख्या 34 में उद्धृत
99. प्रश्नव्याकरण सूत्र 4
100. दसवेआलियं 8/41,52
101. उत्तरज्झयणाणि 16/2
102. आवश्यक सूत्र/ विकथा सूत्र

103. निशीथ 8/1–9,10
104. सूयगडो (1) /4/16
105. (अ) ठाणं 9/3
(ब) समवायांग 9/1
(स) उत्तराध्ययन 16/3,5; 32/12
(द) आवश्यक वृत्ति/ भाग 3: पृ. 104
106. सूयगडो (1)/4/ टिप्पण संख्या 18 में उद्धृत/ सू. वृत्ति पत्र 106
107. समवाओ 9/1: टिप्पण संख्या 2 में उद्धृत–स्थानांग वृत्ति, पत्र 422
108. समवाओ 18/3
109. वही 18/3 का टिप्पण संख्या 1
110. दसवेआलियं 6/56, 57, 58
111. आचारांग भाष्यम् 5(4)/84, 87
112. वही 5 (4)/ 87
113. सूयगडो (1)/4/5
114. वही (1)/4/5 टिप्पण संख्या 16 में उद्धृत–स्थानांग वृत्ति, पत्र 106
115. (अ) ठाणं 9/1
(ब) समवायांग 9/3
116. प्रश्नव्याकरण सूत्र (2)/4/
117. दसवेआलियं 8/57
118. वही 8/54
119. वही 5(1)/15
120. वही 3/3
121. वही 2/9
122. (अ) उत्तरज्झयणाणि 16/6,4
(ब) वही 32/14,15
(सू) वही 35/4,5
123. उत्तरज्झयणाणि 22/34–46
124. उत्तरज्झयणाणि16/9 के टिप्पण में उद्धृत
(अ) उत्तराध्ययन चूर्णि पृष्ठ: 242–243 प्रणीतं – गलत्स्नेहंतैलधृतादिभिः।
(ब) उत्तराध्ययन बृहद् वृत्ति पत्र 426 प्रणीत गलद्बिन्दु, उपलक्षणत्वादन्यमप्यत्यन्त धातु द्रककारिणम्।

125. ठाणं 9/23
126. ठाणं 9/23 के टिप्पण संख्या 12 में उद्धृत– प्रवचन सारोद्धार वृत्ति, पत्र 53
127. आचारांग भाष्यम् 5 (4) /79
128. सूयगडो (1)/7/29
129. (अ) ठाणं 9/3
(ब) समवायांग 9/1
(स) उत्तराध्ययन 16/3,5 32/12
(द) आवश्यक वृत्ति / भाग 3, पृ. 104
130. नायाधम्मकहाओ / 18
131. प्रश्नव्याकरण सूत्र (2)/4/
132. दसवेआलियं 8/56
133. उत्तरज्झयणाणि 26/33, 34; 16/7,9
134. वही 35/17
135. वही 32/10
136. दशाश्रुतस्कन्ध / द्वितीय दशा
137. धर्मामृत अणगार 4/101
138. धर्मामृत अणगार 4/101 के टिप्पण में उद्धृत
139. अवबोध / पृ. 96, 97
140. संबोधि 10/12
141 वही 10/13
142. वही 10/14
143. आचारांग भाष्यम् 5 (4)/80
144. सूत्रकृतांग चूर्णि
145. ठाणं 6/42
146. उत्तरज्झयणाणि 32/11
147. संबोधि 10/11
148. (अ) आचारांग भाष्यम् 5(4) / 87
(ब) वही 4 (4)/46
149. सूयगडो (1) /9/21
150. ठाणं 4/450
151. ठाणं 4/480

152. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4
153. दसवेआलियं 3/6
154. ठाणं 9/3
155. (अ) समवायांग 9/1
(ब) उत्तरज्झयणाणि 16/ आमुख
156. (अ) ठाणं 9/3
(ब) समवायांग 9/1
157. आचारांग भाष्यम् 5 (3)/51
वही 5 (4)/75
158. वही 3 (3)/57
159. वही 2/94
160. वही 2 (5)/33
161. (अ) सूयगडो (1)/7/27
(ब) वही (1)/6/86
(स) वही (1)/9/32
162. वही (1) /4/ 51,52 के टिप्पण संख्या 135 में उद्धृत –
(अ) वृत्ति पत्र 120
(ब) चूर्णि पृष्ठ 120
163. निशीथ सूत्र 1/1–8
164. निशीथ सूत्र 7/13, 83–85, 92
165. सूयगडो (1) /10/ 4 के टिप्पण संख्या 16 में उद्धृत – वृत्ति, पत्र 190
166. वही (1) /10/ 4 के टिप्पण संख्या 16 में उद्धृत – चूर्णि
167. दसवेआलियं 8/19
168. वही 8/19 के टिप्पण संख्या 47 में उद्धृत – जि. चू. पृ. 280
169. उत्तरज्झयणाणि 16/9,10,12
170. वही 4/12
171. वही 32/12
172. (अ) ठाणं 9/3
(ब) समवायांग 9/1
173. आवश्यक सूत्र
174. दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र / दशम् दशा

175. उत्तरज्झयणाणि
176. भगवती आराधना 1237
177. सूयगडो (1)/ 4/7,8 के टिप्पण संख्या 22 में उद्धृत
(अ) चूर्णि पृ. 105 (ब) वृत्ति पत्र 107
178. नायाधम्मकहाओ 1/16
179. उत्तरज्झयणाणि16/5,7
180. समवाओ 9/1 के टिप्पण में उद्धृत–आवश्यक सूत्र (हरिभद्र वृत्ति) भाग–2 : पृ/104
181. आचारांग भाष्यम् 5 (4)/87
182. सूयगडो (1)/9/13
183. समवाओ 18/3
184. प्रश्नव्याकरण सूत्र (2) /4/5
185. वही (2)/4/6
186. दसवेआलियं 6/64:63
187. वही 6/65
188. वही 8/56
189. वही 6/66
190. उत्तरज्झयणाणि16/11
191. (अ) उत्तरज्झयणाणि16/9
(ब) वही 35/19
192. (अ) आवश्यक वृत्ति (आ. हरिभद्र) भाग 2, पृ. 104
(समवाओ 9/1 के टिप्पण में उद्धृत)
(ब) उत्तरज्झयणाणि 16/आमुख: पृ. 364 में उद्धृत – मूलाचार 11/13,14
(स) उत्तरा 16/ आमुख: पृ. 364 में उद्धृत – अणगार धर्मामृत, 4/61
193. निशीथ सूत्र 6/24–77
194. चरक संहिता/ सूत्रस्थान/ 5/96
195. आचारांग भाष्यम् 5 (4)/87,88
196. सूयगडो (1)/4 टिप्पण संख्या 24 में उद्धृत
197. प्रश्नव्याकरण सूत्र / 2 / 4 / 5

198. वही 2/4/6
199. उत्तरज्झयणाणि 1/26
200. आचारांग भाष्यम् 5 (4)/ 82
201. नायाधम्मकहाओ 19/39-41
202. व्यवहार भाष्य 1600-1601
203. निशीथ सूत्र 2/37
204. आचारांग भाष्यम् 5 (4)/ 83
205. वही 8 (4)/ 58
206. आचारांग और महावीर / पृ. 296
207. ठाणं 2/413
208. संबोधि 10/21
209. सूयगडो (1)/4 टिप्पण संख्या 26
210. सानुवाद व्यवहार भाष्य / 1590
211. आचारांग भाष्यम् 5 (4) / 75
212. (अ) सानुवाद व्यवहार भाष्य / 1601
(ब) व्यवहार भाष्य / परिशिष्ट 8, पृ. 146, कथा संख्या 79
213. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/5
214. दसवेआलियं सूत्र 8/41
215. सुश्रुत संहिता / निदान स्थान / 10/21
216. बृहत्कल्प सूत्र 1/4,5
217. वही 1/10
218. वही 1/11
219. वही 1/13
220. वही 1/14
221. वही 1/1, 1/2
222. निशीथ सूत्र 11/86-89, बृहत्कल्प सूत्र 3/1-2
223. बृहत्कल्प सूत्र 1/16, 17
224. वही 1/20
225. वही 1/22,23
226. वही 1/46,47
227. उत्तरज्झयणाणि16/ टिप्पण संख्या 5

# अध्याय पंचम
# ब्रह्मचर्य : विकास के साधन

## अध्याय पंचम

## 5. ब्रह्मचर्य : विकास के साधन

### रूपरेखा

**1.0. साधन – विमर्श**

**2.0. ब्रह्मचर्य–विकास के साधन**

- 2.1. ज्ञान
  - 2.1.1. ज्ञान के आयाम
  - 2.1.2. ज्ञान के साधन
- 2.2. दर्शन
- 2.3. चारित्र

**3.0. तप**

- 3.1 अनशन
- 3.2. ऊनोदरी
- 3.3. रस परित्याग
- 3.4. भिक्षाचरी
- 3.5. कायक्लेश –
  - 3.5.1. आसन
  - 3.5.2. प्राणायाम
  - 3.5.3 मुद्रा
  - 3.5.4 बंध
- 3.6. प्रतिसंलीनता
  - 3.6.1. इन्द्रिय प्रतिसंलीनता
  - 3.6.2. कषाय प्रतिसंलीनता
  - 3.6.3. योग प्रतिसंलीनता
  - 3.6.4. विविक्तशयनासन
- 3.7. प्रायश्चित्त
- 3.8. विनय
- 3.9. वैयावृत्य

3.10. स्वाध्याय

3.10.1. अनित्य भावना:

3.10.2. अशरण भावना

3.10.3. भव भावना

3.10.4. एकत्व भावना

3.10.5. अन्यत्व भावना

3.10.6. अशौच भावना

3.10.7 माध्यस्थ भावना

3.11. ध्यान

3.11.1 शरीर प्रेक्षा

3.11.2. आनंद केन्द्र प्रेक्षा

3.11.3. विशुद्धि केन्द्र प्रेक्षा

3.11.4. ब्रह्म केन्द्र प्रेक्षा

3.11.5. ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र प्रेक्षा

3.11.6. शक्ति केन्द्र प्रेक्षा

3.11.7. स्रोत दर्शन

3.11.8. संधि दर्शन

3.11.9. लेश्या ध्यान

3.11.10. दीर्घश्वास प्रेक्षा

3.11.11. अन्तर्यात्रा

3.11.12. अनिमेष प्रेक्षा

3.12 कायोत्सर्ग

**4.0. निष्कर्ष**

**5.0. संदर्भ**

## 5. ब्रह्मचर्य विकास के साधन

जीवन का ऊर्ध्वसंस्थापन, कला गत उपस्थापना, ओज–वीर्य और संस्कारों का परिरक्षण और अन्ततः आत्मभाव में रमण या चरण ब्रह्मचर्य पद वाच्य है। जैन वाङ्मय में ब्रह्मचर्य के स्वरूप, ब्रह्मचर्य के साधन, ब्रह्मचर्य रक्षण के उपाय, ब्रह्मचर्य की उपलब्धियां और ब्रह्मचर्य के परम लक्ष्यादि का प्रभूत विवेचन मिलता है। प्रस्तुत संदर्भ में ब्रह्मचर्य के विकास में सहायक संसाधनों का जैन परम्परा की दृष्टि से विवेचन काम्य है।

### 1.0. साधन–विमर्श

ब्रह्मचर्य के साधनों के विवेचन के पूर्व साधन क्या है? इस तथ्य का निरूपण या विश्लेषण आवश्यक है। साध–संसिद्धौ, धातु से ल्युट् (अन) प्रत्यय करने पर साधन शब्द निष्पन्न होता है, साध्यन्ति कार्याणि इति साधनानि अर्थात् कार्य की सिद्धि में सहायक होते हैं उन्हें साधन कहते हैं। आदि से लेकर अन्त तक जो क्रिया की फल प्राप्ति पर्यन्त सिद्धि में सहायक होते हैं उन्हें साधन कहते हैं। **क्रियासिद्धौं प्रकृष्टौपकारकं साधनमिति।**

सामान्य रूप से साधन और उपाय एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं लेकिन दोनों में अन्तर है। क्रिया अथवा कार्य को सहज रूप से आगे बढाने में जो उपयोगी होता है, वह साधन होता है, लेकिन 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति' अर्थात् श्रेष्ठ कार्य करते समय बहुत से विघ्न भी आते हैं। वे विघ्न क्रिया को फल लाभ तक जाने में बाधित कर देते हैं। उन विघ्नों का विनाश जिन संसाधनों से होता है, वह उपाय है। **उप समीपं अयवं गमनं वा उपाय**ः अर्थात् जो विघ्नों को वारित करता हुआ कार्य को फल लाभ तक पहुंचा दे, उसे उपाय कहते हैं। बाधक तत्त्वों का निरसन उपाय है, साधक तत्त्वों का आचरण साधन है। इसी भेद को ध्यान में रखकर ब्रह्मचर्य के साधन और ब्रह्मचर्य के उपाय का अलग–अलग अध्याय में विवेचन किया गया है। प्रथमतः उपायों के अनुशीलन के पश्चात् अब साधन का विवेचन काम्य है।

### 2.0. ब्रह्मचर्य : विकास के साधन

जीवन में प्रत्येक दृष्टिकोण से ब्रह्मचर्य का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। अतः यह जानना आवश्यक है कि वे कौन से साधन हैं जिनके माध्यम से ब्रह्मचर्य का विकास होता है। भारतीय शास्त्रों में ब्रह्मचर्य को मात्र एक आदर्श के रूप में ही निरूपित नहीं किया गया है बल्कि इसकी साधना उत्तरोत्तर विकसित होती रहे, इसका विस्तृत मार्गदर्शन भी किया गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र में मोक्ष मार्ग के चार भेद बताएँ गए हैं – ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप।[1] ब्रह्मचर्य मोक्ष का ही एक साधन है। कारण–कार्य संबंध होने से इसकी साधना के आयाम भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के अन्तर्गत समाहित किए जा सकते हैं। इसलिए ब्रह्मचर्य के

विकास के लिए यत्र–तत्र आगमों में प्रस्तुत सामग्री को इन्हीं चार आयामों के अन्तर्गत क्रमबद्ध प्रस्तुत किया जा रहा है।

## 2.1. ज्ञान

जीवन में ज्ञान का बहुत बड़ा महत्त्व है। कहा भी गया है – '**अज्ञानं खलु कष्टं'।** इसलिए साधना के मार्ग में ज्ञान प्रथम अपेक्षा है। चूंकि ब्रह्मचर्य एक दुस्तर साधना है इसलिए जैन आगमों में इस संबंध में ज्ञान का महत्त्व अनेक स्थानों पर प्रतिपादित किया गया है।

आचारांग सूत्र में मानसिक संताप और दरिद्रता का कारण काम विकार को माना है तथा इस कष्ट से मुक्ति का उपाय विद्या अर्थात् ज्ञान को बताया गया है।[2]

सूत्रकृतांग सूत्र में भगवान ऋषभ अपने पुत्र को संबोधि को प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं। संबोधि (ज्ञान) साधना का प्रथम आयाम है। इससे ही साधना का पथ प्रशस्त होता है।[3] विरति व अविरति के भेद को जाने बिना कामभोग के प्रति आसक्ति को छोड़ा नहीं जा सकता।[4] इसलिए ब्रह्मचर्य की दृढ़ता के लिए अब्रह्मचर्यवास के कारण होने वाले विभिन्न दुःख को जानने की बात कही गई है।[5]

स्थानांग सूत्र में भी सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास का माध्यम आरंभ और परिग्रह को जानना और छोड़ना माना है। इसके बिना ब्रह्मचर्य का विकास असम्भव कहा गया है।[6]

दसवैकालिक सूत्र में आचार से पहले ज्ञान की अनिवार्यता को बहुत स्पष्ट रूप से कहा गया है। सूत्रकार कहते हैं –[7]

**पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठई सव्व संजए।**
**अन्नाणी किं काही, किं वा नाहिइ छेय-पावगं।।**

अर्थात् पहले ज्ञान फिर दया (आचार)। इस प्रकार सब मुनि स्थित होते हैं। अज्ञानी क्या करेगा? वह क्या जानेगा क्या श्रेय है और क्या पाप?

इस सूत्र में केवल शास्त्रीय ज्ञान ही नहीं, बल्कि इन्द्रियों के वशीभूत पुद्गलों के परिणमन का यथार्थ ज्ञान करने का भी निर्देश है।[8]

उत्तराध्ययन सूत्र में भी ब्रह्मचर्य विकास के लिए उन तत्त्व को जानना आवश्यक बताया गया है जो ब्रह्मचर्य के लिए घातक होते हैं।[9]

आवश्यक सूत्र में भी ब्रह्मचर्य के स्वीकरण एवं अब्रह्मचर्य के प्रत्याख्यान से पूर्व अब्रह्मचर्य को ज्ञपरिज्ञा से जानने का संकल्प कराया गया है।[10]

ज्ञानार्णव में काममार्ग के विषय में स्पष्टतया विरक्ति का साधन आगम ज्ञान को माना है।[11] सूत्रकार के अनुसार जिस काम देव को ज्ञानियों की संगति, तप और ध्यान से भी नहीं जीता जाता वह केवल शरीर (पर) और आत्मा (स्व) के भेद ज्ञान से उत्पन्न हुए वैराग्य के प्रभाव

से जीता जाता है।[12]

**2.1.1. ज्ञान के आयाम** : जैन साहित्य में ज्ञान के अनेक आयामों की चर्चा की गई है–

**(1) लोक का ज्ञान** – आचारांग सूत्र के भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार ब्रह्मचर्य की दिशा में पराक्रम के लिए विषय–लोक का ज्ञान तथा लोक संज्ञा का परित्याग अपेक्षित है। लोक संज्ञा का अर्थ है– लोक प्रवाह सम्मत विषयों की ओर दौड़ने की मनोवृत्ति।[13]

**(2) क्षेत्र का ज्ञान** – आचारांग सूत्र में साधना के विकास की अर्हता के रूप में क्षेत्रज्ञता को माना गया है। सूत्रकार कहते हैं 'जो क्षेत्रज्ञ होता है वह कामनाओं के प्रति अप्रमत्त, असंयत प्रवृत्तियों से उपरत, वीर और आत्मगुप्त यानि अपने आप में सुरक्षित होता है।' भाष्यकार ने क्षेत्र शब्द के पांच अर्थ किए हैं – शरीर, काम, इन्द्रिय विषय, हिंसा और मन–वचन काया की प्रवृत्ति। जो पुरुष इन सबको जानता है वह क्षेत्रज्ञ होता है।[14]

**(3) परिणामों का ज्ञान** – आचारांग सूत्र में काम के विपाक–फल के ज्ञान को काम–विजय की साधना का आवश्यक अंग बताया गया है। काम का सेवन क्षण भर के लिए थोड़ा सा सुख देता है पर उसका विपाक लम्बे समय तक अति दुःखदायी होता है। काम के परिणाम के ज्ञान से काम के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है।[15]

दसवैकालिक सूत्र में काम–भोगों को किंपाक फल से उपमित करते हुए इनके परिणामों को जानना आवश्यक बताया गया हैं।[16]

**2.1.2. ज्ञान के साधन** – ब्रह्मचर्य साधना कठिन एवं दुसाध्य है तथा इस विषय में सही मार्ग दर्शन भी मिलना कठिन होता है। जैन आगमों में ब्रह्मचर्य विषयक ज्ञान के विविध साधनों की चर्चा भी की गई है –

**(1) गुरुकुलवास –** आचारांग सूत्र के अनुसार ब्रह्मचर्य विषयक ज्ञान एवं आचार दोनों ही के लिए गुरुकुलवास आवश्यक है। नए साधकों को अनुभवात्मक ज्ञान अल्प होता है। साधना मार्ग में आने वाले रति–अरति आदि विघ्न का सामना करने में वे असक्षम होते हैं। गुरु के मार्ग दर्शन, प्रेरणा और प्रोत्साहन से साधना विकसित होती रहती है। गुरुकुलवास के लिए गुरु–आज्ञा का पालन आवश्यक होता है।[17]

सूत्रकृतांग सूत्र में बुद्धों (ज्ञानियों) के सान्निध्य में आचार की शिक्षा प्राप्त करने का निर्देश मिलता है।[18] ज्ञानियों के सान्निध्य से तात्पर्य गुरुकुलवास है।

**(2) सुनना –** आचारांग सूत्र में काम और कलह से मुक्त होने के लिए ज्ञान का साधन तत्त्व सुनना माना गया है।[19] ठाणं सूत्र में सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास के दो हेतु माने गए हैं – सुनना और जानना।[20] प्राचीन समय में पुस्तकों के आविष्कार से पूर्व ज्ञानार्जन का माध्यम सुनना ही था।

दसवैकालिक सूत्र में सुनने को ज्ञान का माध्यम मानते हुए स्पष्ट किया है–

**सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।**
**उभयंपि जाणइ सोच्चा, जं छेयं तं समायरे।।**

जीव सुनकर कल्याण को जानता है और सुनकर ही पाप को जानता है। कल्याण और पाप सुनकर ही जाने जाते हैं। वह उनमें जो श्रेय है, उसी का आचरण करे।[21]

उत्तराध्ययन सूत्र में भी ज्ञान का माध्यम तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट मार्ग को सुनना माना गया है।[22]

**(3) जाति स्मृति** – काम भोगों की विरति में जाति–स्मृति ज्ञान अर्थात् पूर्व–जन्म की स्मृति बहुत सहायक सिद्ध होती है। इससे व्यक्ति को पूर्व जन्म में आचरित संयम और उसके फल का ज्ञान हो जाता है। वह पुनः ब्रह्मचर्य के लिए तत्पर हो जाता है। उत्तराध्ययन सूत्र में भृगु पुरोहित के पुत्र द्वय को मुनियों को देखने से जाति स्मृति ज्ञान हो गया। इससे पूर्व जन्म में आचरित तप व संयम की स्मृति जाग गई। [23]

## 2.2. दर्शन

यहां दर्शन का अर्थ है – श्रद्धा, विश्वास, रुचि, यथार्थ दृष्टिकोण, सम्यक् चिंतन। किसी तत्त्व का ज्ञान होने पर भी जब तक उसमें विश्वास और रुचि पैदा नहीं होती उसका आचरण विकसित नहीं होता है।

ब्रह्मचर्य स्वीकार करने के बाद भी ब्रह्मचारी के सामने ऐसे प्रलोभन आ सकते हैं जिससे उसके मन में ब्रह्मचर्य के प्रति शंका उत्पन्न हो जाए। ब्रह्मचर्य के प्रति श्रद्धा के खण्डित होने पर ब्रह्मचर्य को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इसलिए अनुकूल या प्रतिकूल हर परिस्थिति में धैर्य के साथ श्रद्धा अर्थात् दर्शन को अड़िग रखना अपेक्षित होता है।

साधना के प्रलम्ब काल में विभिन्न निमित्तों के कारण दर्शन में आरोह–अवरोह की स्थिति आ सकती है। यह श्रद्धा की हानि का प्रसंग है। आचारांग सूत्र में इस संदर्भ में कहा गया है–

**जाए सद्धाए णिक्खंतो, तमेव अणुपालिया। विजहितु विसोत्तियं।**

अर्थात् जिस श्रद्धा से अभिनिष्क्रमण करें उसी श्रद्धा को बनाए रखें। चित्त की चंचलता के स्रोत में न बहें।[24] काम–भोगों के लिए यथार्थ दृष्टिकोण के निर्माण के लिए सूत्रकार कहते हैं कि विचलित करने वाले निमित्त उपस्थित होने पर साधक चिंतन करें –

**किमेस जणो करिस्सति**? अर्थात् यह जन मेरा क्या करेगा? [25]

दसवैकालिक सूत्र में भी ब्रह्मचर्य विकास के लिए अटूट श्रद्धा का समर्थन किया गया है। सूत्रकार कहते हैं जिस श्रद्धा से संकल्प को स्वीकार किया जाता है, उस श्रद्धा को पूर्ववत्

बनाए रखना चाहिए। [26] जो व्यक्ति इतना दृढ संकल्पी होता है कि देह त्याग स्वीकार्य है पर स्वीकृत धर्म को छोड़ना नहीं, उस व्यक्ति को इन्द्रियां उसी प्रकार विचलित नहीं कर सकती जिस प्रकार वेगपूर्ण गति से आता हुआ महावायु सुदर्शन पर्वत को। [27]

आचार्य तुलसी के अनुसार ब्रह्मचर्य की साधना के पहले साधक को अपने विचार दृढ़ करने चाहिए। फिर उसमें एक निष्ठा होनी चाहिए। ध्यान रहे कि कहीं बाहरी चकाचौंध में मन फिसल न जाए।[28]

आचार्य महाप्रज्ञ इस संदर्भ में कहते हैं दर्शन का एक आचार है – निशंक होना। सफलता उसे ही वरण करती है जो आस्थावान व संदेह से रहित हो। संशयशील व्यक्ति कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो, वह लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है।[29]

### 2.3. चारित्र (त्याग)

ज्ञान और श्रद्धा (दर्शन) के बाद अगला चरण है– चारित्र। चारित्र का अर्थ है– अकरण का संकल्प, त्याग, विरति। अर्थात् इन्द्रिय विषयों एवम् तद्जन्य कषाय का त्याग करना। आचारांग सूत्र के अनुसार जो व्यक्ति आश्रवों से विरत नहीं होते वे संसार के भंवर–जाल में चक्कर लगाते रहते हैं। [30] सूत्रकृतांग में काश्यप (ऋषभ या महावीर) के द्वारा आचरित धर्म का अनुकरण करने वालों के लिए मैथुन से विरत होने की बात कही गई है।[31] भगवती सूत्र में सांसारिक भोग के त्याग को महत्त्व दिया गया है। शारीरिक दुर्बलता के कारण कोई व्यक्ति भोग को भोगने में समर्थ नहीं है फिर भी वह भोगों का परित्याग नहीं करता तब तक भोगी ही है, त्यागी नहीं। भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ ने इसे मात्रा–भेद एवं अध्ययवसाय–भेद से और भी स्पष्ट किया है। दुर्बल शरीर वाला व्यक्ति अधिक नहीं तो अल्प मात्रा में तो भोग भोगने में समर्थ होता ही है तथा अध्ययवसाय के स्तर पर भी भोग भोग सकता है। इसलिए वह भोगी है त्यागी नहीं। भोगों के परित्याग से महानिर्जरा व महापर्यवसान की प्राप्ति होती है। [32]

दसवैकालिक सूत्र में अन्य महाव्रतों की तरह ब्रह्मचर्य महाव्रत का भी विस्तृत वर्णन के साथ प्रत्याख्यान (त्याग) का निरूपण है।[33] इस सूत्र में विषय भोग का त्याग सापेक्ष दृष्टि से किया गया है। यहाँ मात्र 'अकरण' को त्याग नहीं माना है। त्याग की कुछ कसौटियां दी गई है, उन पर खरा उतरने पर ही 'अकरण'को त्याग माना गया है। वे कसौटियां इस प्रकार हैं –

(i) काम भोग कान्त हो अर्थात् रमणीय, अनुकूल हो।

(ii) प्रिय इष्ट हो।

(iii) भोग के लिए पदार्थ उपलब्ध हो।

(iv) परवशता न हो। [34]

इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र में भी अनेक स्थलों पर काम–भोग के दुष्परिणाम जानकर स्त्री आदि का त्याग करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।[35] इस सूत्र में भगवान महावीर से पूछा गया – भगवन्! प्रत्याख्यान से आत्मा को क्या प्राप्त होता है ? भगवान ने कहा – प्रत्याख्यान (त्याग) से व्यक्ति वितृष्ण हो जाता है। मन को भाने वाले और न भाने वाले पदार्थों में उसका राग–द्वेष नहीं रहता।[36] आवश्यक सूत्र में भी त्याग की बात कही गई है– 'अबंभं परियाणामि, बंभं उवसम्पज्जामि।[37]

योगशास्त्र में चारित्र का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है –

**सर्वसावद्ययोगानां, त्यागश्चारित्रमिष्यते।**
**कीर्तितं तदहिंसादि - व्रतभेदेन पञ्चधा।।**

सर्व प्रकार के सावद्य (पापमय) योगों का त्याग करना सम्यक् चारित्र कहलाता है। अहिंसा आदि व्रतों के भेद से वह पांच प्रकार का हैं।[38]

त्याग की कसौटियों को विस्तार देते हुए व्यवहार भाष्य में कहा गया है –

**अविहिंस बंभचारी, पोसाहिय अमज्जमंसियाऽचोरा।**
**सति लंभ परिच्चाई, होंति दतक्खा न सेसा।।**

कोई कहता है – मैं अहिंसक वृत्ति का हूँ, जब तक मैं मृग आदि को नहीं देख लेता। कोई कहे – मैं ब्रह्मचारी हूँ, जब तक मुझे स्त्री मिल नहीं जाती। कोई कहे – मैं आहार पौषधी हूँ, जब तक मुझे आहार प्राप्त न हो। कोई कहे – मैं अमद्यमांसाशी हूँ, जब तक मुझे मद्य और मांस प्राप्त न हो जाए। मैं अचोर हूँ, जब तक मुझे चोरी का अवसर नहीं मिलता। जो वस्तु की प्राप्ति होने पर भी उसका परित्याग करते हैं, वे ही वास्तव में तदाख्या–अहिंसक, ब्रह्मचारी आदि कहलाने के योग्य होते हैं, शेष नहीं।[39]

मुनि सुमेरमलजी 'लाडनूं' ने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है कि नारक, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, अमनस्क मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय को मैथुन सेवन का पाप तो नहीं लगता क्योंकि इनमें नपुंसक वेद होता है। फिर भी इन्हें ब्रह्मचर्य के पालन का लाभ नहीं मिलता क्योंकि मैथुन सेवन के अनुकूल स्थिति होने के बावजूद जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे ही ब्रह्मचर्य का लाभ मिलता है।[40]

### 3.0. तप

ब्रह्मचर्य विकास के लिए इसे अच्छी तरह जानने, इसमें विश्वास व रुचि रखने एवं अब्रह्मचर्य सेवन को त्यागने के पश्चात् आन्तरिक परिष्कार हेतु निरन्तर पुरुषार्थ आवश्यक है। जैन आगमों में आन्तरिक परिष्कार के लिए तप का विधान है। मनुष्य की चेतना में अब्रह्मचर्य के संस्कार अनेक जन्मों से होते हैं। तप के द्वारा जैसे–जैसे आत्म–निर्मलता बढती है, ब्रह्मचर्य का

सहज विकास होता रहता है।

तप को परिभाषित करते हुए दसवैकालिक की चूर्णि में जिनदास गणि ने कहा है– '**तवोणाम तावयति अट्ठविहं कम्मगंठि नासेतित्ति वुंत्तं भवई**' अर्थात् जो आठ प्रकार की कर्म ग्रंथियों को तपाता है, उनका नाश करता है वह तप है।[41] तप के मुख्यतः दो भेद बताए गए हैं – (1) बाह्य तप और (2) आभ्यन्तर तप।

**बाह्य तप** – उत्तराध्ययन सूत्र की शान्त्याचार्य वृहद् वृत्ति के अनुसार इसमें बाहरी द्रव्य – अशन, पान आदि का त्याग होता है तथा यह मुक्ति का बाह्य साधन है इसलिए इसे बाह्य तप कहा गया है। [42] उत्तराध्ययन सूत्र में बाह्य तप के छह प्रकार बताए हैं – (1) अनशन (2) ऊनोदरी (3) भिक्षाचर्या (4) रसपरित्याग (5) कायक्लेश (6) प्रतिसंलीनता। [43]

**आभ्यन्तर तप** – जो तप अन्तः शरीर यानी सूक्ष्म शरीर को अधिक तपाता है, जिससे कर्म शरीर क्षीण होता है, वह आभ्यन्तर तप कहलाता है। इस तप का स्थूल शरीर पर विशेष प्रभाव दिखाई नहीं देता। अन्दर ही अन्दर कर्म–शरीर (संस्कार शरीर) के क्षय की प्रक्रिया चलती रहती है। मोक्ष साधना का अन्तरंग कारण होने से इस तप को आभ्यन्तर तप कहा जाता है। इसके भी छह प्रकार हैं – (i) प्रायश्चित्त (ii) विनय (iii) वैयावृत्य (iv) स्वाध्याय (v) ध्यान (vi) कायोत्सर्ग।

### 3.1. अनशन

दसवैकालिक सूत्र की अगस्त्यसिंह चूर्णि में अनशन की परिभाषा इस प्रकार है– '**असणं-भोयणं। तस्स परिच्चातो अणसणं।**' अर्थात् अशन का अर्थ है – भोजन। उसका परित्याग करना अनशन है। यहाँ अनशन के दो प्रकार बताए हैं (1) इत्वरिक और (2) यावत्कथिक।

**इत्वरिक** – सीमित अवधि तक किया जाने वाला अल्पकालिक अनशन इत्वरिक कहलाता है। इसकी अवधि उपवास से छह मास तक होती है।

**यावत्कथिक** – जीवन भर के लिए भोजन का परित्याग करना। [44]

ब्रह्मचर्य विकास के लिए शरीर का अनुकूल होना आवश्यक है। मांस, रक्त आदि धातुओं की अतिरिक्त मात्रा विकारों को उत्तेजित करने वाली होती है। अनशन से धातुओं की अतिरिक्त मात्रा नियंत्रित हो जाती है। जिससे शरीर में हल्कापन रहता है। फलतः ब्रह्मचर्य का विकास सरलता से होता है। आचारांग, [45] ठाणं, [46] व्यवहार सूत्र [47] आदि ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य विकास के लिए अनशन का निदर्शन मिलता है।

### 3.2 ऊनोदरी

ब्रह्मचर्य का संबंध जितना मन से है, उतना ही शरीर से है। शरीर जितना हल्का होगा

ब्रह्मचर्य उतना ही सुकर होगा। शरीर का हल्कापन उदर अर्थात् आमाशय, पक्वाशय और मलाशय के हल्केपन पर निर्भर करता है। उदर के हल्केपन के लिए ऊनोदरी अर्थात् परिमित भोजन आवश्यक है।

अतिमात्रा में भोजन आदि का निषेध 'ब्रह्मचर्य समाधि स्थान' में विस्तृत रूप से मिलता है जिनका वर्णन 'ब्रह्मचर्य–सुरक्षा के उपाय' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

आचार्य तुलसी ने मनोनुशासनम् में ऊनोदरी को इस प्रकार परिभाषित किया है– अल्पाहार ऊनोदरिका[48] अर्थात् कम खाना, परिमित खाना, आंतों पर किंचित भी भार न डालना।

प्रत्येक व्यक्ति की भोजन की आवश्यकता भिन्न–भिन्न हो सकती है। ऐसी स्थिति में आहार की निश्चित मात्रा क्या हो? इसका समाधान मनोनुशासनम् के व्याख्याकार आचार्य महाप्रज्ञ ने इस प्रकार दिया है– भोजन के एक घण्टा बाद पानी पीने और वायु बनने पर पेट हल्का रहे, कोई भार प्रतीत न हो तो समझा जा सकता है कि भोजन परिमित हुआ है। [49]

### 3.3. रस परित्याग

दूध, दही, घृत आदि तथा प्रणीत पान–भोजन और रसों के वर्जन को रस परित्याग तप कहा जाता है। [50]

आवश्यक चूर्णि में रस (विकृति) के नौ प्रकार इस प्रकार बताए हैं – क्षीर (दूध), दही, नवनीत, घृत, तेल, गुड़, मधु, मद्य और मांस। वहाँ अवगाहिम – घी या तेल में तले हुए पदार्थ को दसवीं विकृति के रूप में माना गया है। [51]

दूध, घी आदि रसों के अतिमात्रा में सेवन से वीर्य का अति निर्माण होता है। इससे कामोत्तेजना अधिक बढती है। इसलिए ब्रह्मचर्य के विकास के लिए रस–परित्याग तप बहुत जरूरी है। ऊनोदरी की तरह रस परित्याग का भी ब्रह्मचर्य समाधि स्थान में वर्णन किया गया है।

### 3.4. भिक्षाचरी

ब्रह्मचर्य विकास में भिक्षाचरी का महत्त्व और शोध का विषय है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य को दृढ़ करने के लिए नियम–द्रव्यादि संबंधी अभिग्रह करना भी एक उपाय बताया गया है।[52]

### 3.5. कायक्लेश

ठाणं सूत्र के टिप्पण में आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं – ''कायक्लेश बाह्य तप का पांचवां प्रकार है। इसका अर्थ जिस किसी प्रकार से शरीर को कष्ट देना नहीं है, किन्तु आसन एवं देह–मूर्च्छा विसर्जन की कुछ प्रक्रियाओं से शरीर को जो कष्ट होता है, उसका नाम कायक्लेश है।'' [53]

प्रश्नव्याकरण सूत्र में कायक्लेश का नाम लिए बिना स्वेद (पसीना) धारण करना, जमे हुए या इससे भिन्न मैल को धारण करना, मौन व्रत धारण करना, केशों का लुंचन करना, सर्दी गर्मी सहना, काष्ठ की शय्या, भूमि निषद्या – जमीन पर बैठना, दंशमशक का क्लेश सहना आदि कायक्लेश के अंगों को ब्रह्मचर्य के विकास के साधन के रूप में निरूपित किया गया है। [54]

दसवैकालिक की चूर्णियों में वीरासन आदि आसनों का अभ्यास, आतापना, केशलोच आदि निरवद्य प्रवृत्तियों को कायक्लेश कहा गया है। [55] उत्तराध्ययन सूत्र में कायक्लेश की परिभाषा आसन के संदर्भ में की गई है। [56] औपपातिक सूत्र में आसनों के अतिरिक्त सूर्य की आतापना, सर्दी में वस्त्र विहीन रहना, शरीर को न खुजलाना, न थूकना तथा शरीर का परिकर्म और विभूषा न करना – ये भी कायक्लेश के प्रकार बतलाए गए हैं।[57] ये सभी संसाधन ब्रह्मचर्य विकास में सहायक एवं प्रकृष्टोपकारक माने जाते हैं। इनके आचरण से ब्रह्मचर्य की सिद्धि होती है, ऐसा शास्त्रसम्मत एवं व्यवहार फलित है। उत्तराध्ययन सूत्र की शान्त्याचार्य वृत्ति में कायक्लेश को संसार विरक्ति का हेतु माना गया है। [58] ब्रह्मचर्य विकास के लिए आसन, प्राणायाम एवं मुद्रा आदि का प्रयोग बहुत उपयोगी होता है।

**3.5.1 आसन** – आस उपवेशने धातु से ल्युट प्रत्यय करने पर आसन शब्द निष्पन्न होता है। जिस पर तपश्चर्या एवं उन्नत कार्य के लिए बैठा जाए वह आसन है। स्थिरसुखमासनम् – अर्थात् जिस पर स्थिरता पूर्वक सुख से बैठा जा सके वह आसन है। जैन परम्परा में आसन के लिए 'स्थान' शब्द का प्रयोग मिलता है। मनोनुशासनम् में आचार्य तुलसी ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है **'शरीरस्य स्थिरत्वापादनं स्थानम्'** अर्थात् विधिवत् शरीर को स्थिर बनाकर बैठना स्थान–आसन कहलाता है। यह कायगुप्ति है।[59] कुछ आसनों से काम केन्द्रों पर दबाव पड़ता है जिससे वासनाओं को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

जैन आगमों में ब्रह्मचर्य विकास के लिए अनेक आसनों का प्रयोग मिलता है। आचारांग सूत्र में ऊर्ध्वस्थान (घुटनों को ऊंचा और सिर को नीचा) आसन में कायोत्सर्ग करने का निदर्शन मिलता है।[60] भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ इसकी व्याख्या में कहते हैं कि यह आसन मुख्यतः सर्वांगासन और गौण रूप से शीर्षासन, वृक्षासन आदि का सूचक है। इन आसनों से वासना केन्द्र शान्त होते हैं। उनके शान्त होने से वासनाएं भी शांत हो जाती हैं। [61]

स्थानांग सूत्र में सात प्रकार के आसनों का उल्लेख हैं। व्याख्याकार आचार्य महाप्रज्ञ 'उत्कुटुकासन' (उकडू) को ब्रह्मचर्य विकास के लिए बड़ा उपयोगी मानते हैं। दोनों पैर को भूमि पर टिकाकर दोनों पुतों को भूमि से न छुआते हुए जमीन पर बैठने से यह आसन बनता है। इसका प्रभाव वीर्य ग्रंन्थियों पर पड़ता है और यह ब्रह्मचर्य की साधना में बहुत फलदायी है। [62] भगवती सूत्र में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है। [63]

व्यवहार भाष्य में वेदोदीर्ण शिष्य की काम चिकित्सा के क्रम में 'ऊर्ध्वस्थान' आदि आसनों का उल्लेख है। [64]

मनोनुशासनम् की व्याख्या में आचार्य महाप्रज्ञ ने ब्रह्मचर्य विकास के लिए निम्न आसनों का उल्लेख किया है– गोदोहिकासन, उत्कटुकासन, समपादपुता, गोनिषधिका, हस्ति–शुण्डिका, पद्मासन, बद्ध पद्मासन, योगमुद्रा, अर्धपद्मासन, ऊर्ध्वपद्मासन, सुखासन, कुक्कुटासन, सिद्धासन, वज्रासन, महामुद्रा, कन्दपीडनासन, एकपार्श्वशयन, ऊर्ध्वशयन, भुजंगासन, सर्वांगासन और शीर्षासन। [65]

संबोधि में सिद्धासन, पद्मासन, पादांगुष्ठासन आदि आसनों को ब्रह्मचर्य विकास में उपयोगी माना गया है। [66]

**3.5.2. प्राणायाम** – जैन आगमों में 'प्राणायाम' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है किन्तु व्याख्या ग्रन्थों में प्राणायाम के प्रयोग मिलते हैं। आचारांग के भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ ब्रह्मचर्य विकास में प्राणायाम को बहुत प्रभावी मानते हैं। आचारांग भाष्य में उन्होंने एक प्रयोग इस प्रकार दिया है– अपने इष्ट मंत्र के साथ समवृत्ति श्वास प्रेक्षा की पच्चीस आवृत्तियां करने से काम–वासना उपशान्त होती है। [67]

प्राणायाम का महत्त्व बताते हुए ज्ञानार्णव में कहा गया है कि जो योगी एक–एक महीने में कुश के अग्रभाग से केवल जल की एक बूंद को सौ वर्ष से भी अधिक काल तक पीता है, प्राणायाम उसके समान है। [68] यहां कामवासना पर विजय के लिए प्राणायाम को एक अच्छा साधन माना गया है। [69]

मनोनुशासनम् की व्याख्या में आचार्य महाप्रज्ञ ने वीर्यस्तम्भ प्राणायाम (ऊर्ध्वाकर्षण प्राणायाम) तथा अल्पकालीन कुम्भक प्राणायाम को ब्रह्मचर्य के विकास में सहयोगी माना है। [70] संबोधि में आप कहते हैं कि वीर्य न ऊपर खींचा जा सकता है और न परिवर्तित होता है, किन्तु उसकी प्राण शक्ति ही खींची जा सकती है। संबोधि में एक 'तालयुक्त श्वास' नामक प्राणायाम का अभ्यास दिया गया है जिसमें काम शक्ति का प्रयोग विध्वंस से हटा कर सृजन में किया जा सकता है। [71]

योग गुरु स्वामी रामदेव भी कामुकता आदि मनोविकारों का समाधान प्राणायाम को मानते हैं। [72] उन्होंने वीर्य की ऊर्ध्वगति करके स्वप्नदोष आदि धातु विकारों की निवृत्ति के लिए बाह्य प्राणायाम (त्रिबन्ध के साथ) तथा ऊर्ध्वरेतस् अर्थात् कुंडलिनी जागरण के लिए अनुलोम–विलोम प्राणायाम की सलाह दी है। [73]

**3.5.3. मुद्रा** – काम वासना का एक प्रमुख कारण कामांगों का सक्रिय होना तथा प्राण वायु का निर्बल होना है। आचारांग के भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ ने एक मुद्रा विशेष का उल्लेख किया है–

ऊर्ध्वस्थान अवस्था में दोनों नेत्र को नासाग्र या भृकुटी पर स्थिर करना अथवा बार–बार स्थिर करना। भाष्यकार कहते हैं कि इस क्रिया से अपान वायु दुर्बल होती है और प्राणवायु प्रबल। अपानवायु के दुर्बल एवं प्राणवायु के प्रबल होने से कामांग निष्क्रिय हो जाते हैं।[74]

**3.5.4. बंध** – योग ग्रन्थों में बंध का प्रयोग साधना का प्रमुख अंग है। मूलबंध, उड्डियानबंध, जालंधरबंध और त्रिबंध आदि बंध के प्रमुख प्रकार हैं।

**मूलबंध** – श्वास का रेचन कर नाभि को भीतर सिकोड़ कर गुदा द्वार को ऊपर खींचने से मूलबंध होता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने संबोधि में मूलबंध को काम विजय का प्रमुख साधन माना है।[75]

**जालंधरबंध** – ठुड्डी को कंठ कूप में लगाने पर जालंधरबंध होता है। इससे विशुद्धि केन्द्र प्रभावित होता है। चित्त शान्त होता है।[76]

**महाबंध** – मूलबंध, उड्डीयानबंध और जालंधरबंध – ये तीनों बंध एक साथ करने से महाबंध बनता है। इसे त्रिबंध भी कहते हैं। बाबा रामदेव वीर्य के ऊर्ध्वारोहण तथा वीर्य शुद्धि के लिए महाबंध का प्रयोग बताते हैं।[77]

## 3.6. प्रतिसंलीनता

ब्रह्मचर्य विकास के लिए मानसिक चंचलता बहुत बड़ी बाधा है। मानसिक चंचलता का बहुत बड़ा निमित्त है– बाह्य जगत के साथ सम्पर्क। जैन आगमों में इसका समाधान है– प्रतिसंलीनता। प्रतिसंलीनता का अर्थ है– इंद्रिय आदि का बाह्य विषयों से प्रतिसंहरण करना अर्थात् उनकी बहिर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना।

दसवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्णि एवं उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य वृत्ति में प्रतिसंलीनता के चार प्रकार बताए गए हैं।[78]

**3.6.1 इन्द्रिय प्रतिसंलीनता** – इन्द्रिय प्रतिसंलीनता की प्रक्रिया के दो चरण हैं – प्रथम इन्द्रिय विषय से असम्पर्क एवं द्वितीय अनिवार्य रूपेण सम्पर्क प्राप्त विषय के प्रति अनासक्ति अर्थात् राग–द्वेष का अभाव।

साधना काल के प्रारम्भिक स्तर पर जब साधक अपरिपक्व अवस्था में रहता है, विषय से बचाव अत्यावश्यक होता है। विषय के प्रति आन्तरिक अनासक्ति के बिना मात्र बाहरी बचाव ब्रह्मचर्य के लिए सार्थक नहीं होता। इसलिए मनोज्ञ अमनोज्ञ इन्द्रिय विषयों के प्रति आसक्ति (राग–द्वेष) को क्रमिक रूप से कम करना भी आवश्यक है।

**3.6.2 कषाय प्रतिसंलीनता** – आसक्ति का कारण होता है कषाय – क्रोध, मान, माया और लोभ। आसक्ति पर विजय पाने के लिए कषाय पर विजय पाना आवश्यक होता है। इसका साधन है– कषाय प्रतिसंलीनता। कषाय प्रतिसंलीनता का अर्थ है उदय में आने वाले कषायों का

निरोध तथा उदय प्राप्त कषाय को विफल करना।

**3.6.3 योग प्रतिसंलीनता** – योग अर्थात् मन–वचन–काय की प्रवृत्ति। अकुशल मन–वचन काया का निरोध एवं कुशल योगों में प्रवृत्ति योग प्रतिसंलीनता है।

**3.6.4 विविक्तशयनासन** – उत्तराध्ययन सूत्र में एकान्त, अनापात और स्त्री–पशु आदि से रहित शयन और आसन का सेवन करने को विविक्तशयनासन कहा गया है।[79]

आन्तरिक अनुभूति एवं गहराई में जाने के लिए एकान्त वास बहुत मूल्यवान होता है। इसमें बाह्य संसार से चित्त को हटाकर अन्तर्मुखी बनने का सुन्दर अवसर मिल जाता है। ब्रह्मचर्य के विकास के लिए यह एक सक्षम माध्यम है।

## 3.7. प्रायश्चित्त

साधना काल में परिस्थिति जन्य अनेक उतार–चढ़ाव आते हैं। कर्मोदय वश मैथुन सेवन आदि कोई स्खलना हो सकती है। जैन आगमों में इन स्खलनाओं के परिष्कार का मार्ग प्रायश्चित्त बताया गया है। आचारांग सूत्र में इस प्रकार की भूल को ऋजुतापूर्वक स्वीकार करने का निर्देश है। उसे अस्वीकार करने से या छिपाने से दोष का परिमार्जन नहीं हो पाता और काम सेवन के संस्कार अन्दर ही अन्दर प्रगाढ़ होते चले जाते हैं। यहाँ दोष को छुपाने की प्रवृत्ति को अज्ञानी पुरुष की दोहरी मूर्खता बताई गई है। [80]

सूत्रकृतांग सूत्र में इसका उल्लेख बड़े मनोवैज्ञानिक तरीके से किया गया है। अब्रह्मचर्य सेवन करके भी जो प्रायश्चित्त नहीं करता बल्कि मान–सम्मान की कामना से पाप का अवर्णवाद भी करने लगता है, सूत्रकार इसे दोगुना पाप मानते हुए कहते हैं कि वह भले ही कितनी ही चतुराई करे ज्ञानी व्यक्ति से छुपा नहीं सकता। [81]

प्रायश्चित्त का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए सूत्रकृतांग सूत्र के चूर्णिकार कहते हैं कि स्खलना भले ही छोटी सी हो, उसका प्रायश्चित अविलम्ब कर लेना चाहिए। दृष्टांत देते हुए वे कहते हैं – एक व्यक्ति सफेद कपड़े पहने हुए था। उस पर कुछ कीचड़ लग गया। व्यक्ति ने सोचा इस छोटे से धब्बे से क्या अन्तर आएगा। उसने उसकी उपेक्षा कर दी। उसे उसी समय धो कर साफ नहीं किया। फिर कभी उसी वस्त्र पर स्याही, श्लेष्म, चिकनाई आदि लगती गई। उसने उसकी भी उपेक्षा कर दी। धीरे–धीरे वस्त्र अत्यन्त मलिन हो गया। [82]

इस प्रकार जो साधक चरित्र पटल पर लगने वाले छोटे से धब्बे की भी उपेक्षा नहीं करता, प्रायश्चित्त कर लेता है उसका ब्रह्मचर्य निर्मल, सुदृढ़ एवं स्थिर रहता है।

दसवैकालिक सूत्र में जान या अनजान में कोई अधर्म कार्य हो जाने पर अपनी आत्मा को उससे तुरन्त हटा लेने की बात कही गई है। [83] इसी ग्रंथ में उदाहरण देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जहां कहीं भी मन, वचन और काया को दुष्प्रवृत्त होता देखें तो तुरन्त सम्भल जाना

चाहिए, जैसे जातिमान घोड़ा लगाम को खींचते ही सम्भल जाता है। [84]

उत्तराध्ययन सूत्र में राजीमती व रथनेमि के प्रसंग में भी यही कहा गया है कि प्रमादवश विचलित हो जाने पर भी राजीमती के उपदेश देने पर रथनेमि पुनः सम्भल जाते हैं। [85]

निशीथ, व्यवहार, बृहत्कल्प, दशाश्रुतस्कंध आदि प्रायश्चित्त सूत्र में विभिन्न स्खलनाओं के परिष्कार के लिए विस्तृत विधान बताया गया है।

### 3.8 विनय

जैन परम्परा में विनय का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। इसके महत्त्व को प्रकाशित करते हुए आवश्यक निर्युक्ति में कहा गया है–

**विणओ सासणे मूलं, विणीओ संजओ भवे।**
**विणयाउ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो।।**

अर्थात् विनय शासन का मूल है। विनीत संयत होता है। जो विनय से शून्य है, उसके कहां धर्म और कहां तप? [86]

ब्रह्मचर्य अभ्यास का अंग है इसलिए ब्रह्मचर्य विकास के लिए विनय की साधना का अपना महत्त्व है। शिष्य के विनय से गुरु प्रसन्न होकर, सैद्धान्तिक और प्रायोगिक विपुल ज्ञान प्रदान करते हैं। प्रश्नव्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य की स्थिरता के लिए विनय के द्वारा अन्तःकरण को भावित करना बताया गया है। [87]

विनय का अर्थ – आवश्यक निर्युक्ति एवं उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य वृत्ति के अनुसार जो आठ प्रकार के कर्मों का विनयन–अपनयन करता है, वह विनय है। [88]

विनय के सात प्रकार – दसवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्णि में विनय के सात प्रकारों का निरूपण किया गया हैं – ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, मन विनय, वचन विनय, काय विनय और औपचारिक विनय। [89]

### 3.9. वैयावृत्य

उत्तराध्ययन के वृत्तिकार शान्त्याचार्य ने धर्म साधना में सहयोग करने के लिए संयमी को शुद्ध आहार, औषध आदि लाकर देना तथा उसके अन्य कार्यों में व्यावृत होने को वैयावृत्य कहा है। [90]

जैन परम्परा में वैयावृत्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहा जाता है कि चारित्र और ज्ञान प्रतिपाती हैं – प्रमाद या कर्मोदय के कारण अथवा मृत्यु के पश्चात् चारित्र नष्ट हो जाता है, पढा हुआ, सीखा हुआ ज्ञान परिवर्तना के अभाव में विस्मृत हो जाता है किन्तु वैयावृत्य अप्रतिपाती है – इससे अर्जित शुभ रूप में उदय में आने वाला कर्मफल नष्ट नहीं होता है।

ब्रह्मचर्य के विकास में वैयावृत्य का अपना विशेष स्थान है। निशीथ सूत्र के अनुसार

वैयावृत्य आदि के श्रम में व्यस्त साधक के काम संकल्प उत्पन्न नहीं होते हैं। [91]

व्यवहार भाष्य में काम चिकित्सा की विधि में शिष्य को वैयावृत्य में नियोजित करने का विधान किया गया है। [92] धर्मामृत अनगार में ब्रह्मचर्य व्रत में रुकावट से बचाव के लिए वृद्ध सेवा का मार्ग सुझाया गया है। [93] भगवती आराधना में वृद्ध शब्द का व्यापक अर्थ करते हुए वृद्ध सेवा का उपदेश है। सूत्रकार कहते हैं – 'अवस्था में वृद्ध हो अथवा तरुण हो, जिसके शील–क्षमा, आर्जव आदि गुण बढ़े हुए हैं, वे वृद्ध हैं।' [94] वृद्ध सेवा का महत्त्व बताते हुए सूत्रकार कहते हैं – जैसे कतकफल डालने से गंदला पानी भी निर्मल हो जाता है, वैसे ही वृद्ध पुरुषों की सेवा से कलुषित मोह भी शान्त हो जाता है। [95]

### 3.10 स्वाध्याय

स्वाध्याय का शाब्दिक अर्थ होता है– पढ़ना। किन्तु साधना के क्षेत्र में केवल पढ़ना स्वाध्याय नहीं है वरन् आत्म विकास के विषय में आत्मा को जानना, विचार करना, मनन करना स्वाध्याय है।

आवश्यक चूर्णि के अनुसार सामायिक से द्वादशांग पर्यंत आगमों का परिशीलन करना स्वाध्याय है। [96] उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य वृत्ति में प्रवचन का अर्थ श्रुत किया गया है। वहाँ श्रुत धर्म के आचरण करने को स्वाध्याय माना गया है। [97]

(i) **स्वाध्याय का महत्त्व** – ब्रह्मचर्य साधक के लिए स्वाध्याय एक पुष्टी कारक औषध के समान है। आचारांग में ब्रह्मचारी को सूत्र और अर्थ में लीन रहने का निर्देश है। [98] दसवैकालिक सूत्र में स्वाध्याय का महत्त्व व उद्देश्य इस प्रकार कहा है–

(1) स्वाध्याय से ब्रह्मचर्य साधना के उद्देश्य, उपलब्धियां, साधना के प्रयोग आदि का बोध (श्रुत) प्राप्त होता है।

(2) ब्रह्मचर्य साधना के लिए चित्त की एकाग्रता परम आवश्यक है क्योंकि चंचल चित्त साधना में बाधक होता है। स्वाध्याय से चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है।

(3) साधना की सम्यक् विधि का ज्ञान और उसमें एकाग्रता पा लेने से साधक धर्म (ब्रह्मचर्य) में स्थिर हो जाता है।

(4) स्वयं स्थितात्मा बना हुआ साधक दूसरों को भी साधना मार्ग स्वीकार करने की प्रेरणा देने की अर्हता प्राप्त करता है। [99]

(ii) **स्वाध्याय के प्रकार** – उत्तराध्ययन सूत्र में स्वाध्याय के पांच प्रकार बताए गए हैं। [100] शान्त्याचार्य ने उनकी अर्थ विवेचना इस प्रकार की है –

(1) **वाचना** – अध्यापन करना।

(2) **पृच्छना** – अज्ञात विषय की जानकारी या ज्ञात विषयों की विशेष जानकारी के लिए प्रश्न करना।

(3) **परिवर्तना** – परिचित विषय को स्थिर रखने के लिए उसे बार–बार दोहराना।

(4) **अनुप्रेक्षा** – परिचित और स्थिर विषय पर चिंतन करना, पर्यालोचन करना।

(5) **धर्म कथा** – स्थिरी कृत और पर्यालोचित विषय का उपदेश करना। [101]

ब्रह्मचर्य विकास के लिए अनुप्रेक्षा का अपना विशेष महत्त्व है। कामेच्छा का कारण है मूर्च्छा। चेतना पर छाए हुए मूर्च्छा के आवरण को तोड़ने का सशक्त माध्यम है – अनुप्रेक्षा। अनुप्रेक्षा को भावना के नाम से भी जाना जाता है।

दसवैकालिक सूत्र में स्वाध्याय के लिए आत्म चिन्तन के स्वरूप को मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावशाली प्रश्नावली के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आत्म साधना स्वयं की साक्षी से ही होती है। ऊपर का मार्गदर्शन और अनुशासन आत्मानुशासन होने पर ही सफलीभूत होता है। इसलिए स्वयं के कर्तव्याकर्तव्य का लेखा जोखा स्वयं करना आवश्यक होता है। स्वयं की साधना को जांचने के लिए प्रस्तुत प्रश्नावली के उत्तर सुबह–सायं नियमित रूप से स्वयं ही खोजने से अच्छा खासा आत्म प्रतिलेखन हो जाता है। वह प्रश्नावली इस प्रकार हैं –

1. मैंने क्या किया ?

2. अब मेरे लिए क्या कार्य करना शेष है ?

3. वह कौन सा कार्य है जिसे मैं कर सकता हूं पर प्रमादवश नहीं कर रहा हूं?

4. क्या मेरे प्रमाद को कोई दूसरा देखता है अथवा अपनी भूल को मैं स्वयं देख लेता हूं ?

5. वह कौन सी स्खलना है जिसे मैं नहीं छोड़ रहा हूं ?

इन प्रश्नों के उत्तर के अनुसंधान से साधक स्वयं की स्खलनाओं से परिचित होता है जिससे उसके परिष्कार की प्रक्रिया सरल हो जाती है। [102]

भगवती आराधना के अनुसार – अन्य लोग मेरे संबंध में क्या कहते हैं ? मुझे किस दृष्टि से देखते हैं ? मेरी प्रवृत्ति कैसी है ? ऐसा जो सदा विचार करता है उसका ब्रह्मचर्य व्रत दृढ़ होता है। [103]

आचार्य तुलसी ने भावना को चित्त की शुद्धि, मोह क्षय तथा ब्रह्मचर्य आदि की वृत्ति को स्थिर करने का विशिष्ट प्रयोग बताया है। [104]

**अनुप्रेक्षा के प्रकार**– अनुप्रेक्षा के बारह प्रकार का उल्लेख मिलता हैं –

| | | |
|---|---|---|
| (1) अनित्य | (2) अशरण | (3) भव |
| (4) एकत्व | (5) अन्यत्व | (6) अशौच |
| (7) आश्रव | (8) संवर | (9) निर्जरा |
| (10) धर्म | (11) लोक संस्थान | (12) बोधि–दुर्लभता |

इनके अतिरिक्त चार भावनाएं और हैं –

(1) मैत्री (2) प्रमोद (3) करुणा (4) माध्यस्थ

**3.10.1 अनित्य भावना** – भोग्य पदार्थ और भोगी दोनों ही अनित्य हैं – नष्ट हो जाने वाले हैं। मूच्छा के कारण व्यक्ति स्वयं को अमर मान लेता है और काम भोगों को शाश्वत। इस मूच्छा को तोड़ने का साधन है– अनित्य अनुप्रेक्षा।

आचारांग सूत्र के भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार अभ्यास के बिना अप्रमाद की साधना और प्रमाद का परिहार नहीं किया जा सकता। इसके तीन आलम्बन हैं – शांति, मरण व अनित्य अनुप्रेक्षा। [105] इसी ग्रंथ में बताया गया है कि विषयासक्ति को त्यागने के लिए आत्मरमण आवश्यक है। आत्मा ही शाश्वत एवं सदा हितकारी होने के कारण सारभूत है। सभी विषय अनित्य होने के कारण निस्सार हैं। इस प्रकार विषयों की अनित्यता की अनुप्रेक्षा का अभ्यास आत्म रमण का साधन हैं। [106]

सूत्रकृतांग सूत्र में जीवन की अनित्यता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सौ वर्ष जीने वाला मनुष्य तारुण्य में ही मर जाता है। फिर भी आसक्ति के कारण स्त्री आदि में मनुष्य मूर्च्छित होता है। [107]

दसवैकालिक सूत्र में 'जीवन' और 'भोग्य पदार्थ' (शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श) दोनों को ही अनित्य कहा गया हैं। [108]

उत्तराध्ययन सूत्र में शरीर को पानी के बुलबुले की तरह अशाश्वत कहा गया है।[109] इतना ही नहीं, यह शरीर व्याधि और रोगों का घर है, जरा और मृत्यु से ग्रस्त है। शरीर, भूमि, घर, धन–धान्य, बन्धु बांधव को भी एक दिन छोड़कर जाना है। [110]

**3.10.2. अशरण भावना** – इन्द्रिय विषय लोभ को प्रेरित करते हैं, लोभ वश मनुष्य अर्थार्जन और पारिवारिक ममत्व बढ़ाता है। अर्थ का अर्जन और ममत्त्व की प्रगाढ़ता होने पर भी कोई त्राण या शरण नहीं होता।

आचारांग सूत्र के अनुसार स्वयं अर्जित कर्म जब उदय में आते हैं तब उसे न धन बचा पाता है और न ही परिवार के सदस्य।[111] इसी सूत्र में कहा गया है– **'जाणितु दुक्खं पतेयं सायं'** अर्थात् अर्थार्जन और काम के आसेवन से उपार्जित दुःख अपना होता है– करने वाले का ही

होता है। [112]

दसवैकालिक सूत्र की अगस्त्यसिंह चूर्णि में अशरण अनुप्रेक्षा का उद्देश्य धर्म निष्ठा का विकास बताया गया है। [113]

उत्तराध्ययन सूत्र में भी काम भोगों को शरण नहीं माना है। केवल एक धर्म ही शरण है। [114] सूत्रकार कहते हैं कि जिस प्रकार सिंह हिरण को पकड़ कर ले जाता है, उसी प्रकार अन्तकाल में मृत्यु मनुष्य को पकड़ कर ले जाती है। उस समय उसके माता–पिता या भाई अंशधर नहीं होते – अपने जीवन का भाग देकर उसे बचा नहीं पाते हैं। [115]

**3.10.3. भव (संसार) भावना** – आचारांग सूत्र में संयत व्यक्ति को लोकदर्शी कहा गया है। वह लोक के ऊर्ध्व, अधो एवं तिरछे तीनों भाग को जानता है। [116] उत्तराध्ययन सूत्र में संसार को दुःख का आधार कहा गया है, जिसमें जीव क्लेश पा रहे हैं। [117]

**3.10.4. एकत्व भावना** – पदार्थ और व्यक्ति के प्रति आसक्ति के कारण अनेकत्व उत्पन्न होता है। इस आसक्ति को नियंत्रित करने के लिए अनेकत्व की प्रतिपक्षी भावना– 'एकत्व भावना' का प्रयोग अत्यन्त उपादेय होता है।

आचारांग सूत्र में ब्रह्मचर्य विकास के लिए सब प्रकार के संग का परित्याग कर एकत्व भावना के अभ्यास का निर्देश है। सूत्रकार कहते हैं – **'अइअच्च सव्वतो संगं ण महं ओत्यिति हति एगोहमंति।** [118] अर्थात् 'मेरा कोई नहीं है, इसलिए मैं अकेला हूँ।' इस वास्तविक सत्य की अनुप्रेक्षा करने से पर–पदार्थों पर राग भाव क्षीण होते हैं।

**3.10.5 अन्यत्व भावा** – ब्रह्मचर्य साधना के मार्ग में साधक के कदम डगमगाने का प्रमुख कारण होता है– ममकार अर्थात् मेरापन। चेतना जब ममत्व के अंधकार में दिङमूढ हो जाती है तब 'अन्यत्व भावना' उसके लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करती है।

आचारांग सूत्र के अनुसार दुःख और सुख सबका अपना–अपना होता है। कोई भी दूसरे के सुख–दुःख को बांट नहीं सकता है। [119]

दसवैकालिक सूत्र में संयम से भटके हुए मन का समाधान अन्यत्व भावना दिया गया है। सूत्रकार के शब्दों में –

**समाए पेहाए परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा।**
**न सा महं नो वि अहं पि तीसे, इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ।।** [120]

अर्थात् समदृष्टि पूर्वक विचरते हुए भी यदि कदाचित् मन बाहर निकल जाए तो यह विचार करें कि वह मेरा नहीं है और न ही मैं उसका हूँ। मुमुक्षु उसके प्रति होने वाले विषय–राग को दूर करे। भेद विज्ञान का यह चिन्तन मोह त्याग का बहुत बड़ा साधन माना गया है।

दसवैकालिक के टिप्पण में आचार्य महाप्रज्ञ ने एक श्लोक उद्धृत किया है–

**अयं ममेति मन्त्रोऽयं, मोहस्य जगदान्ध्यकृत।**
**अयमेव हि नञपूर्वः, प्रति मन्त्रोऽपि मोहजित्।।** [121]

अन्यत्व भावना को करने से पर पदार्थ या व्यक्ति ही नहीं स्वयं का शरीर और आत्मा का भी भेद दिखने लग जाता है। इससे साधक ब्रह्मचर्य में पुनः स्थापित हो जाता है।

**3.10.6. अशौच भावना** – बाहरी सुन्दरता देखकर मन उसमें आसक्त होता है। चमड़ी के भीतर जो है वह आकर्षक नहीं होता। शरीर के बाहरी सौन्दर्य के साथ आन्तरिक वस्तुओं को देखना अनासक्ति का हेतु है।

यह शरीर अशुचिमय पदार्थों जैसे – मल, मूत्र, रुधिर, मांस आदि का भण्डार है। इतना ही नहीं, इससे अशुचि के विविध स्रोत बहते रहते हैं। वे स्रोत पुरुष में नौ और स्त्रियों में बारह होते हैं। आचारांग सूत्र के अनुसार उन छिद्र की अशुचिता को देखकर देहासक्ति से छुटकारा मिलता है और फिर कामासक्ति क्षीण होती है। [122] आचारांग वृत्ति में अशुचि अनुप्रेक्षा की आलंबन भूत दो गाथाएं इस प्रकार मिलती हैं –

(1) **मंसट्ठी -रूहिर- ण्हारूवणद्ध कललमयमेय - मज्जासु।**
**पुण्णंमि चम्मकोसे, दुग्गंधे असुइबीभच्छे।।**

अर्थात् यह शरीर मांस, अस्थि, रुधिरयुक्त तथा स्नायुओं से बंधा हुआ कललमय मेद और मज्जा से परिपूर्ण एक चर्मकोश है। यह दुर्गंधमय और अशुचि होने के कारण वीभत्स है।

(2) **संचारिम - जंत-गलंत-वच्च मुत्तंत सेय-पुण्णंमि।**
**देहे हुज्जा किं राग कारण असूइहेउम्मि**?

यह शरीर रूपी यंत्र निरन्तर संचालित और स्रावित होने वाले मल–मूत्र तथा प्रस्वेद से युक्त है। इस अशुचि रूपी देह में राग या आसक्ति का क्या कारण हो सकता है? [123]

दसवैकालिक सूत्र में भी देह को अशुचि एवं अशाश्वत कहा गया है। [124] उत्तराध्ययन सूत्र में शरीर को अशुचि बताते हुए इसकी उत्पत्ति भी अशुचि के द्वारा बताई गई है। [125]

भगवती आराधना में कहा गया है कि शरीर का बीज (वीर्य और रज), उसकी निष्पत्ति, आदि को सम्यक् रूप से निरीक्षण करने वाला लज्जाशील मनुष्य अपने शरीर से भी विरक्त हो जाता है, तब अन्य के शरीर से क्यों नहीं विरक्त होगा ? [126]

**3.10.7 माध्यस्थ (उपेक्षा) भावना** – आचारांग सूत्र में विषयासक्ति पर विजय प्राप्त करने का एक साधन माध्यस्थ भावना को माना गया है। सूत्रकार के अनुसार शब्द–रूप आदि इष्ट–अनिष्ट विषयों की उपेक्षा करने से अर्थात् इनके प्रति राग द्वेष का भाव न लाने से साधक अनातुर और अव्याकुल हो जाता है। [127]

### 3.11.0 ध्यान

ध्यान आभ्यन्तर तपस्या का पांचवा अंग है। ध्यान का अर्थ है किसी एक आलम्बन पर मन को स्थापित करना अथवा मन, वचन और काया की प्रवृत्तियों का निरोध करना।

जैन परम्परा में ब्रह्मचर्य विकास में ध्यान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भगवान महावीर ध्यान के अनेक प्रयोग किया करते थे। आचारांग सूत्र के अनुसार आत्मा की गहराई में पैठकर ध्यान में लीन रहने से वे स्त्री परीषह को जीत लेते थे।[128] जैन आगमों में ब्रह्मचर्य विकास के लिए ध्यान के अनेक सूत्र पाए जाते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने प्राचीन आगमों एवं योग शास्त्रों तथा आधुनिक विज्ञान का गहन अध्ययन कर स्वयं के जीवन को प्रयोगशाला बनाया। विलुप्त प्रायः हुई ध्यान पद्धति को प्रेक्षाध्यान के नाम से सरल एवं सहज रूप से प्रस्तुत किया है। प्रेक्षाध्यान के कुछ प्रयोग ब्रह्मचर्य विकास के लिए बहुत ही प्रभावकारी सिद्ध हुए हैं।

**3.11.1 शरीर प्रेक्षा** – अब्रह्मचर्य का प्रमुख कारण है शरीर के प्रति आसक्ति। आसक्ति तभी तक रहती है जब तक शरीर के प्रति मिथ्या धारणा रहती है। आचारांग सूत्र में शरीर की मूर्च्छा तोड़ने के लिए शरीर के आन्तरिक अंगों को देखने का सूत्र है। सूत्रकार के शब्दों में **'जहा अंतो तहा बाहि, जहा बाहि तहा अंतो।'** अर्थात् यह शरीर जैसा भीतर है, वैसा बाहर है। जैसा बाहर है वैसा भीतर है।[129]

शरीर का बाह्य सौन्दर्य आकर्षण का कारण बन सकता है। किन्तु शरीर का आन्तरिक हिस्सा रक्त, मांस आदि वीभत्स पदार्थों का बना है। शरीर प्रेक्षा से शरीर की यथार्थ स्थिति का ज्ञान होता है। इससे शरीर के प्रति आसक्ति टूटती है।

**3.11.2 आनन्द केन्द्र प्रेक्षा** – मनुष्य के शरीर में विभिन्न अंग विशेष पर चेतना की सघनता पाई जाती है। जैन परम्परा में इन अंगों को चैतन्य केन्द्र के नाम से जाना जाता है। आचारांग सूत्र के भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ की मान्यतानुसार काम संज्ञा शक्ति केन्द्र को, आहार संज्ञा स्वास्थ्य केन्द्र को और यश की अभिलाषा तैजस केन्द्र को सक्रिय करती है। इस स्थिति में आनन्द केन्द्र निष्क्रिय हो जाता है। इसलिए साधक में आत्महित की प्रज्ञा नहीं जागती और न निर्जरार्थिता का भाव ही वृद्धिंगत होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य, आहार संयम और यशोभिलाषा से मुक्ति – इन भावों की वृद्धि के लिए ''आनन्द केन्द्र प्रेक्षा'' का उपाय बताया गया है। आनन्द केन्द्र की सक्रियता होने पर ये तीनों संज्ञाएं विनष्ट हो जाती हैं।[130]

योगशास्त्र[131] तथा ज्ञानार्णव[132] के अनुसार श्वास ग्रहण कर चित्त को आनन्द केन्द्र (हृदय कमल) पर केन्द्रित करने से कुवासनाएं, मानसिक विकल्प – राग द्वेष स्वरूप विचार, विषय तृष्णा उत्पन्न नहीं होती। अन्तःकरण के भीतर विशिष्ट ज्ञान प्रकाशमान होता है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने आनन्द केन्द्र के वैज्ञानिक पक्ष को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार फुफ्फुस के नीचे हृदय का पार्श्ववर्ती स्थान आनन्द केन्द्र है। यह थाइमस ग्रन्थि का प्रभाव क्षेत्र है। वयस्कावस्था तक यह ग्रन्थि शिशु के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। काम ग्रन्थियों – वृषण और डिम्बाशय की क्रियाओं का निरोध करती हैं। वयस्कावस्था के बाद इसकी क्रिया मन्द हो जाती है।[133] इस केन्द्र पर ध्यान कर थाइमस ग्रंथी की सक्रियता बढ़ा कर काम ग्रन्थियों को नियंत्रित कर ब्रह्मचर्य का विकास किया जा सकता है।

**3.11.3 विशुद्धि केन्द्र प्रेक्षा** – इसका स्थान कंठकूप है। यह थाइराइड और पैराथाइराइड ग्रन्थी का प्रभाव क्षेत्र है। इस केन्द्र पर ध्यान करने से हमारी वृत्तियां सहज रूप से शान्त होती हैं। वासनाओं के उदातीकरण यानि निर्मलीकरण के लिए यह एक विशेष प्रयोग है।[134]

**3.11.4 ब्रह्म केन्द्र** – जिह्वाग्र का स्थान ब्रह्म केन्द्र है। इस पर ध्यान करने से ब्रह्मचर्य की साधना पुष्ट होती है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार यह एक सूक्ष्म नियम है कि हमारी पांचों ज्ञानेन्द्रियों का पांच कर्मेन्द्रियों के साथ निकट का संबंध हैं। तंत्र शास्त्र में पांच तत्त्वों की मीमांसा हैं – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इन पांच तत्त्वों की क्रमशः पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं – घ्राण, जिह्वा, चक्षु, स्पर्शन और श्रोत तथा पांच कर्मेन्द्रियां हैं – अपान, जननेन्द्रिय, पैर, हाथ और वाक्। इस प्रकार जीभ का और जननेन्द्रिय का गहरा संबंध हैं। ये दोनों जल तत्त्व से संबंधित हैं। जब इनको रस अधिक मिलेगा तो कामुकता बढ़ेगी।

रस का संयम और जिह्वाग्र की प्रेक्षा, दोनों ब्रह्मचर्य के साधन हैं। जिह्वाग्र की प्रेक्षा करते समय जीभ को अधर में रखा जाता है, तब उसके अग्र भाग पर विशेष प्रकार के स्पन्दनों का अनुभव होता है। जीभ पर संयम करना, जीभ को स्थिर रखना, जीभ को शिथिल करना, मौन करना, उसकी प्रेक्षा करना, ये सब ब्रह्मचर्य के विकास में सहायक होते हैं।[135]

**3.11.5 ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र** – ज्योति केन्द्र का स्थान ललाट के मध्य भाग में है तथा दर्शन केन्द्र दोनों भृकुटियों के बीच स्थित है। योग ग्रन्थों में इसे आज्ञा चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इन पर ध्यान करने से ये केन्द्र जागृत हो जाते हैं। जब ये जागृत होते हैं तब पीनियल और पिट्यूटरी ग्रन्थियों की सक्रियता बढ़ जाती है। पीनियल की सक्रियता से गोनाड्स पर और पिट्यूटरी की सक्रियता से एड्रीनल पर नियंत्रण स्थापित हो जाता है। एड्रीनल और गोनाड्स के कारण ही काम वासना, उत्तेजना, आवेग आदि जागृत होते हैं। पीनियल और पिट्यूटरी के द्वारा जब इन ग्रन्थियों को नियंत्रित कर लिया जाता है तो काम वृत्तियां अनुशासित हो जाती हैं। इससे अपूर्व आन्तरिक आनन्द की वृत्ति जागृत हो जाती है।

इन दोनों केन्द्रों के संदर्भ में आचार्य महाप्रज्ञ यह मानते हैं कि जो साधक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, उसे इन दोनों पर ध्यान करना अत्यावश्यक है। इसके अभाव में वह

विशाद ग्रस्त या उन्माद ग्रस्त भी हो सकता है।[136] इन पर ध्यान करने से तृतीय नेत्र का जागरण कर काम का दहन किया जा सकता है। काम अकाम में बदल जाता है।

**3.11.6. शक्ति केन्द्र** – रीढ़ की हड्डी का नीचला हिस्सा शक्ति केन्द्र कहलाता है। इसे मूलाधार चक्र के नाम से भी जाना जाता है। योग परम्परा के अनुसार यह प्राण शक्ति के संग्रह का स्थल है। इस पर ध्यान करने से यह सक्रिय होता है और प्राण का प्रवाह मेरु रज्जु के माध्यम से ऊपर की ओर प्रवाहित होता है। बाबा रामदेव के अनुसार इस केन्द्र पर ध्यान करने से साधक ऊर्ध्वरेता बन जाता है।[137]

**3.11.7 स्रोत दर्शन** – आचारांग सूत्र में काम–विजय की साधना के लिए ध्यान का एक प्रयोग है – स्रोत दर्शन। स्रोत का अर्थ है – इन्द्रियों और इन्द्रिय विषयों के आसेवन में प्रयुक्त शरीर के अंग। आचारांग सूत्र के भाष्यकार ने इन स्रोतों का विवेचन इस प्रकार किया है – शरीर के ऊर्ध्वभाग में सात स्रोत हैं – एक मुख, दो कान, दो नेत्र, दो नासिकाएं। शरीर के मध्य भाग में दो स्तन हैं। शरीर के अधो भाग में गुदा, लिंग और रक्तवहा (योनि) हैं। इनकी प्रेक्षा करने से इनके प्रति राग भाव का विलय होता है। फलतः काम विजय की साधना सरल हो जाती है।[138]

**3.11.8 संधि दर्शन** – आचारांग सूत्र में ब्रह्मचर्य विकास के लिए एक प्रयोग है – सन्धि दर्शन।[139] संधि का अर्थ है – हड्डियों का जोड़। शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र है। उसे देखकर उससे विरक्ति होती है। भाष्यकार ने शरीर में एक सौ अस्सी संधियों का उल्लेख किया है। चौदह महासंधियां हैं – तीन दाएं हाथ की संधियां – कंधा, कुहनी और पहुँचा। तीन बाएं हाथ की संधियां। तीन दाएं पैर की संधियां – कमर, घुटना और गुल्फ। तीन बाएं पैर की संधियां, एक गर्दन की संधि, एक कमर की संधि।

**3.11.9 लेश्या ध्यान** – उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचर्य विकास के लिए लेश्या ध्यान का प्रयोग मिलता है।[140] व्यक्ति की लेश्याओं का उसके चिंतन और आचार व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रशस्त लेश्याएं चेतना का ऊर्ध्वारोहण करती हैं तो अप्रशस्त लेश्याएं पतन करती हैं। इसलिए ब्रह्मचर्य की सुदृढ़ता के लिए अप्रशस्त लेश्याओं का वर्जन एवं प्रशस्त लेश्याओं के ध्यान का निर्देश हैं।

प्रेक्षाध्यान साधना पद्धति के अनुसार स्वास्थ्य केन्द्र एवं विशुद्धि केन्द्र पर नीले रंग तथा ज्योति केन्द्र पर श्वेत रंग का 5 से 10 मिनट तक ध्यान करने से वासनाएं अनुशासित होती हैं।[141]

**3.11.10. दीर्घ श्वास प्रेक्षा** – श्वास का हमारी साधना के साथ बहुत गहरा संबंध है। जब श्वास मंद, दीर्घ या सूक्ष्म होता है तो मन शान्त और वासनाएं नियंत्रित रहती हैं। श्वास जब छोटा होता है तब वासनाएं और उत्तेजनाएं उभरती हैं, मानसिक चंचलता बढ़ती है। आचार्य

महाप्रज्ञ छोटी श्वास को वासना का वाहन मानते हैं। [142] ब्रह्मचर्य के विकास के लिए नियमित दीर्घ श्वास प्रेक्षा बहुत लाभकारी साधन है। इस प्रयोग का अभ्यासी मन की सूक्ष्मता को पकड़ने में सक्षम हो जाता है। वह जान जाता है कि कब वासना का उभार आने वाला है। ऐसा होने पर तत्काल दीर्घ श्वास का प्रयोग शुरू कर देने से वासना को श्वास का आलम्बन नहीं मिलेगा और वह प्रकट हुए बिना ही शान्त हो जाएगी। [143]

**3.11.11 अन्तर्यात्रा** – प्रेक्षाध्यान साधना पद्धति के अनुसार हमारे शरीर में प्राण ऊर्जा के भण्डार का स्थान शक्ति केन्द्र (मूलाधार चक्र) है। प्राण ऊर्जा की खपत ऊपर के केन्द्रों पर होती है। जब प्राण ऊर्जा का प्रवाह नीचे के केन्द्रों तक ही होता है तब वासनाएं, उत्तेजनाएं उभरती हैं। प्रेक्षाध्यान में प्राण ऊर्जा को सभी केन्द्रों तक संतुलित रूप से पहुंचाने के लिए अन्तर्यात्रा का प्रयोग किया जाता है। इस प्रयोग में श्वास के साथ चित्त की यात्रा शक्ति केन्द्र से ज्ञान केन्द्र के बीच में की जाती है। इससे प्राण ऊर्जा का संतुलित विकास होता है और साधक अन्तर्मुखी बन जाता है, उसे बाहरी आकर्षण खींच नहीं पाते हैं।

**3.11.12 अनिमेष प्रेक्षा** – आचारांग सूत्र में काम–विजय का एक प्रयोग है – लोक दर्शन। लोक का अर्थ है – भोग्य वस्तु या विषय। भाष्यकार आचार्य महाप्रज्ञ इसकी व्याख्या में लिखते हैं – शरीर भोग्य वस्तु है। इसके तीन भाग हैं – (क) अधोभाग – नाभि के नीचे (ख) ऊर्ध्वभाग – नाभि के ऊपर (ग) तिर्यग् भाग – नाभि स्थान।[144]

शरीर के उपरोक्त तीन भागों को अनिमेष दृष्टि से देखने से, प्रेक्षा करने से तथा उसके विषय में कोई संवेदन न करने से व्यक्ति 'काम विजय' की क्षमता विकसित कर सकता है।

## 3.12 कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग के दो अर्थ हैं – काया की ऐच्छिक प्रवृत्तियों का त्याग एवं ममत्व का विसर्जन। [145] जैन वाङ्मय में अनेक उद्देश्यों से कायोत्सर्ग करने का विधान प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य साधना का मूलाधार आत्म रमण है, इसकी उपलब्धि का साधन भी कायोत्सर्ग है।

प्रयोजन की दृष्टि से कायोत्सर्ग के दो प्रकार हैं – [146]

(1) **चेष्टा कायोत्सर्ग** – यह अतिचार शुद्धि के लिए किया जाता है। अन्य दोष की तरह ब्रह्मचर्य जन्य दोष की शुद्धि के लिए चेष्टा कायोत्सर्ग किया जाता है।[147]

(2) **अभिभव कायोत्सर्ग** – विशेष विशुद्धि या प्राप्त कष्ट को सहने के लिए किया जाता है। ब्रह्मचर्य साधक पर अनेक बार उपसर्ग भी आ जाते हैं। जैन कथा साहित्य में राजा उदितोदित, श्रेष्ठी सुदर्शन आदि द्वारा ब्रह्मचर्य सुरक्षा एवं विकास के लिए कायोत्सर्ग का सहारा लेने का उल्लेख मिलता है। [148]

## 4.0. निष्कर्ष

जैन परम्परा एक विकासवादी परम्परा है। यहाँ आत्मा के क्रमिक विकास के लिए साधना के अनेक आयाम उपलब्ध हैं। ब्रह्मचर्य साधना का एक विशिष्ट अंग है। ब्रह्मचर्य समस्त साधना प्रविधियों का मूलाधार है, इसलिए इसके विकास में सबका विकास निहित है। जैन आगमों में ब्रह्मचर्य के विकास के लिए अनेक सूत्र मिलते हैं।

भगवान महावीर ने काम विजय के लिए स्वयं अनेकों प्रयोग किए और सफलता प्राप्त की। ब्रह्मचर्य की विकास यात्रा भी ज्ञान–दर्शन–चारित्र–तप के मार्ग से होकर ही जाती है। इस साधना चतुष्क में ब्रह्मचर्य का क्रमिक विकास निहित है।

**ज्ञान** – जैन परम्परा में समस्त तत्त्व–पदार्थों को तीन विभागों में विभक्त किया हैं–

(1) हेय (2) ज्ञेय और (3) उपादेय।

हेय का अर्थ है त्यागने योग्य पदार्थ। जो आत्म साधना में बाधक होते हैं।

ज्ञेय का अर्थ है जानने योग्य पदार्थ। विश्व के सभी पदार्थ ज्ञेय हैं।

उपादेय का अर्थ है ग्रहण करने योग्य पदार्थ। जो आत्म उत्थान में साधक होते हैं।

साधना की पूर्णता के लिए हेय को छोड़ना और उपादेय को ग्रहण करना आवश्यक है। हेय और उपादेय का विवेक करने के लिए सर्वप्रथम दोनों को ही जानना आवश्यक है। क्योंकि जब तक यह पता नहीं चलेगा कि असंयम क्या है। उसका स्वरूप क्या है, उसके होने से क्या हानि है तथा उसे त्यागने से साधक को क्या लाभ है, तब तक उन्हें त्यागा कैसे जाएगा? अतः ब्रह्मचर्य विकास का प्रथम चरण ब्रह्मचर्य विषयक ज्ञान है।

**दर्शन** – ब्रह्मचर्य के विकास के लिए इसके प्रति अटूट श्रद्धा व रुचि का होना आवश्यक है। इसके साथ काम भोगों के प्रति दृष्टिकोण यथार्थ होना भी आवश्यक है। श्रद्धा की कमी के कारण चित्त में चंचलता और साधना के प्रति शंकाएं उत्पन्न हो सकती हैं। ये साधक को असुरक्षित कर देती हैं।

जब तक इसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं होगी, इस क्षेत्र में कुछ भी विकास नहीं होगा। इतना ही नहीं, आगे बढ़ जाने के बाद भी यदि श्रद्धा शंका का स्थान लेती है तो साधक साधना के मार्ग को बीच में ही छोड़ भी सकता है।

**चारित्र** – ज्ञान और दर्शन ब्रह्मचर्य के आधारभूत व सैद्धान्तिक साधन हैं। इसका क्रियात्मक साधन है – चारित्र। चारित्र में अब्रह्मचर्य का प्रत्याख्यान – त्याग कर दिया जाता है। जैन परम्परा में त्याग का अपना महत्त्व है। त्याग में अकरण का संकल्प और वैसा ही भाव आवश्यक है। संकल्प के अभाव में भोग न करना भी चारित्र नहीं माना जाता। चारित्र की कुछ कसौटियां हैं,

उन पर खरा उतरने पर ही त्याग माना जाता है। जैसे –

1. भोग की परवशता न हो। परवशता दो तरह से हो सकती हैं –

(अ) भोग्य वस्तु का अभाव अर्थात् व्यक्ति के पास भोग्य पदार्थ उपलब्ध ही न हो।

(ब) भोग्य वस्तु तो उपलब्ध हो परन्तु किसी रोग से ग्रस्त होने के कारण मृत्यु आदि के भय से या अन्य किसी प्रलोभन के वशीभूत होकर भोग करने में असमर्थ हो।

2. भोग्य पदार्थ कांत व प्रिय नहीं लगते हों।

इस प्रकार, कांत और प्रिय तथा सहज सुलभ पदार्थों को स्वतंत्र चेतना से बिना किसी बाह्य दबाव के त्याग करना ही सच्चा त्याग/चारित्र है।

**तप** – ब्रह्मचर्य के विषय में अच्छी तरह जानना, उसमें श्रद्धा रखना एवं अब्रह्मचर्य का प्रत्याख्यान करना अपने आप में पर्याप्त नहीं है। ब्रह्मचर्य साधना के मार्ग में साधक के सामने अनेक आरोह–अवरोह आते रहते हैं। अनन्त जन्म से व्यक्ति की चेतना में काम के संस्कार जमे हुए होते हैं। अनुकूल निमित्त मिलने पर ये पुनः पुनः उभरते रहते हैं। काम भोग की लालसा एक दुःसाध्य रोग की तरह है, जो आत्मा के अनादिकाल से लगा हुआ है। एक बार के प्रत्यत्न से ही यह रोग मिटता नहीं है। इसकी चिकित्सा करने पर भी कभी–कभी यह पुनः क्रियाशील हो जाता है। इससे साधक की ब्रह्मचर्य के प्रति अरति हो जाती है और वह काम भोग के प्रति पुनः आकर्षित हो जाता है। जैन आगमों में इसका उपाय तपस्या बताया गया है। तपस्या आत्मा की शुद्धि का साधन है। तपस्या के अनेक आयाम हैं जिनसे शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक तीनों ही स्तर पर शुद्धि होती हैं। अनशन, ऊनोदरी आदि बाह्य तप शरीर को नियंत्रित कर मनोनिग्रह में सहायता करते हैं तथा प्रायश्चित्त, विनय आदि मानसिक पवित्रता को विकसित करते हैं। इस प्रकार बारह प्रकार के तपोयोग ब्रह्मचर्य की साधना के लिए बहुत लाभदायक होता है।

**5.0 संदर्भ**


1. उत्तराध्ययन 28/2
2. आचारांग भाष्यम् 5 (1)/18
3. सूयगडो (1) 2/1
4. सूयगडो (1) 1/6
5. सूयगडो (1) 10/4
6. ठाणं 2/44,55
7. दसवैकालिक 4/10
8. दसवेआलियं 8/59
9. उत्तराध्ययन 35/1,2; वही 8/2,4
10. आवश्यक 4/9
11. ज्ञानार्णव 15/32
12. वही 11/16
13. आचारांग भाष्यम् 3(1) 25
14. वही 3(1) 16
15. (अ) वही 2(5)/131 (ब) वही 5 (4) /75
16. दसवेआलियं चू (1)/1-18
17. आचारांग भाष्यम् 5 (3) / 44
    वही 6 (3) / 74
18. सूत्रकृतांग सूत्र (1)/9/32
19. आचारांग भाष्यम् 5 (3) / 44
20. ठाणं 2/66
21. दसवेआलियं 4/11
22. उत्तरज्झयणाणि 35/1
23. वही 14/4,5
24. आचारांग भाष्यम् 1 (3) / 36
25. वही 5 (4)/75,76
26. दसवेआलियं 8/60
27. वही चू (1) 17
28. पथ और पाथेय / 40-41
29. संबोधि 11/25

30. आचारांग भाष्यम् 5 (1)/18
31. सूयगडो (1) /2/47
32. भगवई 7/7/146-149
33. दसवेआलियं 4/14
34. वही 2/2,3
35. (अ) उत्तराध्ययन 35/3
    (ब) उत्तरज्झयणाणि 21/12 (स) वही 12/41
36. उत्तरज्झयणाणि
37. आवश्यक सूत्र 4/9
38. योगशास्त्र 1/18
39. व्यवहार भाष्य 190
40. अवबोध / पृ. 94
41. श्री भिक्षु आगम विषय कोश, पृष्ठ 295 में उद्धृत - द.जि, पृ. 15
42. वही
43. उत्तरज्झयणाणि 30/7,8
44. श्री भि. आ. वि को: पृ.295 में उद्धृत उ. शा. वृहद् वृत्ति पृ. 600
45. आचारांग भाष्यम् 5/83; 4(4)/43
46. ठाणं 6/42
47. व्यवहार सूत्र / 1601
48. मनोनुशासनम् 3/3
49. वही पृष्ठ 48
50. उत्तरज्झयणाणि 30/26
51. श्री भि. आ. को. पृष्ठ 543 में उद्धृत
    आवचू 2, पृष्ठ 319
52. प्रश्नव्याकरण सूत्र / 2 / 4 / 6
53. ठाणं 7/49 का टिप्पण
54. प्रश्नव्याकरण सूत्र / 2 / 4 / 6
55. श्री भि. आ. वि. को 1, पृष्ठ 202 में उद्धृत
    दअचू पृष्ठ 14, दजिचू पृष्ठ 24
56. उत्तरज्झयणाणि 30/26

57. ठाणं 7/49 के टिप्पण में उद्धृत – औपपातिक सूत्र 36
58. श्री भिआ वि. को 1, पृ. 203 में उद्धृत
उशावृ प. 188
59. मनोनुशासनम् 3/6
60. आचारांग भाष्यम् 5 (4) 81
61. वही 5 (4) 81
62. ठाणं 7/49 के टिप्पण में उद्धृत
63. भगवई श 2/उ.1 / 62
64. सानुवाद व्यवहार भाष्य / 1600
65. मनोनुशासनम् /59–70
66. संबोधि 13 / पृ. 290
67. आचारांग भाष्यम् 5 (4)/81 (भाष्य में उद्धृत)
68. ज्ञानार्णव 26 / 141 (1)
69. वही 26/140
70. मनोनुशासनम् / पृष्ठ 139
71. संबोधि 13 / पृ. 290
72. प्राणायाम रहस्य / पृ. 16
73. वही / पृ. 29–31
74. आचारांग भाष्यम् 5 (4) 81, (भाष्य में उद्धृत)
75. संबोधि 13 / पृ. 290
76. प्रेक्षाध्यान : चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा / पृ. 30
77. प्राणायाम रहस्य / पृ. 22
78. श्री भि. आ. को. पृष्ठ 444 में उद्धृत
(अ) द अ चू पृ. 14 (ब) उशावृ पृ. 608
79. उत्तरज्झयणाणि 30/28
80. आचारांग भाष्यम् 5 (1) 11
81. सूयगडो (1) 4/28, 29
82. वही (1) /2 के टिप्पण संख्या 81 में उद्धृत – चूर्णि पृष्ठ 71
83. दसवेआलियं 8/31
84. वही (चूलिका) 2/14
85. उत्तरज्झयणाणि 22/आमुख

86. श्री भी. आ. वि. कोश–1 में उद्धृत – आवनि 1216
87. प्रश्नव्याकरण सूत्र 2/4/6
88. श्री भि. आ. वि. को 1 में उद्धृत (अ) आवनि 1217; (ब) उशावृ प. 16
89. श्री भि. आ. वि. को में उद्धृत – द अ चू पृ. 14
90. श्री भि. आ. वि. को –1, पृष्ठ 589 में उद्धृत उशावृ पृ. 609
91. शील की नवबाड़, भूमिका पृ. 117 में उद्धृत – निशीथ चूर्णि गाथा 574
92. सानुवाद व्यवहार भाष्य, 1601
93. धर्मामृत अनगार 4/96
94. भगवती आराधना / 1064
95. वही / 1067
96. श्री भि. आ. वि. को में उद्धृत आव चू–2 पृष्ठ 7,8
97. श्री भि. आ. वि. को में उद्धृत – उ शा वृ प. 584
98. आचारांग भाष्यम् 5 (4) /87
99. दसवेआलियं 9/3
100. उत्तरज्झयणाणि 30/34
101. श्री भि. आ. वि. को में उद्धृत – उ शा वृ प. 584
102. दसवेआलियं / चूलिका (2)
103. भगवती आराधना / 1098
104. मनोनुशासनम् 3/18
105. आचारांग भाष्यम् 2(4) /96
106. वही 3 (2)/45
107. सूयगडो (1) 2/10, 62
108. (अ) दसवेआलियं 8/34, 58
(ब) वही चूलिका 1/2, 16
109. उत्तरज्झयणाणि 19/13
110. (अ) उत्तरज्झयणाणि 19/14,16
(ब) वही 14/7
111. आचारांग भाष्यम् 2 (1)/ 23
112. वही 2 (4)/ 78
113. श्री भि. आ. वि. को पृ. 30 में उद्धृत – द अ चू पृ. 18
114. उत्तरज्झयणाणि 14/40

115. वही 13/22
116. आचारांग भाष्यम् 2 (5)/ 125
117. उत्तरज्झयणाणि 19/15
118. आचारांग भाष्यम् 6 (2) /38
119. वही 2 (4)/ 78
120. दसवेआलियं 2/4
121. दसवेआलियं 2/4 के टिप्पण में उद्धृत – मोहत्यागाष्टकम्
122. आचारांग भाष्यम् 2 (5)/130
123. वही 2 (5) / 130 के भाष्य में उद्धृत आ. वृति प. 124
124. दसवेआलियं 10/21
125. उत्तरज्झयणाणि
126. भगवती आराधना / 1063
127. (अ) आचारांग भाष्यम् 3 (1) /15
(ब) वही 3 (4)/ 47
128. वही 9 (1)/ 6
129. वही 2 (5)/ 129,130
130. वही 5 (4)/ 79–84
131. योगशास्त्र, 5/40
132. ज्ञानार्णव 26/50,51
133. प्रेक्षाध्यान : चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा / पृ. 30 में उद्धृत
Glands - Our Invisible Guardian, P. 39
134. प्रेक्षाध्यान : चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा / पृ. 30
135. वही / पृ. 32
136. वही / पृ. 27,28,29
137. प्राणायाम रहस्य / पृ. 41
138. आचारांग भाष्यम् 5 (6)/ 118
139. वही 2 (5) 127
140. उत्तरज्झयणाणि 34/61
141. प्रेक्षाध्यान : लेश्या ध्यान / 42,43
142. प्रेक्षाध्यान : आधार और स्वरूप / पृ. 17
143. प्रेक्षाध्यान : श्वास प्रेक्षा / पृ. 18

144. आचारांग भाष्यम् 2 (5) 125
145. कायोत्सर्ग / 3
146. कायोत्सर्ग, पृष्ठ 56 में उद्धृत
(अ) बृ. क. मा. 5958 (ब) यो. प्र. उ. प. 250
147. कायोत्सर्ग / 57 में उद्धृत
(अ) द अ चू पृ. 14 (ब) आ व चू 2 पृ/ 248
(स) पृष्ठ 61–62
148. कायोत्सर्ग / 95

# अध्याय षष्टम्
# उपसंहार

## अध्याय षष्ट्म
## 6. उपसंहार

आज एड्स जैसी भयानक समस्या से मानव जाति त्रस्त हो रही है। उसका एक मूल कारण उच्छृंखल यौन व्यवहार है। इसके अलावा बलात्कार, यौन–शोषण, अवैधानिक यौन संबंध, गर्भपात, महिलाओं के साथ छेड़–छाड़ जैसी अनेक सामाजिक विकृतियां पूरे विश्व स्तर पर बढ़ रही है। दूरदर्शन, इन्टरनेट, मोबाइल आदि संचार माध्यमों के द्वारा अश्लीलता एवं यौन उच्छृंखलता का संप्रेषण तेजी से बढ़ता जा रहा है। किशोरों एवं युवाओं की पथभ्रष्टता एवं उससे उत्पन्न तनाव, अवसाद, हीन भावना एवं कुण्ठाओं से प्रेरित होकर की जाने वाली हत्याएं एवं आत्महत्याएं आदि की घटनाएं प्रायः समाचार पत्रों एवं न्यूज चैनलों में प्रमुखता से स्थान पा रही हैं। दिन–प्रतिदिन उन्मुक्त भोग के प्रति आकर्षण बढता जा रहा है। इससे अनेक असाध्य शारीरिक बीमारियाँ, पारिवारिक उलझनें, सामाजिक अशान्ति एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन तेजी से बढ रहा है। वस्तुतः यह व्यक्ति के आध्यात्मिक पतन को बढा रहा है। इन सबको देखकर मन में प्रश्न उपस्थित हुआ कि इस समस्या का समाधान कैसे हो? इसी यक्ष प्रश्न ने मुझे इस शोध कार्य के सात्विक प्रयास की ओर प्रेरित किया।

केवल ज्ञानी अर्हतों के अनुभवों का सार जैन आगमों में भरा हुआ है। इनमें प्राचीन दर्शन, संस्कृति, इतिहास आदि ज्ञान–विज्ञान का भण्डार तो है ही, मानवीय समस्याओं का समाधान भी प्रचुरता से मिलता है। चूंकि आज की अनेक समस्याओं का जनक अब्रह्मचर्य है। इसके समाधान में जैन आगमों की क्या दृष्टि रही ? भगवान महावीर ने इसका समाधान क्या दिया ? उत्तरवर्ती आचार्यों एवं अन्य साधकों ने प्रस्तुत समस्या के समाधान के संदर्भ में क्या अवदान दिए ? आदि प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत शोध कार्य द्वारा खोजने का प्रयास किया गया है।

शोध से प्राप्त निष्कर्षों को प्रत्येक अध्याय के साथ दिया गया है। उन्हें संक्षेप में यहां प्रस्तुत किया जा रहा है –

जैन आगमों में ब्रह्मचर्य के स्वरूप पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। यहां चारित्र के उन्नयन हेतु शक्ति सापेक्ष साधना का प्रतिपादन है। अर्थात् सम्पूर्ण रूप से आजीवन ब्रह्मव्रत पालने की क्षमता रखने वालों के लिए महाव्रत एवं ऐसी शक्ति के अभाव में अणुव्रत का विधान है।

जैन साहित्य में विशेष बात सामने आई है कि यहां ब्रह्मचर्य पालन हेतु किसी भी प्रकार के अपवाद की छूट नहीं है। ब्रह्मचर्य को एक दुष्कर साधना मानते हुए भी जीवन के किसी भी भाग में इसकी साधना में उत्थित हुआ जा सकता है।

जैन परम्परा में ब्रह्मचर्य के समान ही अब्रह्मचर्य को ज्ञेय माना गया है। इसके स्वरूप

पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। अब्रह्मचर्य को प्रमुख रूप से मैथुन, काम और काम भोग से जाना जाता है। इसके प्रति वैराग्य उत्पन्न करने के लिए अनेक उपमाओं का भी प्रयोग किया गया है। अब्रह्मचर्य या उच्छृंखल काम भोग को उद्दीप्त करने वाले कारक तत्त्वों की व्याख्या करते हुए इस संदर्भ में होने वाले प्रमाद के परिष्कार के लिए प्रायश्चित्त का भी विधान है।

जैन आगमों में साधक को ब्रह्मचर्य की ओर प्रेरित करने तथा अब्रह्मचर्य से दूर करने के लिए ब्रह्मचर्य के लाभ एवं अब्रह्मचर्य जन्य हानियों का स्थान–स्थान पर उल्लेख है। उन्हीं सूत्रों को विविध विभागों में विभाजित कर यहां सरलता से प्रस्तुत किया गया हैं। मनुष्य के जीवन पर पड़ने वाले इनके प्रभावों को शारीरिक, मानसिक, नैतिक, चारित्रिक, व्यावहारिक, भावात्मक व आध्यात्मिक पक्षों का अध्ययन किया गया हैं।

ब्रह्मचर्य की साधना में लक्ष्य तक पहुंचने से पूर्व अनेक विघ्न बाधाएं आती हैं। मंजिल तक न पहुंच जाएं तब तक उनसे अपनी सुरक्षा भी आवश्यक है। शास्त्रों में इस हेतु अनेक उपाय बताए गए हैं, इन समस्त सुरक्षा उपायों को तीन सुरक्षा कवच/चक्रों में प्रस्तुत किया गया हैं –

प्रथम सुरक्षा चक्र में विविक्तशयनासन को रखा गया है इसके अन्तर्गत वासना को उद्दीप्त करने वाले बाह्य वातावरण से रक्षा की बात आई है। यह वेश्याओं, कामुक स्त्री–पुरुषों तथा कामुक वातावरण से साधक की रक्षा करता है।

दूसरे सुरक्षा चक्र में पंचेन्द्रिय संयम को रखा गया है। पांचों इन्द्रिय–विषयों में किसी एक का भी असंयम ब्रह्मचर्य के लिए घातक बताया गया है।

तीसरे सुरक्षा चक्र में मन–संयम को रखा गया है। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए पूर्व भुक्त भोगों की स्मृति, वर्तमान का चिंतन और भविष्य में भोग की कल्पना को नियंत्रित करने को कहा गया है।

इस प्रकार तीन चक्र में साधक अपनी सुरक्षा कर सकता है। असुरक्षित होकर ब्रह्मचर्य को साधने का प्रयास करेगा तो उसकी प्रगति सुनिश्चित नहीं हो सकती। उसके मन में ब्रह्मचर्य के प्रति शंकाएं उत्पन्न हो जाएगी। इससे वह अपने पथ से भ्रष्ट हो सकता है। इस प्रकार उच्छृंखल यौन व्यवहार पर नियंत्रण करने व आध्यात्मिक विकास, आत्म रमण हेतु ब्रह्मचर्य के साधन और उपाय दोनों पर ध्यान देना आवश्यक है।

शास्त्रों में ब्रह्मचर्य के विकास के लिए अनेक साधन बताए गए हैं। उनके अभ्यास द्वारा अब्रह्मचर्य से ब्रह्मचर्य की दिशा में प्रस्थान हो सकता है। इसमें पहला साधन है – ज्ञान। ब्रह्मचर्य का स्वरूप तथा उससे होने वाले लाभ एवं अब्रह्मचर्य का स्वरूप तथा उससे होनेवाले दुष्परिणामों का बोध ब्रह्मचर्य की दिशा में प्रस्थान का पहला हेतु बनता है। इसके बाद ब्रह्मचर्य के सतत बोध से उसके प्रति आस्था बढती जाती है। आस्था के बाद तीसरा चरण है– संकल्प। अब्रह्मचर्य की सीमा करना या पूर्णतः त्याग करना। अब्रह्मचर्य के त्याग के पश्चात् ब्रह्मचर्य में

प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठापन हेतु बाह्य तप आहार–संयम, आसन, प्राणायाम आदि अनुकूल परिस्थितियां पैदा करते हैं। आन्तरिक तप, सत्संग, सेवा, स्वाध्याय, अनुप्रेक्षा, ध्यान और कायोत्सर्ग व्यक्ति को ब्रह्म में अर्थात् आत्मा में प्रतिष्ठित करते हैं। ब्रह्मचर्य के आध्यात्मिक अर्थ को साकार करने में पूर्णतः सहायक बनते हैं। ये साधन व्यक्ति को साध्य – आत्म–रमण या ब्रह्म–रमण तक पहुंचा देते हैं।

**ॐ अर्हम**

## ग्रन्थानुक्रमणिका

| क्र. | ग्रंथ नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| 1. | अष्टक प्रकरणम्ह | रिभद्र सूरि<br>अनु. डॉ. अशोक कुमार जैन | पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी | |
| 2. | अनुत्तरौपपातिक दशांग | युवाचार्य मधुकर मुनि | श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर | 1981 |
| 3. | अन्तकृतदशांग | युवाचार्य मधुकर मुनि | श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर | 1980 |
| 4. | अणु से पूर्ण की यात्रा | आचार्य देवेन्द्र मुनि | श्री तारक गुरु जैन<br>ग्रन्थालय, उदयपुर | प्रथम 1995 |
| 5. | अभिधान राजेन्द्र कोश | श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरी | लोगोस् एण्ड प्रेस, नई दिल्ली | 1985 |
| 6. | अल्प परिचित सैद्धान्तिक शब्द कोष (चतुर्थो विभाग) | स. आनन्द सागर सूरी | देवचन्द्रलाल भाई जैन<br>पुस्तकोद्धार फण्ड,: सूरत | 1974 |
| 7. | अवबोध | मुनि सुमेरमल 'लाडनूं' | मित्र परिषद्, कोलकाता | तृतीय 1994 |
| 8. | अमर कोष | शास्त्री हरगोविन्द | चौखम्बा संस्कृत सीरीज<br>ऑफिस, वाराणासी | 1969 |
| 9. | आगम शब्द कोश<br>(अंग सुणि शब्द सूचि) | वा. प्र. आचार्य तुलसी<br>प्र.सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ | जै.वि.भा. लाडनूं | 1 जून 1980 |
| 10. | आवश्यक सूत्र | युवाचार्य मधुकर मुनि | श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर | 1985 |

| क्र. | ग्रंथ नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| 11. | आचारांगभाष्यम्अ | ाचार्य महाप्रज्ञ | जै.वि.भा.सं. लाडनूँ | प्रथम 1994 |
| 12. | आयारोव | ा.प्र. आचार्य तुलसी<br>प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | 1974 |
| 13. | आयारो तह आयार-चूला | वा.प्र. आचार्य तुलसी<br>सं. मुनि नथमल | जैन श्वे. ते. महासभा आगम साहित्य प्रकाशन समिति, कोलकाता | दिसम्बर 1967 |
| 14. | आचारांग और महावीर | साध्वी शुभ्रयशा | जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं | प्रथम, 2001 |
| 15. | आहार विज्ञान | सुधा नारायणन्ि | रसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर | संशोधित नया संस्करण |
| 16. | इतिहास पुराण निर्वचन कोष | डॉ. शिवसागर त्रिपाठी | देवनगर प्रकाशन, जयपुर | 1988 |
| 17. | उत्तरज्झयणाणि | वा.प्र. आचार्य तुलसी<br>प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | पंचम, 2006 |
| 18. | उपनिषद्वाक्य महाकोश : | गजानन शम्भुसाधले | गुजरात प्रिंटिंग प्रेस, बम्बईि<br>के.सी. पब्लिशर्स, दिल्ली | द्वतीय, 1990 |
| 19. | उपासकदशांग सूत्र | मुनि कन्हैयालालजी | श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर | प्रथम 1980 |
| 20. | उपासकदशांग सूत्रम् | अनु. आत्माराम महाराज<br>स. इन्द्रचन्द्र शास्त्री | आचार्य श्री आत्माराम<br>जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना | प्रथम, 1964 |

| क्र. | ग्रंथ नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| 21. | उपासकदशांग सूत्रम् | सं युवाचार्य मधुकर मुनि | श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर | 1980 |
| 22. | एकार्थक कोश (समानार्थक कोश) | वा. प्र. आचार्य तुलसी<br>प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | प्रथम 1984 |
| 23. | औपपातिक सूत्र | मुनि अमोलक ऋषि | राजा बहादुर<br>लाला सुखदेव सहायजी | --- |
| 24. | करत-करत अभ्यास | साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा | आदर्श साहित्य संघ, चुरु | प्रथम 1995 |
| 25. | कायोत्सर्ग (स्वस्थ जीवन का रहस्य) | मुनि धर्मेश कुमार | जैन विश्व भारती, लाडनूं | प्रथम, जुलाई 1999 |
| 26. | कुण्डलिनी महाविद्या | आचार्य केशव देव | आचार्य श्री इन्टरप्राइजेज, दिल्ली | प्रथम 1998 |
| 27. | जीवाजीवाभिगम (भाग-1) | सं. नेमीचन्द बांठिया<br>पारसमल चण्डालिया | अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर | --- |
| 28. | जैन तत्त्व प्रकाश (भाग-2) | सं. छोगमल चौपड़ा | जैन श्वे. ते. महासभा, कोलकाता | प्रथम, वि.सं. 2458 |
| 29. | जैन लक्षणावली | बालचंद सिद्धान्त शास्त्री | वीर सेवा मन्दिर प्रकाशन | 1979 |
| 30. | जैन आचार मीमांसा | साध्वी पीयूष प्रभा | जैन विश्व भारती, लाडनूं | फरवरी 2005 |
| 31. | जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश | क्षु. जिनेन्द्र वर्णीभ | ारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली | चतुर्थ,1993 |
| 32. | जैन सिद्धान्त दीपिका | आचार्य श्री तुलसी | आदर्श साहित्य संघ | चतुर्थ 1996 |

| क्र. | ग्रंथ नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| 33. | जैन सिद्धान्त बोल संग्रह (भाग–8) | भैरोदान सेठिया | अमरचंद भैरोदान सेठिया, बीकानेर | 1940 |
| 34. | जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. सागरमल जैन | राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर | 1982 |
| 35. | जैन विद्या और विज्ञान | डॉ. महावीर राज गेलड़ा | जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं | प्रथम 2005 |
| 36. | झीणी चरचा | श्रीमद् जयाचार्यज<br>प्रवाचक : आचार्य तुलसी<br>प्र. सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ | ैन विश्व भारती, लाडनूं | प्रथम 1985 |
| 37. | ठाणंव | ा.प्र. आचार्य तुलसी<br>प्र.सं. मुनि नथमल | जैन विश्व भारती, लाडनूं | प्रथम 1976 |
| 38. | तत्त्वार्थ सूत्र (विवेचन सहित) | ले. उमास्वाति<br>वि.प. सुखलाल संघवी | जैन संस्कृति संशोधक मंडल, बनारस–5 | द्वितीय 1952 |
| 39. | त्रिणीछेद सुत्राणि<br>(दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार सूत्र) | अनु. छगनलाल शास्त्री | अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर | प्रथम,<br>जनवरी 2006 |
| 40. | दसवेआलियंव | ा.प्र. आचार्य तुलसी<br>प्र.सं. मुनि नथमल | जैन विश्व भारती, लाडनूं | द्वितीय 1974 |

| क्र. | ग्रंथ नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| 41. | धम्मपद | अनु. कन्छेदीलाल गुप्ता | चौख भा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी | चतुर्थ 1990 |
| 42. | धर्म के दस लक्षण | डॉ. हुकुमचन्द भारिल्ल | पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर | सातवां,26.4.1990 |
| 43. | धर्मामृत (अनगार) | पं. आशाधर<br>सं. कैलाशचंद शास्त्री | भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन | 1977 |
| 44. | नंदी | वा.प्र. आचार्य तुलसी<br>प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | अक्टूबर 1990 |
| 45. | नायाधम्मकहाओ | वही | वही | प्र. जून 2003 |
| 46. | निशीथ सूत्र | युवाचार्य मधुकर मुनि | श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर | प्रथम, जुलाई 1991 |
| 47. | निरुक्त कोश | वा.प्र. आचार्य तुलसी<br>प्र.सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | प्रथम 1984 |
| 48. | पथ और पाथेय | आचार्य तुलसी | लक्ष्मीचंद तख्तमल चोपड़ा,पचपदरा | --- |
| 49. | प्राणायाम रहस्य | स्वामी रामदेव | दिव्य प्रकाशन | षोड्स संस्करण |
| 50. | पाइअसद्दमहण्णवो | सं. वासुदेव शरण अग्रवाल | प्राकृत ग्रंथ परिषद्, वाराणसी | द्वितीय 1963 |
| 51. | पातञ्जल योग प्रदीप | वि. ओमानंद तीर्थग | ीता प्रेस, वाराणसी | सातवां 2043 |
| 52. | प्रेक्षाध्यान : चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा | आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | चतुर्थ 2000 |

| क्र. | ग्रंथ नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| 53. | प्रेक्षाध्यान : लेश्या ध्यान | आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | चतुर्थ 2000 |
| 54. | प्रेक्षाध्यान : श्वास प्रेक्षा | आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | चतुर्थ 2000 |
| 55. | प्रेक्षाध्यान : आधार और स्वरूप | आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | चतुर्थ 2000 |
| 56. | पौराणिक संदर्भ कोश | डॉ. एन.पी. कुट्टनन पिल्लै | करण प्रकाशन, हैदराबाद | 1984 |
| 57. | प्रशमरति प्रकरण | उमास्वाति | श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल,अगास | द्वितीय 1987 |
| 58. | प्रश्नव्याकरण | अनु. कन्हैयालाल म.सा. | अ.भा.श्वे.स्था. जैन.शास्त्रोद्धारक समिति, अहमदाबाद | 1988 |
| 59. | प्रश्न व्याकरण सूत्रम्य | ुवाचार्य मधुकर मुनि | श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर | द्वितीय–1993 |
| 60. | प्रज्ञापना सूत्र | युवाचार्य मधुकर मुनि | श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर | द्वितीय 2001 |
| 61. | बहिरंग–योग | व्यास देव महाराज | योग निकेतन ट्रस्ट,: ऋषिकेश | द्वितीय 1970 |
| 62. | ब्रह्मचर्य दर्शन | उपाध्याय अमर मुनि | संमति ज्ञान पीठ, आगरा | द्वितीय 1965 |
| 63. | ब्रह्मचर्य विज्ञान | उपाध्याय पुष्कर मुनि | श्री तारक गुरु जैन ग्रंथालय,उदयपुर | 1983 |
| 64. | भगवती आराधना | आचार्य शिवार्य | श्री जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर | 1978 |
| 65. | भगवई खण्ड–1 | वा. आचार्य तुलसी प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | प्र .1994 |

| क्र. | ग्रंथ नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| 66. | भगवई खण्ड–2 | वही | वही | प्र. 2000 |
| 67. | भगवई खण्ड –3 | वही | वही | प्र. 2007 |
| 68. | भिक्षु दृष्टान्त | जयाचार्यज<br>प्रवाचक – आचार्य तुलसी<br>प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ | ैन विश्व भारती, लाडनूं | चतुर्थ 2003 |
| 69. | मनोनुशासनम् | आचार्य तुलसी | आदर्श साहित्य संघ, नई दिल्ली | 2007 |
| 70. | मानक हिन्दी कोश (चौथा खण्ड) | सं. रामचन्द्र वर्मा | हन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग | 1965 |
| 71. | मुक्त भोग की समस्या और ब्रह्मचर्यअ | ाचार्य महाप्रज्ञ | आदर्श साहित्य संघ | --- |
| 72. | योगशास्त्र | आचार्य हेमचन्द्र<br>सं. मुनि समदर्शी प्रभाकर | श्री ऋषभचन्द्र जौहरी<br>किशनलाल जैन, दिल्ली | 1963 |
| 73. | राजपाल अंग्रेजी हिन्दी शब्द कोश | डॉ. हरदेव बाहरी | राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली | 1993 |
| 74. | राजस्थान पत्रिका<br>जैविक घड़ी | डॉ. कैलाश मण्डा<br>राष्ट्रीय विज्ञान संस्था न, बंसा ैर | राजस्थान पत्रिका प्रकाशन | 12 अप्रैल 2005 |
| 75. | लोक प्रकाश | मुनि धनराज | अमरचंद बोरड़ (एडवोकेट)<br>श्रीगंगानगर | --- |
| 76. | व्रत दीक्षा | आचार्य महाप्रज्ञ | श्री जै.श्वे.ते. महासभा, कोलकाता | 2009 |

| क्र. | ग्रंथ नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| 77. | विपाक सूत्र | युवाचार्य मधुकर मुनि | श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर | 1992 |
| 78. | बृहत्क्लप सूत्र | सं. मुनि विजय | आत्मानंद जैन सभा, भावनगर | 1936 |
| 79. | व्यवहार भाष्य (संघदासगणि विरचित) | वा.प्र. गणाधिपति तुलसी प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं | प्र. अग. 1996 |
| 80. | व्याख्या प्रज्ञप्ति | युवाचार्य मधुकर मुनि | श्री आगम प्रकाशन समिति, जैन स्थानक, ब्यावर | तृतीय 2002 |
| 81. | शब्द कल्प द्रुम | राजाराधाकान्त देव | --- | --- |
| 82. | शील की नवबाड़ | आचार्य भिक्षुज सं. श्री श्रीचंद रामपुरिया | ैन श्वे. ते. महासभा, कोलकाता | प्र. 1961 |
| 83. | श्रावकाचार संग्रह अनुशीलन | सं. डॉ. अशोक कुमार जैन | श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संधीजी, जयपुर | 2006 |
| 84. | श्री भिक्षु आगम विषय कोश (ख.1) | वा.प्र. गणाधिपति तुलसी प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जै.वि.भा.सं., लाडनूं | प्र. सित. 1996 |
| 85. | श्री भिक्षु आगम विषय कोश (ख.2) | वा.प्र. गणाधिपति तुलसी प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जै.वि.भा.सं., लाडनूं | प्र. फर. 1996 |
| 86. | समवाओव | ा.प्र. आचार्य तुलसी | जैन विश्व भारती, लाडनूं | प्र. 1984 |

| क्र. | ग्रंथ नाम | लेखक/सम्पादक | प्रकाशक | संस्करण |
|---|---|---|---|---|
| | | प्र.सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ | | |
| 87. | सम्बोधि | आचार्य श्री महाप्रज्ञ | जैन विश्व भारती, लाडनूं | तृ. 1981 |
| 88. | सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थ सूत्र की टीका) | ले. आचार्य पूज्यपाद सं.पं. फूलचंद सिद्धान्त शास्त्री | भारतीय ज्ञानपीठ, काशी | मई 1955 |
| 89. | सानुवाद व्यवहार भाष्य | वा.प्र. आचार्य तुलसी प्रं. सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जै.वि.भा.सं., लाडनूं | जन. 2004 |
| 90. | सुखी समाज (समाज सुखी कैसे हो) | डॉ. कपिल देवी द्विवेदी | विश्व भारती अनुसंधान परिषद्, वाराणसी | 1983 |
| 91. | सुश्रुत संहिता | अनु. अत्रिदेव | मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली | पंचम 1994 |
| 92. | सूयगडो | वा.प्र. आचार्य तुलसी प्र. सं. आचार्य महाप्रज्ञ | जै.वि.भा., लाडनूं | तृ., जून. 2006 |
| 93. | संस्कृत हिन्दी कोश | वामन शिवराम आप्टेम | ोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली | 1993 |
| 94. | संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर | रामचंद वर्मान | ागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी | एकादश 2053 |
| 95. | ज्ञानार्णव | ले. आचार्य शुभचंद्र सं. डॉ. हीरालाल जैन | जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर | 1977 |
| 96. | A Sanskrit English Dictionary | Voman Shivram Apte | Motilal Banarshidas, Delhi | 1970 |